1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-9, अंक-4, फरवरी-मार्च 2026, ₹ 100/-

कला और कलाकारों को समर्पित
राष्ट्रीय पत्रिका का 29 वाँ वर्ष
139 वाँ अंक...

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

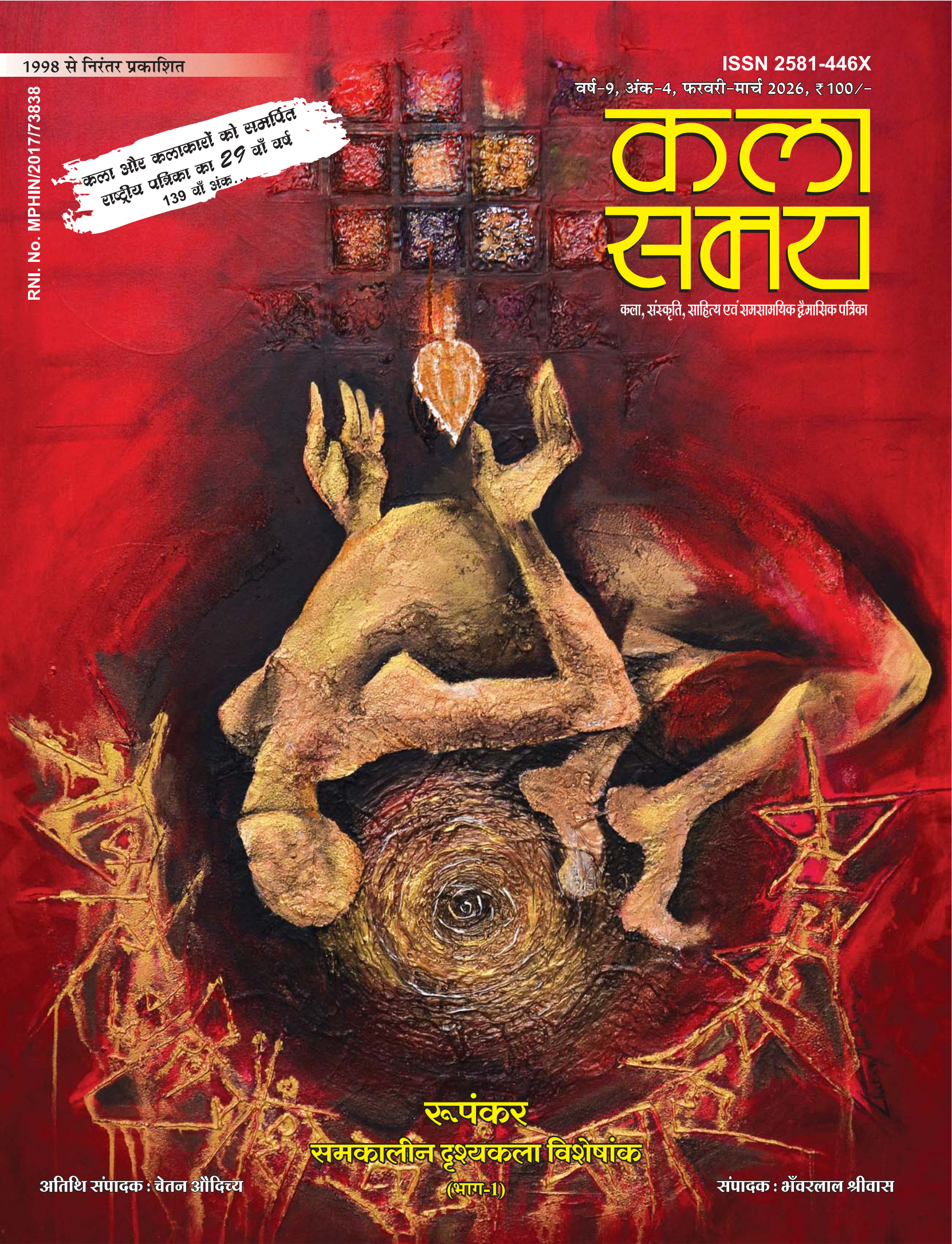

रूपंकर

समकालीन दृश्यकला विशेषांक

(भाग-1)

अतिथि संपादक : चेतन औदिच्य

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

दो वरिष्ठ 'पद्म श्री ' विद्वानों एवं 'कुलगुरु' द्वारा 'हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायक, गायकी और घराने' विशेषांक का लोकार्पण

पद्मश्री से सम्मानित डॉ. नारायण व्यास एवं माखनलाल पत्रकारिता विश्व विद्यालय के कुलगुरु श्री विजय मनोहर तिवारी जी तथा वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. बिनय षडंगी राजाराम जी और वरिष्ठ शास्त्रीय गायक, अतिथि संपादक पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' एवं अन्य सहित पत्रिका के प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास।

पद्मश्री से सम्मानित श्री कैलाशचंद्र पंत जी एवं वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. बिनय षडंगी राजाराम जी और वरिष्ठ शास्त्रीय गायक, अतिथि संपादक पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' सहित पत्रिका के प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास।

मुख्य पोस्ट मास्टर जनरल, निदेशक श्री पवन कुमार डालमियां जी द्वारा पत्रिका के विशेषांक का लोकार्पण कराते हुए पत्रिका के प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास।

पद्मश्री से सम्मानित होने पर डॉ. नारायण व्यास जी का सम्मान करते प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास साथ में डॉ. बिनय षडंगी राजाराम जी तथा नेचर पत्रिका के प्रधान सम्पादक श्रीराम माहेश्वरी।

पद्मश्री से सम्मानित होने पर वरिष्ठ साहित्यकार श्री कैलाशचंद्र पंत जी का स्वागत करते हुए प्रधान संपादक भँवरलाल श्रीवास।

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र राष्ट्रीय सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध
https://www.kalasamaymagazine.com
https://www.notnul.com

ISSN 2581-446X
(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)
(वर्ष : 20+09=29) पूर्णांक-139,
वर्ष-9, अंक-4, फरवरी-मार्च 2026, मूल्य : ₹100/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

pnb
MERCHANT: KALA SAMAY
SCAN & PAY
कला समय: सहयोग राशि भुगतान हेतु क्यूआर कोड का उपयोग करे।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❊ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❊

संरक्षक
विजयदत्त श्रीधर
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)
डॉ. श्यामसुंदर दुबे
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
महेश श्रीवास्तव

लोगो
हरचंदन सिंह भट्टी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

कानूनी सलाहकार
उमेश कुमार गुप्ता
(प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा.)

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग
देवेन्द्र प्रकाश तिवारी

उप संपादक
राहुल श्रीवास
सुन्दरलाल प्रजापति

नरिन्दर कौर
प्रबंध संपादक

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य

अरुण तिवारी
समसामयिक

हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति

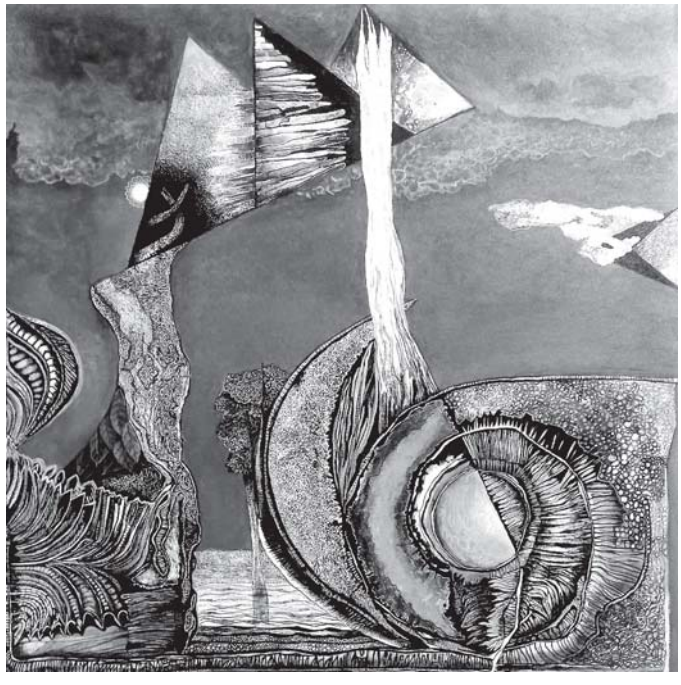

कलाकृति: गोपाल आचार्य

सदस्यता सहयोग राशि:
(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त) साधारण डाक

वार्षिक	**600 (व्यक्तिगत)**	**700 (संस्थागत)**	साधारण डाक
द्वैवार्षिक	**1200 (व्यक्तिगत)**	**1400 (संस्थागत)**	साधारण डाक
चार वर्ष	**2300 (व्यक्तिगत)**	**2700 (संस्थागत)**	साधारण डाक
आजीवन	**10,000 (व्यक्तिगत)**	**12000 (संस्थागत)**	साधारण डाक

(10 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **https://www.kalasamaymagazine.com**
https://www.notnul.com

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों, अतिथि संपादकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हो। पत्रिका से संबंधित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे। सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक, अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

रूपंकर समकालीन दृश्यकला विशेषांक भाग-1 के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

डॉ. कपिल तिवारी
(पद्म श्री सम्मान से विभूषित)

हेमंत शेष

अनिस नियाजी

विक्रम मराठे

विनोद शाही

अवधेश मिश्र

अरविंद ओझा

चन्द्र मोहन

जॉनी एम. एल.

कनु पटेल

प्रो. जयकृष्ण अग्रवाल

लक्ष्यपाल सिंह राठौड़

डॉ. भारत भूषण

डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला

सुमन कुमार सिंह

राजेश एकनाथ पाटिल

डॉ. पूरन सहगल

डॉ. सुमन चौरे

मनोहर काजल

विनय कुमार

डॉ. चन्द्रशेखर काले

महावीर वर्मा

सदाशिव कौतुक

रमेश शर्मा

मंजरी सिन्हा

शुभम चौहान शोधार्थी

मुकेश दुबे

इस प्रतिष्ठा विशेषांक के अतिथि संपादक

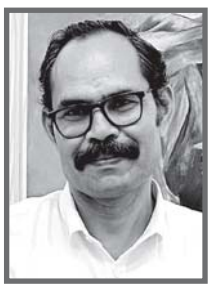

चेतन औदिच्य
अतिथि संपादक
(वरिष्ठ चित्रकार, साहित्यकार, स्तंभकार)
मो. 9602015389
Email: chetanaudichya3jan@gmail.com

इस बार

- **अतिथि संपादक की कलम से...**
  लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात.../ चेतन औदिच्य 5
- **संपादकीय**
  सफेद कैनवस पर भरे उम्मीदों के रंग क्या रंगों की आत्मा होती है...!! 8
- **कला संवाद**
  खुल गए चित्र के बन्ध ! हेमंत शेष से सुनील और रंजन गूंजन 11
  मैं चित्र पर फिल्मी गाने भी लिख देता हूँ .../ अनिस नियाजी 15
  चित्रकार प्रभाकर बर्वे और विक्रम मराठे के बीच पत्राचार/ विक्रम मराठे 17
- **कला चिंतन**
  दृश्य के भीतर दृश्य की आभासी दुनिया: डिजिटल पेंटिंग/विनोद शाही 20
  समकालीन कला : अभिव्यक्ति, बाजार और.../अवधेश मिश्र 23
  कला में सुंदरता असुंदरता के प्रश्न/ अरविंद औझा 27
  कार्टून कला : पत्रकारिता का मौन और मुखर ब्रह्मास्त्र /चन्द्र मोहन 30
- **कला-मत**
  देखूं जैसी कला की दुनिया/जॉनी एम. एल. 33
  बदलते भारत की सांस्कृतिक आत्मा का प्रतिबिम्ब.../ कनु पटेल 38
- **कला साधक**
  जय कृष्ण अग्रवाल के लिए कवि नरेश सक्सेना.../नरेश सक्सेना 42
  मेरी कला यात्रा के पथ-प्रदर्शक : कलाविद्.../ लक्ष्यपाल सिंह राठौड़ 45
- **कला भाव**
  स्मृतियों के वातायन से /डॉ. भारत भूषण 48
  चार चेतनाएं, एक पीड़ा: रचनात्मक संवेदना .../डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला 53
- **कला लेख**
  ओरिएण्टलिज़्म, भारतीय कला परंपरा और .../ सुमन कुमार सिंह 55
  "अवकाश की धुरी से उपजा संसार"/ राजेश एकनाथ पाटिल 58
  दृश्यकला में चित्रावण कला की रूपांकन छवियाँ/डॉ. पूरन सहगल 62
  लोक संस्कृति और लोक चित्र की परम्परा/डॉ. सुमन चौरे 66
  समकालीन दृश्य कला के परिप्रेक्ष्य में छायांकन कला.../मनोहर काजल 69
- **कला कविता**
  यक्षिणी/ विनय कुमार 71
  नुमाईश और गमला/ डॉ. चन्द्रशेखर काले 75
  वैशाली और ग्वेर्निका /महावीर वर्मा 76
  सदाशिव कौतुक की कविताएं/सदाशिव कौतुक 77
- **अद्वैत -विर्मश**
  समाज के परिवर्तन और समृद्धि के लिये स्व चेतना आवश्यक/रमेश शर्मा 79
- **नर्मदा जयंती पर्व**
  नर्मदा : साहित्य से लेकर संस्कृति तक, परम्परा.../शुभम चौहान शोधार्थी 81
- **पुनर्पाठ-संस्कृति**
  गोदना, सौन्दर्य बोध को दर्शाने वाली सदियों .../डॉ. कपिल तिवारी 83
- **आलेख**
  भारतीय ग्राम्य सौंदर्य का अनोखा छायाकार .../ डॉ. नरेश अवस्थी 85
- **पुस्तक : समीक्षा**
  ॐ नारायणाय नम: गायनाचार्य पंडित नारायणराव .../मंजरी सिन्हा 87
  भारतीय मानसिकता व कैनेडियन वास्तविकता का आईना/मुकेश दुबे 90
- **समवेत, प्रतिक्रिया** **92-96**
- **किसान कल्याण- वीर भारत न्यास**
  किसान कल्याण स्वाभिमान पर्व क्विज का प्रथम चरण .../ श्रीराम तिवारी 97

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888
मुख्य आवरण - चेतन औदिच्य | **कलाकृति:** गोपाल आचार्य
छायाचित्र -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार
सहयोग- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखाचित्र :** दिलीप शर्मा, प्रमोद सिंह
आवरण सज्जा - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

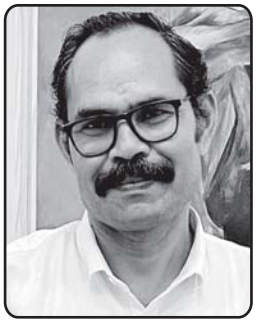

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात...

> आज समकालीन कला को लेकर हमारे सामने अनेक विमर्श खड़े हैं- पहचान का विमर्श जो जाति, लिंग, नस्ल, सांस्कृतिक पहचान आदि से संबद्ध है। उपनिवेश काल के इतिहास और संस्कृति से जुडा विमर्श, जो पश्चिमी कला-मानकों के प्रभुत्व, देशज परंपरा की पुनः पहचान तथा पूर्व दक्षिण के लोगों की भावनाओं का स्वर है। स्त्री की भूमिका और उसके शरीर से जुड़ी राजनीति से संबद्ध, स्त्रीवादी जेंडर की आवाज़ का विमर्श। युद्ध, सत्ता और शक्ति के केंद्रीय -करण का विमर्श। अधुनातन तकनीक और कलाबाजार का विमर्श, जिसमें डिजिटल इंस्टालेशन, एआई कला, एन एफ टी, वर्चुअल रिअलिटी, आर्काइव, मेमोरी, इन्वायरनमेंट, इकोलॉजी आदि इसके विषय के रूप में सामने हैं।

समकालीन दृश्यकला विशेषांक आपके समक्ष है। विश्व की दृश्यकला का आरंभ वहीं से शुरू हो जाता है, जहां से मनुष्य की 'आदिम चेतना' ने अभिव्यक्ति की देह धारण की। यह अभिव्यक्ति कंदराओं, शिलाओं, भित्तियों, वस्त्र-पटों से होते हुए आज, कागज, कैनवस और डिजिटल सतहों तक चली आई है। वर्तमान कला परिद्वय ने सीमाओं का अतिक्रमण कर शैलियों तथा माध्यमों को एक दूसरे में विसर्जित किया है। दृश्यकला ने इस यात्रा में अपनी भंगिमा को वट देते हुए, अपने स्वरूप में भी अनेक तरह के परिवर्तन किए, जिसमें, अभिनय, देह-प्रदर्शन और संवाद के साथ, हर उस वस्तु को सम्मिलित कर लिया गया जो, संसार में दिखाई देती है। वे वीडियो आर्ट, इंस्टालेशन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आदि के रूप में हमारे सामने है। विचार के तल पर इस दौरान पश्चिम में कला, जहां राजनीतिक और सामाजिक प्रतिरोध का स्वर बनीं। वहीं एशियाई और अफ्रीकी महाद्वीप के कलाकारों ने अपनी सांस्कृतिक पहचान, स्मृति-परंपरा और स्थानिक-वैशिष्ट्य को आधुनिक दृश्यभाषा बनाया।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि भारतीय उपमहाद्वीप का कला चिंतन पश्चिम के कला चिंतन से भिन्न रहा है। हमारा आधार ऋग्वेद की उस ऋचा से आरंभ हुआ, जहां कहा गया 'रूपम् रूपम् प्रतिरूपो बभूव। तदस्य रूपम् प्रतिचक्षणाय।' अर्थात वह अनेक अनेक रूपों में प्रकट होता है, देखने वाले के लिए वह अलग-अलग रूप धारण करता है। यही हमारी अनुभूति का चरम रहा। इसे विस्तार देते हुए सांख्य, न्याय, मीमांसा और वेदांत की मनीषा ने अद्वैत पर पहुंचाया। कला में अद्वैत भिन्न भिन्न रूपों में हमारे सामने कलाकृतियों का रूप ले रहा है। पश्चिम में जहां, माइमेसिस की प्रेरणा से, कला यथार्थवाद, अनुकरण और परिप्रेक्ष्य तक सीमित रही तथा कलाकार एक प्रतिभाशाली व्यक्ति के रूप में जाना गया, जिसकी अभिव्यक्ति निजी थी। इसके विपरीत हमारी कला परंपरा ने कलाकार को साधक बनाया और कला अभिव्यक्ति को उपासना का हेतु। सामूहिक चेतना के भाव-बोध के साथ 'रसो वै सह' के उद्घोष ने रस को कला में केंद्रीय स्थान दिया। पश्चिमी देह-मांसलता के विलोम में, हमारे कलाकारों के बनाए रूपों में, भंगिमा की लाक्षणिकता, भावों की प्रवणता और लावण्य की व्यंजकता एक साथ स्फोट करती है। रूप के माध्यम से चेतना का स्पर्श कराना इसका मूल उद्यम रहा। यहीं से भारतीय कला मनीषा, कला को 'देह से निकाल कर 'विदेह' की यात्रा पर ले चलती है। यही भारतीय कला का आध्यात्मिक उन्मेष भी है।

आज समकालीन कला को लेकर हमारे सामने अनेक विमर्श खड़े हैं- पहचान का विमर्श जो जाति, लिंग, नस्ल, सांस्कृतिक पहचान आदि से संबद्ध है। उपनिवेश काल के इतिहास और संस्कृति से जुडा विमर्श, जो पश्चिमी कला-मानकों के प्रभुत्व, देशज परंपरा की पुनः पहचान तथा पूर्व दक्षिण के लोगों की भावनाओं का स्वर है। स्त्री की भूमिका और उसके शरीर से जुड़ी राजनीति से संबद्ध, स्त्रीवादी जेंडर की आवाज़ का विमर्श। युद्ध, सत्ता और शक्ति के केंद्रीय -करण का विमर्श। अधुनातन तकनीक और कलाबाजार का विमर्श, जिसमें डिजिटल इंस्टालेशन, एआई कला, एन एफ टी, वर्चुअल रिअलिटी, आर्काइव, मेमोरी, इन्वायरनमेंट, इकोलॉजी आदि इसके विषय के रूप में सामने हैं। इन्हीं परिस्थितियों का संवेदन आज के कलाकार के संघर्ष, इच्छा और समय की अभिव्यक्ति है।

इस दौर की महत्वपूर्ण बात यह है कि 'संस्थागत रूप में कला का भिन्न प्रकार का परिदृश्य सामने आया है। बाजार तथा वैचारिकी के हस्तक्षेप के साथ समाज की स्वीकृति-अस्वीकृति इसमें सम्मिलित है। वर्तमान समय में व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से अनेक संस्थाओं द्वारा कला गतिविधियां आयोजित की जा रही है। कस्बों- नगरों में छोटे

स्तर पर आयोजन हो रहे हैं, तो वैश्विक स्तर पर बड़े-बड़े आर्ट फेयर के रूप में कला गतिविधियां संचालित है। इन आयोजनों के भिन्न-भिन्न लक्ष्य है। कहीं यह कलाकारों की छवि के उत्थान-पतन के साधन हैं, तो कहीं भूमंडलीय आधिपत्य के उपकरण। परंतु यह बात कहनी पड़ेगी कि सोशल मीडिया के आने के बाद विश्व के छोटे-बड़े सभी कलाकारों की नजर इन पर रहती है। गाहे-बगाहे वे इससे प्रेरित अथवा हतोत्साहित होते रहते हैं। इसका एक पक्ष यह भी है कि कला अब आत्मान्वेषण और रसानुभूति की बजाय, इस कृत्रिम चमक दमक के बरक्स बाहर की ओर अधिक ताकने लगी हैं।

जब हम विश्व में हो रही कला गतिविधियों की पंड़ताल करते हैं तो 'फ्रिज लंदन' जैसे आर्ट फेयर की बात आती हैं। इस आर्ट फेयर को 'थ्योरी-ड्रिवन आर्ट ' कहा जाता रहा है। अर्थात अवधारणा केंद्रीत कला। इसका उद्देश्य कला-दर्शक को बौद्धिक रूप से असहज करना है। यही इसकी वैचारिक शक्ति मानी जाती है। यहां अनुभव और कलाकृति की बजाय किसी विचार या सिद्धांत को पहले महत्व दिया जाता है। बाजार को विचार के अधीन रखा गया है। और इसी वैचारिक धरातल पर कृतियों का क्रय-विक्रय होता है। इस आयोजन के लिए अनेक कला समीक्षकों ने कहा है कि, यह बौद्धिक रूप से साहसी अवश्य है किंतु सामान्य दर्शकों की समझ के लिए बहुत कठिन है। असल में कला में अत्यधिक वैचारिक हस्तक्षेप कला की दृश्य संवेदना के मूल प्रत्यय को निष्प्राण कर देता है। फिर भी इस लिहाज से उल्लेखनीय है कि यहां समकालीन और जीवित कलाकारों को केंद्र में रखा जाता है।

अमरीका के प्रसिद्ध, ' दी आर्मरी शो ' को उभरते हुए कलाकारों का प्रवेशद्वार कहा जाता है। इसे भिन्न नस्ल और पहचान के अमरीका में लोकतांत्रिक बहुलता की आवाज के रूप में परिभाषित किया है। हाशिये पर जी रहे लोगों के जीवन-पक्षों की प्रधानता यहां की कृतियों में देखी जा सकती है। कृतियां कथाओं से संबद्ध हैं। बाजार और विचार के बीच संतुलन तथा सामाजिक प्रतिबद्धता इस कला आयोजन की प्रमुख विशेषताओं में से एक है। एक बड़ा बुद्धिजीवी वर्ग 'दी आर्मरी शो' को लोकतांत्रिक चेतना के दर्पण के रूप में देखता है। किंतु अनेक बार ऐसा देखने में आता है कि यहां की विविधता 'क्यूरेटोरिअल टैग ' जैसी लगती है। फिर भी इस आयोजन की सामाजिक प्रतिबद्धता व्यापक स्तर पर स्वीकार की जाती है। यह बड़ी बात है।

अमरीका में फ्लोरिडा के मियामी बीच पर लगने वाले 'आर्ट बेसल मियामी' फेयर के बारे में कथन है कि 'यहां कला, एक अनुभव का पिटारा है।' पूरी दुनिया में इस आर्ट बेसल की विशालता चर्चित है। इसे विश्व के कला बाजार का शिखर भी कहा जाता है। क्योंकि 280 से अधिक गैलरियां इसमें भाग लेती है तथा मल्टी मीलियन डालर की बिक्री के रिकार्ड तोड़ती हैं। भीमकाय इंस्टॉलेशन, अद्भुत विन्यास का फैशन और डिजिटल स्पेक्टिकल अनुभव इसे विशिष्ट बनाता है। किंतु आलोचकों की नज़र में यह आयोजन कला को 'अभिजात्य के अधीन' करने का उपक्रम है। कला और पूंजी का साथ-साथ होना यहां की सच्चाई है। इसीलिए दृश्य की वैभवता और पूंजी को इस कला आयोजन का सारतत्व कह सकते हैं।

केरल का कोच्चि बिनाले भारतीय संदर्भ में एक विशिष्ट स्वर को प्रस्तुत करता है। इतिहास आदि के साथ स्थानीयता यहां का केंद्रीय विषय हैं। बाजार को यहां हाशिये पर रख कर संवाद को प्रमुखता दी गई है। विचार के स्तर पर कोच्चि बिनाले को गरिमामयी कहा जा सकता है। यह अपनी गतिशीलता में बहुत धीमा है, किंतु चिंतनशील प्रवृत्तियां यहां की कलाकृतियों में साफ-साफ देखी जा सकती है । इसके प्रबंधन और निरंतरता पर अक्सर सवाल उठे हैं फिर भी कहना ठीक रहेगा कि गहरे संवाद के रूप में यह एक स्वस्थ अवकाश उपलब्ध कराता है।

भारतीय आधुनिक और समकालीन कला के व्यवहारिक मंच के रूप में 'इंडिया आर्ट फेयर' को माना जाता है। यहां प्रयोग धर्मिता सीमित है फिर भी कलाकारों को पहचान दिलाने, उनका नेटवर्क स्थापित करने तथा कलाकारों को आर्थिक स्थिरता देने में यह मंच सफल रहा है। संभवत इसीलिए आलोचकों ने इंडिया आर्ट फेयर को 'सुरक्षित कला' का मंच कहा है। इस फेयर को समर्थन देने वालों का तर्क है कि बिना आर्थिक आधार के वैचारिक बहस का कोई अर्थ नहीं है। भारतीय कला जगत के लिए इस आवश्यक संरचना का महत्व दिखाई देता है।

इस पूरे भूमंडलीय परिदृश्य से, खास बात यह निकल कर आती हैं, कि समकालीन दृश्यकला इंग्लैंड में विचार बनकर , न्यूयार्क में आवाज़ के साथ लोकतंत्र की कथा बन कर तथा मियामी में दृश्य वैभव और बाजार बनकर हमारे सामने आती है। भारतीय संदर्भ में यह कोच्चि में इतिहास स्मृति, आत्मिक अवलोकन एवं परंपरा के नये अनुबंध की तरह तथा दिल्ली में अवसर की उपलब्ध और संरचनात्मक आश्वासन लेकर उपस्थित होती है। इसी से यह प्रश्न खड़ा होता है, कि विश्व के विचार, आवाज और बाजार के बीच भारत की समकालीन दृश्यकला को कैसे चीह्ना जाए?

'रूपंकर' विशेषांक का उद्देश्य यही है कि कला की इन समवेत स्थितियों में, कला-चिंतक, कलाकार और कला-रसिकों की अनुभूतियों को एक जीवंत संवाद के रूप में सामने लाया जाए। इस हेतु इस अंक में कलाकृतियों पर चिंतन के साथ कलाकार का साक्षात्कार, कला-कर्म पर गवेषणा, कला-रसिकों की काव्यात्मक अभिव्यक्तियां, मौजूदा परिदृश्य पर टिप्पणियां तथा संस्मरण इत्यादि लेखों को सम्मिलित किया गया है। हमारे समय के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर प्रो. जयकृष्ण अग्रवाल सर के व्यक्तित्व

और कृतित्व पर वरिष्ठ कवि नरेश सक्सेना जी की, बहुत कम शब्दों में की गई,मानीखेज बात को अंक में सम्मिलित किया है। मास्टर कलाकार प्रभाकर बर्वे जी के चिंतनशील पक्षों को, विक्रम मराठे जी के साथ हुए उनके पत्राचार में देखा जा सकता है। शिल्पी कलाकार ज्योति भट्ट से अनिस नियाजी का संवाद भी अंक को विशेष बनाता है। वरिष्ठ आलोचक और साहित्यकार विनोद शाही जी, जो स्वयं डिजिटल पेंटिंग करते हैं, ने इस विधा पर मर्मपूर्ण गवेषणा रखी है। कला चिंतन की परंपरा में हेमंत शेष जी से साक्षात्कार और युवा चिंतक अरविंद ओझा का लेख कला यथार्थ की वैचारिकी की प्रश्नाकुलता को लाने वाला है। कला आलोचक जॉनी एम एल ने बहुत स्पष्टता से कला-स्थितियों पर अपनी बात रखी है। कला लेखक सुमन कुमार सिंह का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर लेख शामिल है। वरिष्ठ कलाकार कनु पटेल ने अकादमी की वार्षिक प्रदर्शनी की दशा और दिशा पर विश्लेषणात्मक लेख रखा है। दिवंगत कलाविद् राम जैसवाल संग डॉ लक्ष्यपाल सिंह की अनुभूतियां दर्ज़ करने वाली हैं। अवधेश मिश्र ने अपने लेख में कला जगत की अधुनातन निरंतरता से संबद्ध विषयों पर, विशेष तौर पर ध्यान दिलाया है।

इस अंक में कला और काव्य की युति का आस्वाद भी सम्मिलित है । विनय कुमार द्वारा दीदारगंज की पाषाण कृति यक्षिणी पर अत्यंत तारल्य लिए कविताएं हैं तो ग्वेर्निका पर महावीर वर्मा की लयात्मक अभिव्यक्ति। डॉ चंद्रशेखर काले ने अपनी कविता में कला-प्रदर्शनी के स्याह पक्ष को उजागर किया है। डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला के लेख में संवेदनाएं विराट विश्व तक फैल कर देश और काल के बंधन को खोलती हुई मिलती हैं।इसके साथ ही मेरे विनम्र आग्रह को स्वीकार कर कलाकारों ,संस्कृतिधर्मियों ने इस अंक के लिए सामग्री उपलब्ध कराई,इस हेतु मैं हृदय से उन सभी का आभार व्यक्त करता हूं।

पिछले उन्तीस वर्षो से सुधि पाठकों के बीच जा रही सांस्कृतिक पत्रिका 'कला-समय' के यजुष हेतु अहर्निश अपना भौतिक -अभौतिक हविष्य अर्पित रहे प्रधान संपादक श्री भंवरलाल श्रीवास का औदार्य है कि इस अंक के अतिथि संपादन का दायित्व मुझे सौंपा है। मुझे नहीं पता कि मैं कितना सफल हूं। मुझ पर उनके इस विश्वास के प्रति मैं उनका जितना आभार व्यक्त करूं, कम है। इस महत सांस्कृतिक यज्ञ हेतु अभिनंदन उनका।

रूपंकर का यह अंक अपने ध्येय में कितना सफल होता है, इस पर आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी ..!

शुभमस्तु।

चेतन औदिच्य

कला समय

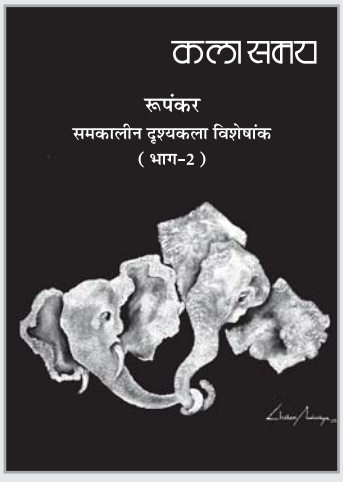

आगामी आवरण

आगामी अंक
अप्रैल-मई 2026

रूपंकर
समकालीन दृश्यकला विशेषांक (भाग-2)

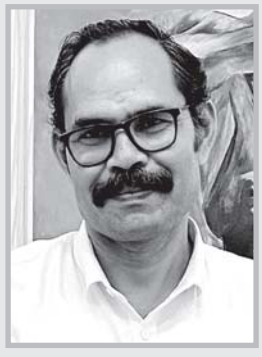

चेतन औदिच्य
अतिथि संपादक
(वरिष्ठ चित्रकार, साहित्यकार, स्तंम्भकार)
मो. 9602015389
Email: chetanaudichya3jan@gmail.com

अतिथि संपादक : चेतन औदिच्य
(वरिष्ठ चित्रकार, साहित्यकार, स्तंम्भकार)

विशेषांक के (भाग -2) में पूर्व प्राप्त शेष सभी आलेखों को प्राथमिकता से प्रकाशित किया जायेगा।

- संपादक

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com मो.- 94256 78058

संपादकीय

सफेद कैनवस पर भरे उम्मीदों के रंग क्या रंगों की आत्मा होती है...!!

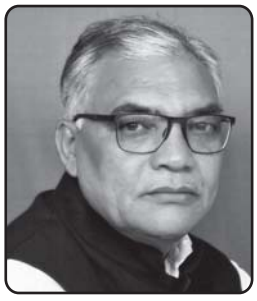

'जो कला आत्मा को आत्म दर्शन करने की शिक्षा नहीं देती वह कला नहीं है, मानव की बहुमुखी भावनाओं का प्रबल प्रवाह जब रोके नहीं रुकता, तभी वह कला के रूप में फूट पड़ता है। रेखाओं के संयोजन की बात की जाए तो रेखांकनों में चाहे व्यक्ति चित्र हो या कस्बे की जीवन-छवियाँ हो, कलाकार पूरी शिद्दत के साथ उन्हें अपनी कला के माध्यम से प्रदर्शित करने का उपक्रम करता है।'

'रंगों का उपहार'
अन्त नहीं रंगों के अंकुरण का
वे आकाश में भरे हैं
खिले हैं वृन्तों पर
टहनियों पर झूम रहे हैं
जहाँ से झरते हैं
पीक उठते हैं फिर वहीं
रंग उपहार हैं
उनके चित्रों की तरह।

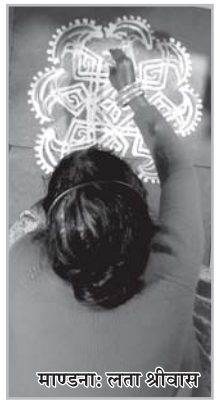
माण्डना: लता श्रीवास

-ध्रुव शुक्ल

जैसे स्वाद, सुगन्ध, पीड़ा और आनन्द समझाए नहीं जा सकते। इनका तो अनुभव ही चाहिए जैसे शब्दों की सीमा के बाहर चित्र की आरम्भिक अनुभूति चित्र को रस से भरना है। उसके अर्थ-आशय की यात्रा इसके बाद होती है। लिखे हुए को पढ़कर एक चित्र उभरता है एक चित्र है जो बिना लिखे ही सब कुछ कह देता है। यह पढ़ने वाले के ऊपर निर्भर है कि वह कितना पढ़ पाता है। 'शब्द कितना भी कहें रंगअपने मौन में ही मुखर हैं। वह 'कितना समझ पाता है। चित्रांक रंगों का साहित्य है। कला कर्म भी अपनी तरह का विचार ही होता है। कला का मतलब ही सौंदर्य होता है। कला प्रकृति की बेटी है। कविता एक बोलते हुए चित्र होते हैं। उसी तरह चित्र की भी एक मौन कविता ही है। उसी तरह ललित निबंध भी भाषा के लालित्य की चित्रावली ही है। सौंदर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु का नाम कला है। कला का कार्य मानव के लिए सत्य और सौन्दर्य की एक सजीव सृष्टि कराना है। मूर्ति की अपेक्षा चित्रकला अधिक उत्कृष्ट एवं सूक्ष्म कला है। मूर्ति के सम्मान रूप, रंग और आकार इसमें भी होता है। किन्तु इस कला के मान तीन-लंबाई, चौड़ाई और मोटाई न होकर केवल दो लंबाई और चौड़ाई ही होते हैं। रंग कूची, लेखनी इसके साधन है। मूर्ति की उपेक्षा चित्र कला मनोभावों को अधिक व्यक्त करती है। जबकि बहुत से चित्रों को हम देखते हैं वे अमूर्त (एब्सट्रैक्ट)होते हैं। वह किसी तरह की आकृति अथवा किसी वस्तु के रूप का संदेश हमें देखने में नहीं देते हैं मतलब साफ है कि उनमें किसी तरह के वस्तुगत रूपों की हमें कोई निश्चित पहचान नहीं होती है मगर वे भी कुछ अपनी ओर से हमें दिखा ही रहे हैं। पिकसो कहते हैं **'मैं जो सोचता हूँ उसे चित्रित करता हूँ, केवल उसे नहीं जो देखता हूँ।** श्वेत-श्याम रंग। वास्तव में इस सृष्टि में बुनियादी दो ही रंग हैं। एक प्रकाश का दूसरा अंधेरे का। सारे रंग इन्हीं दो मूल स्वरों के बीच की श्रुतियाँ भर है। श्वेत-श्याम की साधना दृष्टि के अचल और आरंभिक षड्ज की साधना है। जिसमें गहन नीरवता है, आध्यात्मिक है और रंगों की कल्पनाएँ भी। छायांकन कला: चित्रकारी, मूर्तिकला, और छायाचित्रों की तुलना में छायांकन दृश्य कलाओं में सबसे हाल का माध्यम है किसी अन्य माध्यम की तुलना में इसका उपयोग ज्यादा पत्रकारिता विज्ञान, चिकित्सा और सुरक्षा जैसी विधाओं में किया जा रहा है।छायांकनों का अपने चित्रों में उपयोग करने के अलावा डेविट डॉकने जैसे कई कलाकारों ने कैमरे का इस्तेमाल अपनी चाक्षुष अभिव्यक्ति के लिए कला के किसी भी अन्य मानक उपकरण (टूल) की तरह बड़े सशक्त रूप में किया यही कारण हैनरी मूर की कृति में पत्थर इतना उजागर है अथवा वान के चित्रों तैल रंगों की सतहों के साफ लक्षित किया जा सकता है। किंतु अब छायांकनों को कंप्यूटर पर संपादित कर उन्हें शत-प्रतिशत सूती रेशों से बने कागज पर पिगमेंट वाली स्याहियों की मदद से छापा जा

सकता है। शैलचित्र: शैल चित्र मानव मस्तिष्क की सोच का बाह्य रूप है जिन्हें मानव ने चट्टानों की प्राकृतिक सतह पर सृजित किया शैलचित्रों में परिलक्षित होता है मानव का ज्ञान, प्रज्ञा, जड़ जगत व चेतन जगत के प्रति उसकी सोच, सम्बन्ध व उसकी जीवन दृष्टि शैलचित्र सृजन की विद्या मानव के अभ्युदय लाखों वर्ष पूर्व से लेकर ऐतिहासिक काल तक निरंतर चलती रही। कहीं-कहीं तो यह परंपरा वर्तमान काल तक किसी न किसी रूप में जीवित है। जनजातीय चित्रकला: जनजातीय कलाकारों के द्वारा बनाए गए चित्र उनके जीवन का हिस्सा है। उनके द्वारा बनाए चित्रों में परंपरा स्मृति और मिथकों का योग होता है। जनजातीय चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी स्मृति और मिथकीय बिंबों का चित्रांकन है। जनजातियाँ जीवन और कला की आपूर्ति उन समस्त सामग्रियों से करते हैं जो उन्हें प्रकृति ने सहज रूप से प्रदान की है।कला बैगाओं के लिए मनोरंजन नहीं, बल्कि परंपराओं का कलात्मक निर्वाह है।इन्हें सबसे अधिक प्रिय गुदना होता है। बैगा स्त्रियाँ गुदना को स्वर्गिक अलंकरण मानती हैं। शरीर के अधिकांश हिस्से को वे गुदवाती हैं। बैगा स्त्रियों की मान्यता है कि स्वर्ग में यही गुदना बैगाओं की पहचान कायम रखेगा। कला: चित्रकार के लिए कवि होना जितना सहज हो सकता है उतना कवि के लिए चित्रकार हो सकना नहीं। कला जीवन से जो कुछ 'सत्यम शिवम सुंदरम' है, सबका उत्कृष्टतम विकास है। चित्रकार प्रत्यक्ष और कल्पना की सहायता से जो मानसिक चित्र बना लेता है, उसे बहुत काल व्यतीत हो जाने पर भी रेखाओं में बांधकर रंग से जीवित कर देने की वैसी ही क्षमता रखता है।

रंग को प्रणाम

"सुना है तुम
रंगों से खेलते हो
सभी रंगों से
दोस्ती है तुम्हारी
तुम उनकी
और रंग भी तुम्हारी
मानते हैं
जिंदगी की धूप में
मेरे ख्वाब भी कुछ
फीके पड़ गए हैं
तुमको तो हुनर आता है
रंगों से खेलने का
मेरे ख्वाबों में भी
कुछ रंग भर दो ना
सुना है तुम तो
रंगों से खेलते हो।" - अमित दत्त

माण्डना: लता श्रीवास

जो कला आत्मा को आत्म दर्शन करने की शिक्षा नहीं देती वह कला नहीं है, मानव की बहुमुखी भावनाओं का प्रबल प्रवाह जब रोके नहीं रुकता, तभी वह कला के रूप में फूट पड़ता है। रेखाओं के संयोजन की बात की जाए तो रेखांकनों में चाहे व्यक्ति चित्र हो या कस्बे की जीवन-छवियाँ हो, कलाकार पूरी शिद्दत के साथ उन्हें अपनी कला के माध्यम से प्रदर्शित करने का उपक्रम करता है। आकार और निराकार का यह संग-साथ जीवन की प्रत्ययता को बढ़ाता है और जीवन इससे सर्जक के कल्पना लोक यथार्थ-स्फीति और स्वप्नशील मानस को पढ़ने में किसी भी संजीदा कला प्रेमी के सामने दिक्कत नहीं खड़ी करता है चित्रों के मानस में चित्रकार का चरित्र भी फैला हुआ है। मनुष्य की परिश्रम-परिधि को उनकी प्रतिभा जिस पुरुषार्थ से साधती है वह चित्रकला में पसीने का खरा सम्मान है। लगता है प्राचीन से अर्वाचीन तक फैला उनका सृजन-संसार अपने बनाने में बने हुए को नया अर्थ देता है चित्र रेखा और रंग के द्वंद से बने हुए चित्र हैं, जो एक अर्थ में विचित्र को साधने का अपने भीतर अद्भुत हुनर भी रखना है। किसी भी कलाकार के लिए बहुत बड़ा आत्म संघर्ष है और इस संकल्प-प्रकल्प में कलाकार जो सचमुच में सच्चे सार्थक और दीर्घमना कलाकार के रूप में अपनी पहचान अर्जित करते हैं। नाथद्वारा चित्र शैली ने भारत व्यापी ख्याति अर्जित की है। तो मींने की कला आज विश्व प्रसिद्ध है। नाथद्वारा में चित्रकला विशेष रूप से पल्लवित एवं पुष्पित क्यों हुई इसके व्यतिपय कारण यह है कि यहां के चित्रकारों की कला साधना में सद्वृत्ति पारंपरिक सहयोग तथा उनके सृजन में स्वस्थ परंपराओं का निर्वाह होना। यहां के चित्रकारों ने राग-रागिनी एवं बारहमासों चित्रांकन किया है जो इस शैली की विशेषता है। धार्मिक भावों को मूर्त रूप देने के साथ-साथ यहां के कलाकारों ने लोक-कला के अनेक रूपों से जनता को परिचित कराते हुए भित्ति-चित्रों की परंपरा को सुरक्षित रखा है जैसे जन्माष्टमी के अवसर पर छटी, मांडना, कावड़ ले जाते श्रवण स्वल्प रेखाओं से चित्रण कर मकान के दरवाजों के दोनों ओर उत्सव विशेष पर अंकन ये श्राद्ध-पक्ष में सांझी-मांडना चित्र मानवता के रक्षक और आत्मा के प्रतीक होते हैं। तूलिका का सहारा ले कलाकार की मौन आत्मा उनके चित्रों में मुखरित हो उड़ती है। कला की यही विशेषता है कि चुपचाप रहकर भी वह बहुत कुछ कह सकने की शक्ति रखती है। कला से जीवन प्रवृत्तियां जगती है। जीवन के मांगल्य को ही कला की सिद्धि माना गया है। सच्चा कलाविद् हृदय की प्रेरणा से ही चित्र खींचता है न कि बाह्य आवश्यकता के अनुसार कला और शास्त्र का परस्पर उतना ही संबंध है जितना रवि-रश्मि का चंद्र-चंद्रिका का चित्रकार साधारण रंगों के समन्वय से जब चित्र बनाता है जिसमें जीवन बोल रहा जान पड़ता है, तब हम आश्चर्य मुग्ध को उठाते हैं। एक सामान्य पत्थर से कुशल मूर्तिकार मानव की सृष्टि करता है। एक संगीतज्ञ शब्दों के भीतर छिपे अनंत माधुर्य और समस्त आनंद और रहस्य को विकीर्ण कर देता है। अव्यक्त सौंदर्य को व्यक्त करना अदृश्य

कलाकृति: शिव सेन

शक्तियों से संबंध स्थापित करना और अमृत सत्यों को मूर्त करना ही कला का लक्ष्य है। कलाकार अनगढ़ उपकरणों के सहारे सौंदर्यशाली, आकर्षक एवं नयनाभिराम कृतियों का सृजन करने में समर्थ है। चित्रकार रंग और रेखाओं के योग से चमत्कारिक कृति तैयार करता है।सोना,चांदी का बेडोल टुकड़ा मीनाकार के हथौड़े की चोट खाकर आकर्षक आभूषण बनता है। तो वादक बांस की बंसी से कर्णप्रिया ध्वनि निनादित करता है। मूर्तिकार पत्थर को देवता में परिवर्तित कर देता है इसीलिए तो कलाकार सर्वोपरि है। वह कौन कलाकार है थे जिन्होंने अजन्ता, भीमबैटका खजुराहो में अपनी कला का इतिहास रचा जो आज भी साक्षी है। पंडित भीमसेन जोशी जी ने एक भजन गया है जिसमें **मन आत्मरंगी रंगले विश्वरंगी रंगले, राम रंगी रंगले**.... राष्ट्र के गौरव राजा रवि वर्मा के चित्रों से रहित विश्व की कोई भी चित्र वीथिका पूर्णता का दावा नहीं कर सकती महान कलाकृतियों में परमात्मा के तीनों तत्वों का समावेश होता है। हमारे पर्वो-त्यौहारों पर अनुष्ठानिक मिट्टी शिल्पों और खिलौनों के रूप में हजारों रूपाकार मिट्टी से निर्मित करने की लोक परंपरा सदियों से हमारे लोक-जीवन में विद्यमान है। रूप-प्रतिरूप मुख की ओट से जो कहा जाए वह मुखौटा है।मुखौटा मुख का प्रतिरूप है। रूप मनुष्य के हाथ में नहीं जैसा उसे प्रकृति ने गढ़ दिया बस वही। उसका रूप है। परंतु प्रतिरूप पर मनुष्य का पूरा अधिकार है रेखांकन, चित्र, छायाचित्र, मूर्ति, मुखौटा, बिंब, प्रतिबिंब, प्रतीक, मिथक आदि मनुष्य के प्रतिरूप हैं। वेदव्यास ने मनुष्य को सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति कहा है। इससे आगे कहा जाए तो कला साहित्य, संस्कृति मनुष्य की प्रतिकृति है। लोक चित्रांकन: लोक चित्रों को अधिकांशत: स्त्रियों ने रचा है जो सारी सृष्टि का स्वागत है। पितरों और देवी-देवताओं का आवाहन कर भारत की स्त्रियों ने अपने आंगन, घर और इस भूमि का श्रृंगार अनुष्ठान के रूप में किया है। जहां तक कला बाजार का प्रश्न है तो आज ऑनलाइन प्रदर्शनियों,गैलरी बिक्री वह प्रचार के लिए कई संभावनाएं विस्तृत इन माध्यमों के कारण इस खुले फलक के कारण कलाकारों का संघर्ष कम होता दिखता है। कलाकार द्वारा जो सिरजा जा रहा है वहां न सिर्फ दर्शकों तक पहुंचे बल्कि उससे सार्थक संवाद भी स्थापित हो।

वरिष्ठ कवि प्रेम शंकर शुक्ल की चित्रकार शीर्षक की सुंदर कविता का जिक्र मैं यहां करना चाहता हूं जो दुनिया के हर चित्रकार के बारे में तो है ही मगर विशेष रूप से इस विशेषांक के लेखक और चित्रकारों के लिए विशेष है यह प्रस्तुति-

चित्रकार
चित्र बनाते हुए चित्रकार
रंगों के जिस्म में
उनकी आत्मा रख रहा था
इसलिए रंग पूरी तरह से जीवित लग रहे थे
रेखाएं भी पुर ख़ुश थीं कि उन्हें जीवित रंगों का
मिल रहा है संग-साथ

चित्रकर बहुत खुश हो रहा था
देख-देख रेखा और रंग की खुशी
रंग इतना भाये चित्रकार को कि
हर सुबह शाम वह अपने रंगों को याद से
सूर्योदय और सूर्यास्त दिखाने ले जाता है
और उन्हें अपने खूबसूरत ख़याल से नहला कर
कैनवस पर लाता है
तुम्हारे माथे के ऊपर या सूर्योदय भी
किसी चित्रकार का सद्य:जात चित्र है
जिसके सारे रंग अभी
गीले ही हैं!!

हम कृतज्ञ है आदरणीय चेतन औदिच्य जी के जो उन्होंने बहुत ही कम समय सीमा में देश के ख्यातिलब्ध कलाकारों को कला समय के इस प्रतिष्ठा विशेषांक 'रूपंकर समकालीन दृश्य कला' जैसे विशाल फलक को गागर में सागर भरने का उपक्रम किया इस विशेष अंक के अतिथि संपादक चेतन औदिच्य जी ने कर दिखाया। हम उन वरिष्ठ और प्रतिभाशाली कलाकारों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं की समग्रता के साथ अपनी लेखनी को बहुत ही आत्मीयता के साथ 'कला समय' जैसी लघु पत्रिका में आप सभी विद्वानों का रचनात्मक अवदान पूरी उत्कृष्टता के साथ कला प्रेमियों के सामने आ सका। हम यहाँ स्पष्ट करना चाहते है कि इस विशेषांक हेतु हमें एक अंक से अधिक सामग्री प्राप्त हुई है। जिसका हम स्वागत करते हुए इस विशेषांक (भाग-1) एवं (भाग-2) के रूप में प्रकाशित करेंगे दोनों ही विशेषांको के अतिथि संपादक का दायित्व कृपा पूर्वक श्री चेतन औदिच्य ने साहर्ष स्वीकार किया है हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं। यह 'कला समय' अतिथि संपादक और सभी कलाकारों और चित्रकारों तथा प्रबुद्ध लेखकों का यह संयुक्त प्रयास है। जो कला विद्यार्थियों, शोधार्थियों, सुधी पाठकों के लिए प्रेरक दस्तावेज संग्रहणीय होंगे पुनः हम आप सबके प्रति मैं आदर और आभार प्रकट करता हूँ। नव संवत्सर 2083 की हार्दिक शुभकामनाएं।

।।शुभम भवतु।।

- भँवरलाल श्रीवास

खुल गए चित्र के बन्ध !
हेमंत शेष से सुनील और रंजन गुंजन के सवाल

हेमंत शेष

हेमंत शेष समकालीन हिंदी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर, प्रखर कला-आलोचक और राजस्थान प्रशासनिक सेवा (RAS) के पूर्व वरिष्ठ अधिकारी हैं। एक शिक्षित एवं साहित्यिक परिवेश में जन्मे शेष जी को कविता-संस्कार अपने पिता (जो वकील होने के साथ कवि भी थे) से विरासत में मिला। राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत वे राजस्थान प्रशासनिक सेवा में चयनित हुए और महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वहन किया। प्रशासनिक दायित्वों के समानांतर उनकी साहित्यिक यात्रा निरंतर सक्रिय और सृजनशील रही। अब तक उनकी 28 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 13 कविता-संग्रह शामिल हैं। उनके चर्चित काव्य-संग्रह 'जगह जैसी जगह' के लिए उन्हें प्रतिष्ठित बिहारी सम्मान से अलंकृत किया गया है।...

हेमंत शेष से सुनील और रंजन गुंजन द्वारा लिया गया यह साक्षात्कार वर्ष 2000 के मार्च माह में जयपुर में आयोजित हुआ था। इस साक्षात्कार के अंश 'कला प्रयोजन' पत्रिका के वर्ष 2000 के अप्रैल-जून, अंक 20-21 में तथा आलोचक राजाराम भादू के पत्र 'दिशा बोध' में भी प्रकाशित हुए हैं। किंतु कला जगत के कुछ मौलिक सवाल और जवाब से संपन्न यह संवाद आज भी प्रासंगिक है। इसी प्रासंगिकता को देखते हुए हेमंत शेष की अनुमति से इसे 'कला समय' के इस अंक में भी प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। चूंकि पच्चीस वर्ष पूर्व का संवाद है, ऐसे में इसे, उसी कालखंड परिप्रेक्ष्य में देखने समझने का आग्रह है। **-संपादक**

● कला में उपजी एक नई धारणा 'इंस्टालेशन' पर आप क्या सोचते हैं ?

● कला में इंस्टालेशन आधुनिक भारतीय कला के लिए भले ही अपेक्षाकृत आधुनिक या 'नई' धारणा हो, पर इसकी जड़ें पश्चिमी कला में एक समय उपजे कला आंदोलन 'दादावाद' में हैं। हर युग और हर कला-समाज में कला की जड़ता को तोड़ने और हर 'पारम्परिक' के अतिक्रमण की कोशिशें होती हैं। ' इंस्टालेशन' को भी क्यों उसी मानसिकता और रचनात्मक उपक्रम के बतौर नहीं देखा जा सकता ? ये देखना दिलचस्प होगा कि भारतीय जनजीवन में कितनी ही चीजें ऐसी हैं जिन्हें हम 'इंस्टालेशन' की तरह देख और सराह सकते हैं। गुजरात और पश्चिमी राजस्थान में अतिथियों के स्वागत में दरवाजों पर टांगे जाने वाले कशीदाकारी के काँच जड़े बन्दनवार एक प्रतीक भी हैं, कला-वस्तु भी, और ये ही तो हैं हमारा देशज इंस्टॉलेशन! गाँवों में रामदेव जी या तेजा जी की जोत के वक्त उनके चबूतरों को देखें, उनकी संरचना में कितनी ही ऐसी वस्तुएं मिलेंगी, जो एक इंस्टॉलेशन की तरह लग सकती हैं अगर आप उन्हें उस तरह देख और सराह सकें। 'कलाकृति सिर्फ कला-वस्तु नहीं है, बल्कि कला-दृष्टि भी है' जब से मेरे निकट यह धारणा प्रबल हुई है, तब से मुझ में पारम्परिक सामग्री से हट कर 'वस्तुओं' को 'कलाकृति' के रूप में देखने-बरतने सराहने का मानसिक-साहस भी बढ़ा है। किसी एक 'त्रिनाले' दिल्ली में कला दीर्घा में बनारस की एक नाव को यथावत् ले आया जाना और क्या दर्शाता था ? क्या चीजों की अपनी अंतरंग कहानी नहीं होती ? इन्स्टालेशन इस बात की तरफ इशारा करता है- क्यों हम कला को सिर्फ कैनवास, फ्रेम और रंगों तक ही सीमित रखें? आप याद करें- एक समय में पश्चिम के एक दृष्टिवान कलाकर्मी क्रिस्टो (Christo Vladimirov Javacheff) और Jeanne-Claude ने जब मोटर-गाड़ियों, गगनचुम्बी इमारतों और यहाँ तक कि समुद्र तट या प्रकृति तक को पॉलिथिन की विशाल शीट्स में रैप कर (लपेट कर) विलक्षण से चाक्षुष प्रभाव उपजाए थे , तो यह समकालीन जीवन की उपभोक्तावादी शैली पर बेहतरीन टिप्पणी ही नहीं थी, बल्कि पारम्परिक कला-सामग्री से हट कर कला के पर्यवेक्षण भाव को 'विस्तार' देने का नया 'विचार' भी था। पर मेरा शुरू से यही मानना है भारतीय कला की तुलना में पश्चिमी कला में प्रयोगधर्मिता और नवोन्मेष की प्रवृत्तियां ज्यादा मुखर हैं। पश्चिमी कलाकर्मी भारतीय कलाकार की तुलना में अगर ज्यादा साधन-सम्पन्न हैं, तो कुछ हद तक साहसी भी, पर ऐसा व्यक्तिगत तौर पर मेरा मानना है। आप लोग शायद इस बात से असहमत हों....पश्चिम की कलादृष्टि से उपजे 'इंस्टॉलेशन' ने कला को त्रिआयामी चाक्षुष अनुभव बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निबाही है। इसमें अभी और जानदार अनुभव प्रविष्ट हो सकते हैं। हमारे दोस्त वरिष्ठ फ्रांसीसी चित्रकार-कवि डेनियल फिलोद का भी यही मानना है कि अभी भी भारतीय कला में हज़ारों

ऐसी अप्रयुक्त चीजें हैं, पचासों ऐसे 'ठेठ' चाषुक्ष अनुभव, जिन्हें ले कर आधुनिक भारतीय कला को कुछ नयी जातीयता से जोड़े जाने की संभावनाएं हैं, जिनका पूरी तरह दोहन अभी भी नहीं किया गया है। 'इंस्टॉलेशन' भी भारतीय कला में अपेक्षाकृत कम तवज्जोह दी गई धारणा है।

● भारतीय कलाकारों की वर्तमान पीढ़ी अपनी पूर्व पीढ़ियों से कितनी अन्तर्सम्बन्धित, कितनी अलग है?

● अब आधुनिक-भारतीय कला का अपना एक वैशिष्ट्य अधिक स्पष्ट हो रहा है। यह एक शुभ लक्षण है कि समकालीन भारतीय कला, सिर्फ पश्चिमी कला का सीधा अनुकरण ही नहीं रह गई है जैसा एक समय में वह थी, बल्कि कई चित्रकार, मुहावरे और रचना-सामग्री के स्तर पर अलग से पहचाने जा सकने वाले 'भारतीय' तत्वों के साथ सामने आ रहे है। शिल्प के क्षेत्र में भी यही बात विश्वास से कही जा सकती है। हुसेन, के. के. हेब्बार, भूपेन खक्कर, अपर्णा कौर, मृणालिनी मुखर्जी, अंजली मेनन, राघव कनेरिया, ज्ञानसिंह, चरन शर्मा, गुलाम शेख, जी.आर. सन्तोष, तैयब मेहता, जतीनदास, नीलम सूद, पीराजी सागरा, गणेश पाइन, लक्ष्मण पै, जे. स्वामिनाथन्, हिम्मत शाह, ज्योतिस्वरूप, मोहन शर्मा, पी एन चोयल, सुभाष मेहता, नागजी पटेल वगैरह के काम में आप दूर से उनकी भारतीय 'मन' को पहचान सकते हैं तो यह आधुनिक कला की 'भारतीयता' नहीं तो और क्या है? दूसरे नए पुराने कलाकारों में यामिनी राय, शंखो चौधरी, धनराज भगत, रवीन्द्रनाथ टैगोर, अवनीन्द्रनाथ. शैलोज मुखर्जी, विनोद बिहारी मुखर्जी, अमृता शेरगिल आदि के चित्र अथवा शिल्प क्या कला में भारतीयता के द्योतक नहीं हैं? मुख्यतः यही एक तब्दीली मुझे अभी तो नई भारतीय कला में उल्लेखनीय लग रही है कि इसने पश्चिमी जकड़न से छूट कर देशज कथावस्तुओं को केन्द्र में रखने की सचेत कोशिशें की हैं और वह अपनी इस कोशिश में बहुत हद तक सफल भी रही है। वर्ना समीक्षा में उनके काम के प्रति वह 'सम्मान' भाव कभी पैदा ही नहीं होता, जो उन्हें उन्हें हासिल है।

हेमंत शेष की कलाकृति

● आपके अनुसार कला का वास्तविक प्रयोजन क्या है?

● कला का प्रयोजन एक नहीं बल्कि शायद अनन्त हैं। कला मूलतः संवदेनात्मक और सापेक्षिक रूप से स्वायत्त आत्माभिव्यक्ति है। सृष्टि-संसार और मनुष्य के बीच फैले जटिल अंतः संबंधों को पहचानने का तरीका है, अपने नितांत मौलिक ढंग से और ढब से उसकी व्याख्या का अप्रतिम जरिया है। मनुष्य की नियति, उसके प्रश्नों, उसके अस्तित्व, समाज को आशाओं और आकांक्षाओं को रेखांकित करने का विश्वसनीय माध्यम है। कला मनुष्य की वह रचनात्मक अभिव्यक्ति है जो अपनी ही ठेठ प्रविधि से खुद आदमी को अपनी आत्म पहचान से जोड़ती है। कला जैसा कि प्राचीनों ने कहा ही है, पशु से मनुष्य को अलग करने का अनूठा सांस्कृतिक उपक्रम है। हाँ, कुछ लोग यह भी मानते हैं कि यह प्रथमतः सामाजिक जिम्मेदारी है और इसका एक 'सामाजिक' प्रयोजन भी है, क्योंकि कला के केन्द्र में मानव ही है।

● भारतीय कला पर पाश्चात्य कला का प्रभाव कितना था व भारतीयता में रचने बसने के बाद समकालीन कला पर उसका कितना असर बाकी है?

● देखिये न, कला-सामग्री तो लगभग समूचे संसार में एक सी ही है, सूचना और प्रसार माध्यमों की वजह से कला में कहां, क्या हो रहा है, इसकी जानकारी भी प्रायः सार्वभौमिक है। पर जैसा मैंने पहले कहा, सारी आधुनिक भारतीय कला पश्चिमी कला की भोंडी नकल ही हो, ऐसा नहीं है। उसमें बहुतेरे 'भारतीय' तत्व भी हैं। पश्चिमी कला का सचमुच किया गया भारतीयकरण ही आधुनिक भारतीय कला है। अब समकालीन भारतीय कला पूरी तरह नहीं, तो काफी हद तक पश्चिमी कला के प्रभावों से मुक्त हो रही है, खास तौर से विषयवस्तु की दृष्टि से। पर यह बात जरूर है कि ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारणों से भारतीय कलाकर्मी, पश्चिमी कलाकारों की तुलना में अब भी पर्याप्त अलंकृत, 'ऑरनामैन्टेड' और 'संकोचशील' हैं। शायद यही एक वजह हो हमारे देश में स्वाधीनता के बाद भी अलग से कोई पहचाने जा सकने ने वाला आधुनिक कला-आन्दोलन अभी तक जन्मा ही नहीं!

● आप एक कला-समीक्षक होने के अलावा खुद भी एक कलाकार भी हैं और आपकी लगी कुछेक चित्र प्रदर्शनियां हमने देखीं हैं....रंगों के चुनाव के पीछे आपका क्या नज़रिया रहता है?

● रंग मनःस्थिति को दर्शाते हैं, और उसे बदलते भी हैं। मैं एक कृति के लिए कौन-कौन से रंग काम में लूंगा, मैं पहले से नहीं जानता। कृति में बनते हुए संसार से संवाद करने के दौरान ही रंग चुने जाते हैं। रंग मूलतः आलोक की सृष्टि ही हैं। अगर कोई कलाकार यह पहले ही से तय करके चित्र बनाने बैठे कि वह एक कृति में अमुक अमुक रंग चुनेगा, तो वह निःसंदेह एक रद्दी कलाकार होगा। या एक कवि योजनाबद्ध विषयवस्तु का पूर्व-निर्धारण करके लिखे तो वह सिर्फ 'प्रगतिशील' कवि ही होगा, वास्तविक कवि नहीं।

● विदेश में रह रहे भारतीय चित्रकारों में से आप समीक्षक के बतौर किन लोगों के काम को मूल्यवान मानते हैं, तथा क्यों?

● मेरी दृष्टि से जो बहुत समय से देश से बाहर रह कर काम कर रहे हैं, उन भारतीय आधुनिक चित्रकारों में एच.एस. रजा और पी. मंसाराम जैसे लोग

हेमंत शेष की कलाकृति

शायद ज्यादा प्रखर हैं, हालांकि फ्रांसिस न्यूटन सूज़ा, उनमें से सबसे ज्यादा 'वाचाल' और शायद अधिक जाने-पहचाने नामों से एक हैं, या होंगे। रज़ा ने भारतीय तंत्र और ज्यामिति के बेहतरीन प्रयोगों से भारतीयता की अपनी मौलिकता की तरफ ध्यान आकर्षित करवाने की बहुत ही सार्थक व मूल्यवान कोशिश की है। तंत्र-चित्रकारी में अब तक प्रयुक्त होते रहे ज्यामितिक संकेतों-बिन्दुओं, त्रिभुज, वर्ग, कमलदल, षटकोण आदि-आदि के प्रतीकात्मक उपयोग से, रज़ा एक अलग ही भारतीय तरह का रहस्य-संसार खोलने की कोशिश करते हैं। रंगों का चयन उनके यहां गौर करने लायक है। बाइबल-कथानकों और समकालिक आधुनिक-जीवन दोनों के प्रति व्यंग्य भाव रखते हुए भी एक उद्दाम शारीरिक संसार को बराबर केन्द्र में रखते हुए एफ.एन. सूज़ा का काम काफी आक्रामक है, हालांकि पीटर वाट्सन जैसे बहुत से परिचित पश्चिमी समीक्षक, समसामयिक कला में उन्हें (सूजा को) मूल्यवान भारतीय-चित्रकारों में नहीं गिनते। मेरी राय में ग्राफिक-प्रिंट मेकर्स में कृष्णा रेड्डी का काम अनूठा है। नागजी पटेल वगैरह के काम में आप दूर से उनकी भारतीय 'मन' को पहचान सकते हैं तो यह आधुनिक कला की 'भारतीयता' नहीं तो और क्या है ? दूसरे नए पुराने कलाकारों में यामिनी राय, शंखो चौधरी, धनराज भगत, रवीन्द्रनाथ टैगोर, अवनीन्द्रनाथ, शैलोज मुखर्जी, विनोद बिहारी मुखर्जी, वगैरह के चित्र अथवा शिल्प क्या 'भारतीय' आधुनिकता का द्योतक नहीं है? मुख्यतः यही एक तब्दीली मुझे अभी तो नई भारतीय कला में उल्लेखनीय लग रही है कि इसने पश्चिमी जकड़न से छूट कर देशज कथावस्तुओं को केन्द्र में रखने की सचेत कोशिशें की हैं और वह अपनी इस कोशिश में बहुत हद तक सफल भी रही है। वर्ना अमृता शेरगिल जैसी प्रतिभाशाली चित्रकार के काम के प्रति वह 'सम्मान' भाव कभी पैदा ही नहीं होता, जो आज देश-विदेश में उन्हें हासिल है। पर माध्यमगत अन्वेषणों की मौलिकता के लिहाज़ से मेरी अपनी राय में कनाडा में वर्षों से रह रहे राजस्थान मूल के कलाकार, पांचाल मंसाराम की कला इसलिए 'भिन्न' है कि वह केवल रंगों पर ही आश्रित नहीं रहते, बल्कि कैमरे, फोटोस्टेट, कोलाज, फिल्म, स्लाइड और जाने किन-किन माध्यमों का संयुक्त-प्रयोग करते हुए कला-पलक को अधिक विस्तार और विविधता देने की कोशिश करते हैं। माउण्ट आबू में अपने घर-स्टूडियो में, चट्टानों पर रंगों से, या सीमेंट और पत्थर से की गई रचनाकारी देखने वाले के लिए अपनी कलाकार पत्नी के सहयोग से मंसाराम ने जो 'चित्रांकन' का काम शुरू किया है वह अपने आपमें बड़ा दिलचस्प है!

● आपके अनुसार कला का वास्तविक प्रयोजन क्या है ?

● कला का प्रयोजन एक नहीं बल्कि शायद अनन्त हैं। कला मूलतः संवदेनात्मक और सापेक्षिक रूप से स्वायत्त आत्माभिव्यक्ति है। सृष्टि-संसार और मनुष्य के बीच फैले जटिल अंतः संबंधों को पहचानने का तरीका है, अपने नितांत मौलिक ढंग से और ढब से उसकी व्याख्या का अप्रतिम जरिया है। मनुष्य की नियति, उसके प्रश्नों, उसके अस्तित्व, समाज को आशाओं और आकांक्षाओं को रेखांकित करने का विश्वसनीय माध्यम है। कला मनुष्य की वह रचनात्मक अभिव्यक्ति है जो अपनी ही ठेठ प्रविधि से खुद आदमी को अपनी आत्म पहचान से जोड़ती है। कला जैसा कि प्राचीनों ने कहा ही है, पशु से मनुष्य को अलग करने का अनूठा सांस्कृतिक उपक्रम है। हाँ, कुछ लोग यह भी मानते हैं कि यह प्रथमतः सामाजिक जिम्मेदारी है और इसका एक 'सामाजिक' प्रयोजन भी है, क्योंकि कला के केन्द्र में मानव ही है।

● एक व्यक्ति किस भावना से प्रेरित होकर कला की ओर उन्मुख होता है ? मतलब वे वजहें कौन सी हैं जो उसके कलाकार होने से जुड़ी हैं?

● हर व्यक्ति के लिए कला/रचना की प्रेरणा जन्मजात, प्रशिक्षण या पाठ्यसिद्ध या आन्तरिक है। वह लोगों में शायद भिन्न-भिन्न ही हुआ करती है, जैसे पोस्टर बनाने वाला चित्रकार ज्यादा से ज्यादा लोगों तक अपना 'संदेश' पहुंचाना चाहता है। वहीं कुछ कलाकार स्वान्तः सुखाय भी कला-कर्म करते हैं, अपने लिए ही रचते हैं। पर व्यक्तिगत होने के अलावा इसका दर्शक तक पहुंचते न पहुंचते 'सामाजिक' पक्ष भी है। समाजोन्मुख विचारक इसे 'ठोस' सामाजिक उत्पाद मानते हैं। कला की प्रेरणाएं अनेक एवं भिन्न हैं। मेरे लिए कला 'आत्म' का सार्थक विस्तार है, एक ऐसा विस्तार, जो रंगों, आकृतियों और रेखाओं के माध्यम से आपके अपने भीतर के और आपके आसपास के संसार की पुनः पहचान में सहायक हो, उसकी रचनाशील व्याख्या करता हुआ। पहले पूछे गए सवाल के उत्तर में भी इसका कुछ जवाब निहित है।

● कविता और चित्रकला में से कौन सी विधा आपकी अपनी बात ज्यादा मुखरता से स्पष्ट कर सकती है ?

● मेरे लिए कला और काव्य दोनों ही अंत:संबंधित हैं। दोनों ही 'विधाएं' एक दूसरे की पूरक हैं। मेरी कविता में चित्रकला के रंग, रूपाकार निहित हैं तो कला में कविता के बिम्ब, शब्द दूसरे रूप में मौजूद रहते हैं। एक कलाकृति में कलाकार का हर स्ट्रोक और कविता में कवि का हर शब्द, अपना मूल्य रखता है। कला कभी सम्पूर्ण नहीं होती, बल्कि वह एक आकर्षक अनंतिम 'यूटोपिया' है। सम्पूर्णता की खोज चलती रहती है और कलाकर्मी को एक के बाद एक दूसरी रचना की प्रेरणा देती रहती है यही खोज। कोई भी विधा इस

मायने में अंतिम नहीं है न कविता, न चित्रकला। पर निःसंदेह ये दोनों एक दूसरे को सम्पन्न करते हैं।

- **'कला' 'अ-कला' से कितनी दूर है ?**

- कला कला ही होती है, अ-कला जैसी कोई चीज नहीं है, न ही वह हो सकती है। पर अगर आपकी मुराद एंटी-आर्ट नामक आन्दोलन से है तो हम सब जानते हैं 'कला विरोधी आंदोलन' एक व्यापक शब्द है जिसमें दादावाद और अन्य कला आंदोलन शामिल हैं जो पारंपरिक कला परिभाषाओं को अस्वीकार करते हैं। कला-विरोधी आन्दोलनों का लक्ष्य सामाजिक मानदंडों को चुनौती देना और लोगों को चौंकाना या कुछ हद तक आश्चर्यचकित करना है। पर मेरे ख्याल से कला प्रकृति के अलावा वह पूंजी भी है, हम जिसके पास बार-बार जाना चाहें और जिसका आकर्षण फीका न पड़े। मीडियोकर कला, कला नहीं है। न ही वह वास्तविक कला हो सकती है। जिस रचना में समय और काल को 'अतिक्रमित' करने के गुण होंगे वही रचना अन्ततः टिकेगी; हालांकि कोई भी रचना 'कालजयी' नहीं हो सकती, न वह होती है। वह काल-सापेक्ष होते हुए भी उससे होड़ करने की अदम्य कोशिश करती है। शमशेर के एक कविता संग्रह का शीर्षक 'काल तुझसे होड़ है मेरी' कला की जिजीविषा का भी संकेतक है। अ-कला क्या है, मैं नहीं जानता। या तो कला कला होती है, या कचरा। 'कचरे कूड़े' और 'कला' में फर्क ही शायद अ-कला और कला का फर्क हो!

स्थायी पता: 40/158, स्वर्ण पथ, मानसरोवर, जयपुर – 302020
दूरभाष:निवास – 0141-2391933
ई-मेल:hemantshesh@rediffmail.com,
hemantshesh@gmail.com, hemantshesh@yahoo.com

pnb
MERCHANT: KALA SAMAY
SCAN & PAY
कला समय: सहयोग राशि भुगतान हेतु क्यूआर कोड का उपयोग करें।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 600/- रूपये, दो वर्ष : 1200/- रूपये, चार वर्ष : 2300/- रूपये, आजीवन : 10,000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। रजिस्टर्ड शुल्क रूपये 300/- प्रतिवर्ष सहित कुल रूपये ..... ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो. : .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

(रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त)

वार्षिक	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)	साधारण डाक
द्वैवार्षिक	1200 (व्यक्तिगत)	1400 (संस्थागत)	साधारण डाक
चार वर्ष	2300 (व्यक्तिगत)	2700 (संस्थागत)	साधारण डाक
आजीवन	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)	साधारण डाक

(10 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : https://www.kalasamaymagazine.com
https://www.notnul.com

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेंजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016
- नमूना प्रति ₹100/- , एवं रजिस्टर्ड डाक शुल्क ₹50/-

-प्रबंध संपादक

मैं चित्र पर फिल्मी गाने भी लिख देता हूँ

ज्योति भट्ट से अनिस नियाज़ी का साक्षात्कार

अनिस नियाज़ी

अनिस नियाज़ी भारतीय समकालीन कला जगत के सक्रिय एवं सम्मानित चित्रकार हैं। आपने 1983 में शासकीय ललित कला महाविद्यालय, इंदौर से राष्ट्रीय डिप्लोमा (फाइन आर्ट्स) प्राप्त किया। सन् 1979 से आरंभ हुई आपकी एकल प्रदर्शनियों की यात्रा इंदौर, भोपाल और नई दिल्ली की प्रतिष्ठित दीर्घाओं जैसे रवींद्र नाट्यगृह आर्ट गैलरी, आई.टी.जी. आर्ट गैलरी, त्रिवेणी आर्ट गैलरी तथा ललित कला अकादमी-तक विस्तृत रही है। आपने देश-विदेश की अनेक महत्वपूर्ण समूह प्रदर्शनियों, राष्ट्रीय प्रदर्शनियों एवं कला शिविरों में भाग लिया। 'ब्लैक ग्रुप' की प्रदर्शनियों तथा विभिन्न राष्ट्रीय कला आयोजनों में आपकी सक्रिय उपस्थिति उल्लेखनीय रही है। आपको मध्यप्रदेश राज्य पुरस्कार (1994) सहित अन्य सम्मान प्राप्त हुए हैं।

ज्योति भट्ट भारत के प्रमुख प्रिंटमेकर, चित्रकार और फोटोग्राफर ज्योति भट्ट ने महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय,बड़ौदा के फाइन आर्ट्स संकाय से कला शिक्षा प्राप्त की और वहीं लंबे समय तक अध्यापन किया। बड़ौदा की आधुनिक कला परंपरा में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।उनकी कला की विशेषता यह है कि उन्होंने आधुनिक कला की भाषा में भारतीय लोक परंपराओं, प्रतीकों और सजावटी रूपांकनों को सृजनात्मक रूप से समाहित किया। 1960–70 के दशक में उन्होंने गुजरात सहित भारत के कई ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर रंगोली, लोकभित्ति चित्र और पारंपरिक अलंकरणों का व्यापक फोटोग्राफिक दस्तावेज तैयार किया, जो भारतीय लोककला के अध्ययन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है।प्रिंटमेकिंग में उन्होंने एचिंग और अन्य ग्राफिक तकनीकों के माध्यम से लोक रूपांकनों, पक्षी-आकृतियों, वृक्षों और प्रतीकात्मक आकृतियों को आधुनिक संरचना में प्रस्तुत किया। उनकी कला में मन को स्पर्श करने वाली लय, सांस्कृतिक प्रतिमान और भारतीय जीवन के प्रति गहरी संवेदना दिखाई देती है। भारतीय कला में उनके योगदान के लिए उन्हें पद्मश्री सम्मान सहित अनेक सम्मानों से समादृत किया गया है। **-संपादक**

अनिस नियाज़ी: आप अपने प्रारम्भिक जीवन (बचपन) पर कुछ प्रकाश डाले ?

ज्योति भट्ट : मेरा जन्म सौराष्ट्र में हुआ था, उस समय गुजरात स्टेट नहीं बना था, और यह इलाका बम्बई के अंतर्गत आता था। इस क्षेत्र को उस समय काठियावाढ भी कहा जाता था। वहाँ मेरे स्कूल की शिक्षा हुई, मेरी रूचि प्रारम्भ से ही आर्ट में थी, उस समय शुरू से ही विषयों का चुनाव करना होता था, मैंने गणित और विज्ञान विषय नहीं लिया अतः अब मैं केवल आर्ट विषय ही ले सकता था। तब ही मैंने इलैस्ट्रेट विकली में नारायण श्रीघर बेन्द्रे साहब के बारे में पड़ा और उनके पेन्टिंग के जो चित्र छपे थे वे भी मैंने देखे, वे मुझे बहुत अच्छे लगे। वे अलग-अलग स्थानों पर जाकर स्केचेस बनाया करते थे, और उन्हीं स्केचेस के आधार पर वे अपनी पेन्टिंग बनाया करते थे, और उन स्थानों के लैण्डस्केप भी वहीं बनाया करते थे।

एक बार बेन्द्रे साहब घूमते-घूमते लैण्डस्कैप करते हुए भावनगर आये थे। हमारे स्कूल का रिवाज़ था, कि भावनगर में कोई भी विद्धान व्यक्ति आता था तो उन्हें स्कूल में बुलाकर उनका आदर सत्कार किया जाता था। बेन्द्रे साहब के भावनगर मेरे स्कूल में आने से मेरी चित्रकला में रूचि और बढ़ गई।

अ.नि.: चित्रकला के क्षेत्र में आपका पदार्पण कैसे हुआ ?

ज्योति भट्ट: स्कूली शिक्षा के बाद एस.एस.सी. बोर्ड होती थी, जो अधिकांश भारत में बम्बई यूनिवर्सिटी द्वारा संचालित की जाती थी, उसमें पचपन विषय अनिवार्य होते थे, संस्कृत और मेथेमेटिक्स मैंने छोड़ दिया था, अतः अब मैं दूसरे कॉलेज नहीं जा सकता था। मेरी इच्छा शान्तिनिकेतन जाकर शिक्षा प्राप्त करने की थी, मेरे एक चाचा वहाँ पहले से ही थे, मेरा एक दोस्त भी पहले से ही वहाँ अध्ययन करता था, वह भावनगर आया हुआ था, वह सयाजीराव कला-भवन गया था, उसने बताया की बड़ौदा में महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी प्रारम्भ हो रही है, तथा वहाँ पर बेन्द्रे साहब पढ़ाने आने वाले हैं, मैं एम.एस.

यूनिवर्सिटी चला गया वहाँ प्रख्यात शिल्पकार प्रदोषदास गुप्ता प्रिंसिपल थे। बाद में शंखो चौधरी भी वहाँ आ गए। बाद में सयाजिराव कला भवन बन्द कर दिया गया, उसके विद्यार्थियों को भी एम.एस. युनिवर्सिटी में लेकर आ गए।

अ.नि.: बेन्द्रे साहब का चित्रकला सिखाने का तरिका कैसा था ?

ज्योति भट्ट : बेन्द्रे साहब ने एक साल बड़ौदा में रहकर ये देखा की यहाँ पर मुझे काम करने की स्वतंत्रता मिलती है, कि नहीं, वे बम्बई आर्ट स्कूल, या ब्रिटिश आर्ट स्कूल या शांति निकेतन से अलग कुछ करना चाहते थे। जब वे आश्वस्त हो गए की मुझे यहाँ काम करने की स्वतंत्रता है, तब उन्होंने मुझे अपने परिवार को लेने मुंबई भेजा। मैं इससे पहले कभी बम्बई नही गया था अतः डरते-डरते गया और बेन्द्रे साहब के परिवार को बड़ौदा लेकर आया।

ज्योति भट्ट जी का एक इचिंग , शीर्षक बिसरते स्मारक माध्यम मिक्स इंटीग्लियो 1964-68.

अ.नि.: उस समय एम.एस. यूनिवर्सिटी की शिक्षण पद्धति कैसी थी ?

ज्योति भट्ट : बेन्द्रे साहब के पढ़ाने का तरीका अनोखा था। वे सभी कक्षाओं के विद्यार्थियों को एक जगह इकट्ठा काम करने देते थे, वे एक्स्पेरिमेन्ट, इम्प्रोवाईजेशनव स्पांटेनिटी को बहुत महत्व देते थे। अलग-अलग प्रोफेसर अलग-अलग हिस्ट्री के विषय पढ़ाया करते थे।

बेन्द्रे साहब चायनीज़ हिस्ट्री पढ़ाया करते थे, शिक्षण का माध्यम इंग्लिश था, तथा डिप्लोमा क्लास में थ्योरी नहीं करना पड़ता था।

अ.नि. : एम. एस. युनिवर्सिटी में बेन्द्रे साहब द्वारा फ्रेस्को म्यूरन का विभाग बनवाया गया था, उसके बारे में कुछ बतलाइये ?

ज्योति भट्ट : जयपुर में शास्त्री नामक सज्जन ने अपनी पुत्री की याद में वनस्थली विद्यापीठ बनवाया था, विनोद बिहारी मुखर्जी वहाँ गए थे। उन्होंने बताया की फ्रेस्को से मिलता जुलता जयपुरी तरीका है इसे करना चाहिए।

ज्योति भट्ट की कलाकृति

वनस्थली विद्यापीठ लड़कियों का कॉलेज है वहाँ साल भर शिक्षण चलता रहता है। अतः गर्मियों की छुट्टीयों में जब कॉलेज में शिक्षण नहीं होता था तब बेन्द्रे साहब ने म्यूरल सीखने के लिए शान्ति दवे, विनोद तिवारी और मुझे (ज्योति भट्ट को) वनस्थली विद्यापीठ भेजा, और बाद में बेन्द्रे साहब खुद भी आ गए। सन् 1953 में वहाँ एक बड़ा म्यूरल किया गया।

वनस्थली विद्यापीठ में विनोद बिहारी मुखर्जी के साथ ग्यारसीलाल वर्मा मेसन ने काम किया हुआ था, वे "अरास पद्धति" के अच्छे जानकार थे। चार-पाँच साल बाद बेन्द्रे साहब ग्यारसीलाल वर्मा को बड़ौदा ले आये और शैक्षणिक योग्यता न होने पर भी सिफारिश करके उन्हें यूनिवर्सिटी में लगवाया तथा फ्रेस्को पेन्टिंग का नया विभाग बना कर उसका प्रमुख ग्यारसीलाल वर्मा को बनाया।

जब मैं कॉलेज में दूसरे साल में था, तब बेन्द्रे साहब को बम्बई के शिवाजी पार्क के स्वीमिंग पूल के यहाँ म्यूरल बनाने का काम मिला, उन्होंने हमें वहाँ के गाँव भेजा ताकि हम वहाँ की ट्रेडिशनल ड्रेस और रहन सहन देखें फिर वहाँ की ड्रेस मंगवाई उसी के अनुसार म्यूरल बनाया गया। म्यूरल बनाने के दौरान बेन्द्रे साहब हमारे साथ ही रहते थे, हमारे साथ ही खाना खाते थे। इस तरह हमें बेन्द्रे साहब के साथ रहने का मौका मिल गया। बेन्द्रे साहब ऐसे छात्रों को प्राथमिकता देते थे, जो पेन्टिग नहीं सीखे थे, उनका मानना था कि जो विद्यार्थी शान्ति निकेतन या अन्य स्थानों से जो गलत सीख कर आये हैं पहले उसे बाहर निकालना होता है और फिर उसे सिखाया जा सकता है।

अ.नि.: सन् 1960 में आप नेपल्स की अकादेमीया दी बेला आरटी और फिर प्राट इंस्टिट्यूट न्यूयार्क में ग्राफिक का अध्ययन करने गये थे, उसके बारे में कुछ बताईये ?

ज्योति भट्ट : उस समय इंडिया में इंटेगलियों नहीं होता था। इसलिए वो किया।

अ.नि.: आपके शुरूआती कामों में घनवादी रूझान देखने को मिलता है ?

ज्योति भट्ट : उस समय बेन्द्रे साहब का प्रभाव था, जैसा वे करते थे, हम भी वैसा ही करते थे।

अ.नि.: आपके बाद के कामों (ग्राफिक) में कभी कुछ शब्द लिखे होते हैं, कुछ प्रतिक कुछ अभिप्राय अंकित होते हैं, कभी, कभी फिल्मी गाना भी अंकित किया हुआ दीखता है, इस पर कुछ प्रकाश डाले?

ज्योति भट्ट : काम करते समय जो भी मन में चल रहा होता है, गाना चल रहा होता है, तो वही लिख देता हूँ, सोंच समझ के कुछ नहीं करता। बेन्द्रे साहब के साथ रहकर सीखने का मोका मिला, बहुत अच्छा लगता है।

सम्पर्क: 5, मेजेस्टिक नगर, खजराना इन्दौर (म.प्र.) मो. 9424008904

कला संवाद

'बर्वे संचित'

चित्रकार प्रभाकर बर्वे और विक्रम मराठे के बीच पत्राचार

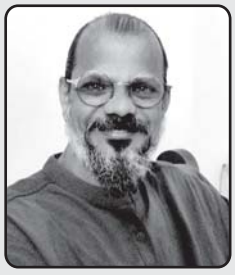

विक्रम मराठे

विक्रम मराठे ने अभिनव कला महाविद्यालय, पुणे से जी.डी. आर्ट तथा टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ से एम.ए. (इंडोलॉजी) की उपाधि प्राप्त की है।उन्होंने राजा केळकर संग्रहालय में Exhibition Designer के रूप में तथा झपूर्झा संग्रहालय में Curator के पद पर कार्य किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने विभिन्न विरासत संरक्षण एवं संवर्धन परियोजनाओं में सक्रिय सहभाग लिया है।वर्ष 1992 से 1994 के दौरान उन्हें चित्रकार प्रभाकर बर्वे के साथ पत्राचार के माध्यम से संवाद का अवसर मिला, जिससे उन्हें उनका मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। पिछले पंद्रह वर्षों से वे 'जंग' (रस्ट) को माध्यम बनाकर कला-सृजन कर रहे हैं।पुणे, मुंबई, कोल्हापुर, दिल्ली तथा नोएडा में उनके एकल एवं समूह प्रदर्शनों का आयोजन हुआ है।

जब मैं अभिनव कला महाविद्यालयके दूसरे वर्ष में था, तब एक मित्र के कमरे में मुझे 'कोरा कैनवस' मिली। लेखक का उपनाम 'बर्वे' पढ़कर मुझे थोड़ी जिज्ञासा हुई, फिर मैंने किताब पढ़ना शुरू किया और 'कोरा कैनवस' और बर्वेजी से मेरा प्रेम हो गया। शुरुआत में, मैं उसमें मौजूद चित्रों और रेखाचित्रों से प्रभावित हुआ। फिर धीरे-धीरे मैंने किताब पढ़ना शुरू किया। और यहीं से बर्वेजी के जीवन की मेरी यात्रा शुरू हुई। 'कोरा कैनवस' पढ़ने के बाद मैं सचमुच भावविभोर हो गया। प्रकृति के प्रति उनके प्रेम और कला के मूल सिद्धांतों की उनकी सूक्ष्म व्याख्या को पढ़कर, मेरे मन में इस लेखक-चित्रकार से मिलने की तीव्र इच्छा जागृत हुई। फिर मैंने बर्वे का पता खोजना शुरू किया। मुझे पता नहीं था कि पता कहाँ मिलेगा, लेकिन आखिरकार मुझे कॉलेज की लाइब्रेरी में 'कला किर्द' नाम की एक निर्देशिका मिल गई। और उसमें बर्वेजी का पता भी था।

1990 में प्रकाशित 'कोरा कैनवस' पुस्तक मुझे 1992 में मिली। मैंने अपने कॉलेज के दोस्तों और शिक्षकों से इसके बारे में पूछा, लेकिन किसी को भी इस पुस्तक के बारे में कुछ पता नहीं था। लेकिन इससे मुझे जो ज्ञान मिला, वह बहुत मूल्यवान था। बर्वेजी का पता मिलने के बाद, मैंने फरवरी में उन्हें एक पत्र लिखा - मैंने उन्हें 'ब्लैंक कैनवस' में अपने अनुभव बताए। "आपने एक खाली कैनवस को बनाने की प्रक्रिया को पहले और बाद में बहुत कुशलता से दर्शाया है। एक कला छात्र होने के नाते, आपने उस बात को बहुत स्पष्टता और सरलता से प्रस्तुत किया है जिसे मैं महसूस तो करता हूँ लेकिन व्यक्त नहीं कर पाता।" एक कलाकार और प्रकृति के बीच कितना गहरा संबंध है, कला की रचना के लिए प्रकृति के साथ एक होना कितना आवश्यक है? इन बातों को मैंने इस पुस्तक से समझा। उस समय मैं हाइकिंग और रॉक क्लाइम्बिंग किया करता था। इसलिए प्रकृति के बीच बिताए अपने अनुभवों की तुलना मैं उनकी रचनाओं से कर पाया। इस पत्र में मैंने पूछा कि बर्वेजी की प्रदर्शनी कहाँ चल रही है? क्या मैं उनके करियर पर, अपने डिप्लोमा के लिए थीसिस लिख सकता हूँ? पत्र लिखने के बाद मुझे बहुत उत्सुकता हुई कि क्या इतना महान चित्रकार इसका जवाब देगा? और एक हफ्ते के भीतर, 7 मार्च 1992 को, मुझे बर्वेजी का पत्र एक पोस्टकार्ड पर मिला। मैं बहुत खुश हुआ। मैंने पत्र को बार-बार पढ़ा और उसे अपने मन में संजो लिया।

बर्वे लिखते हैं - "मुझे भी यह अनुभव है कि हम प्रकृति के बीच रहकर अपने बारे में बहुत कुछ सीखते हैं।" उस समय मुंबई में उनकी चित्रकला प्रदर्शनी चल रही थी। इसलिए उन्होंने कैटलॉग भेजने की सहमति दी। और इसलिए उन्होंने वह पत्र भेजा। उन्होंने सुझाव दिया कि मैं अपने शोध प्रबंध के लिए 'हमारी समग्र चित्रात्मक धारणा कैसे विकसित होती है' विषय चुनूँ और यह भी बताया कि मुझे उनके चित्र का संदर्भ के रूप में उपयोग करने में कोई समस्या नहीं होगी। उन्होंने यह भी कहा कि यदि मुझे कभी मुंबई आने का अवसर मिले, तो हम मिल सकते हैं और इस विषय पर चर्चा कर सकते हैं। मैं वह पत्र कॉलेज ले जाया करता था और सब मिलकर उसे पढ़ते थे।

इसी दौरान चित्रकार विजय शिंदे पुणे में बस गए थे।

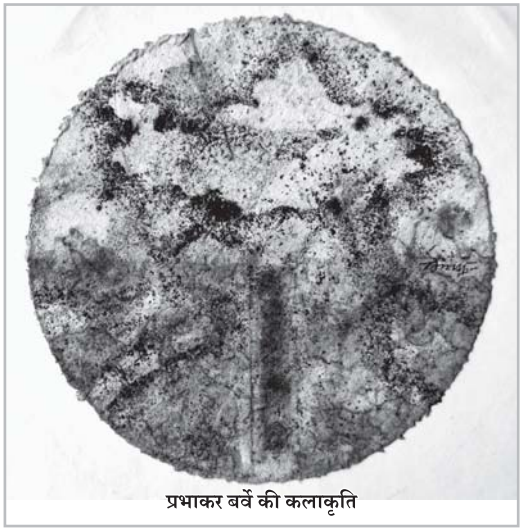

प्रभाकर बर्वे की कलाकृति

और उन्होंने हम जैसे युवा चित्रकारों के साथ खुलकर बातचीत शुरू कर दी। उनके जैसे जोशीले व्यक्ति से मिलकर हमें पता चलने लगा कि मुंबई, बड़ौदा, भोपाल में आजकल क्या चल रहा है? कौन सा कलाकार किस तरह का काम करता है? ऐसी ही कई बातें। मैंने भी कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर चित्रकारी शुरू कर दी। तब कुछ सवाल उठने लगे और उन्हें पूछने, उनका हल निकालने के लिए मुझे बर्वे के रूप में एक मार्गदर्शक मिला।

6 नवंबर 1992 के अपने पत्र में उन्होंने रंगों के बारे में अत्यंत सुंदर टिप्पणी की - "चित्रकला में रंग जितने सहज और स्वाभाविक होंगे, उतना ही अच्छा होगा, पर हर रंग की एक शुद्ध अवस्था होती है, जिसे खोजना आवश्यक है।" वे आगे लिखते हैं - "शुद्ध रंग को शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता, उसे केवल अनुभव किया जा सकता है। एक चित्रकार के लिए वास्तविक चित्र ही सब कुछ होता है; उसके सामने पूरा जीवन भी छोटा लगने लगता है। काम करते-करते रास्ता अपने आप खुल जाता है।"

नवंबर 1992 में अचानक मुझे उनसे व्यक्तिगत रूप से मिलने का अवसर मिला। मुंबई के एन.सी.पी.ए. में छात्रों के लिए आयोजित एक राष्ट्रीय शिविर में हमारे कॉलेज से मुझे और आठ विद्यार्थियों को चुना गया था। बर्वे वहाँ व्याख्यान देने आए थे। व्याख्यान के बाद मैंने उन्हें अपने काम की कुछ तस्वीरें दिखाईं। उन्होंने कहा कि उनमें पॉल क्ली की झलक दिखाई देती है। उस समय तक मैंने पॉल क्ली का काम देखा भी नहीं था। पुणे लौटकर मैंने पुस्तकालय से उनकी किताबें पढ़ीं और उनकी सरलता तथा विषयों की विविधता से प्रभावित हुआ।

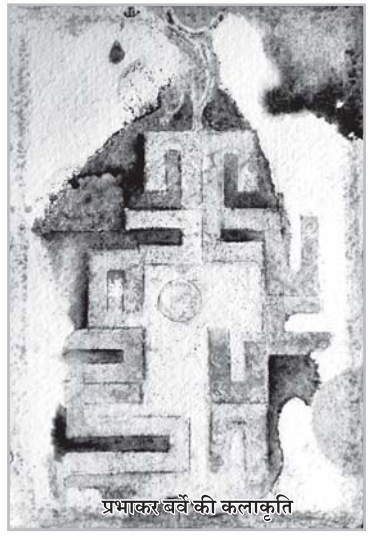
प्रभाकर बर्वे की कलाकृति

बाद में पी. ए. धोंड की 'रापन' पढ़ते हुए मुझे पता चला कि गायतोंडेजी भी अपने शुरुआती दौर में पॉल क्ली से प्रभावित थे। संयोग से मुझे गायतोंडे की कुछ शुरुआती पेंटिंग्स देखने को मिलीं और लगा कि उन्होंने बाद के वर्षों में भी पॉल क्ली की काव्यात्मकता को अपने काम में बनाए रखा। इसी दृष्टि से मुझे पॉल क्ली और बर्वे के बीच सरलता और स्वप्निलता का एक सूक्ष्म सूत्र दिखाई देने लगा। इसलिए मैंने उन्हें पत्र लिखकर उनकी शुरुआती शैली, प्रेरणाओं और आदर्शों के बारे में पूछा, ताकि उनके कार्य को बेहतर समझ सकूँ। कार्यशाला के दौरान एक रोचक घटना भी हुई। हमने उनसे पूछा कि हम उनसे मिलने कब आ सकते हैं। उन्होंने कहा कि कार्यशाला समाप्त होने के बाद आ जाना। परंतु कार्यशाला के बाद शाम को हम पुणे के मित्र वी.टी. से कुर्ला तक लोकल ट्रेन लेने का साहस नहीं जुटा पाए और उन्हें सूचित भी नहीं कर सके, जबकि उन्होंने हमारे स्वागत की पूरी तैयारी कर रखी थी।

उन्होंने मार्च में एक अंतरराष्ट्रीय पत्र लिखा था और मेरे फरवरी 1993 के पत्र का जवाब भेजा था। उन्होंने देरी का कारण बताते हुए शुरुआत में ही माफी मांग ली थी। मार्च में, जहांगीर में उनकी कला वस्तुओं की प्रदर्शनी आयोजित की गई थी - इस अवसर पर, उन्होंने त्रि-आयामीता, यानी 'स्थान' के बारे में अलग तरह से सोचा और लिखा कि उन्हें 'भ्रम सिद्धांत' का उपयोग करके कुछ वस्तुएं बनाने में बहुत आनंद आया। बाद में, उन्होंने पॉल क्ली के बारे में विस्तार से लिखा। उन्होंने यह भी बताया कि वे भारतीय चित्रकारों के इतने करीब क्यों महसूस करते हैं। बर्वे लिखते हैं - "मैं अपने छात्र जीवन के दौरान पॉल क्ली के चित्रों से बहुत प्रभावित हुआ था। इसका एक कारण यह है कि वे अपने चित्रों में स्थान को लघु चित्रकला की तरह ही प्रयोग करते थे। अर्थात्, जहाँ उनके समकालीन (घनवादी, फाउवादी) त्रि-आयामीता के साथ प्रयोग कर रहे थे, वहीं पॉल क्ली एक प्राच्य शैली में द्वि-आयामी चित्रकला स्थान के साथ प्रयोग कर रहे थे।" शायद इसीलिए पॉल क्ली न केवल मेरे बल्कि कई भारतीय चित्रकारों के भी बहुत करीब हैं।"

बाद में उन्होंने अपनी कलात्मक यात्रा – बनारस – तंत्र कला के बारे में लिखा। "पॉल क्ली के बाद, मैं तंत्र (अनुष्ठानिक आरेख, उपकरण) आकृतियों को देखकर प्रभावित हुआ। उस समय मैं बनारस में था। चूंकि तंत्र में उस समय की 'ऑप्टिकल आर्ट' की तरह प्रकाशीय भ्रम थे, इसलिए मैं आकृतियों की उस बिल्कुल नई दुनिया (उस समय) की ओर बहुत आकर्षित हुआ। लेकिन एक-दो साल में मैं इससे 'मुक्त' हो गया।"

उसी पत्र में, उन्होंने उपरोक्त एन.सी.पी.ए. कार्यशाला की घटना के बारे में अपनी नाराजगी को हल्के शब्दों में व्यक्त किया, और अंत में, उन्होंने यह लिखकर इस मामले को समाप्त कर दिया। पत्र के अंत में वे लिखते हैं- "प्रत्यक्ष कार्य का अनुभव सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हमें अपनी गलतियों और सीमाओं का एहसास होता है और साथ ही हमें यह भी पता चलता है कि 'आसान' क्या है। वास्तव में, प्रत्यक्ष कार्य का कोई विकल्प नहीं है। यह एक खोजी दृष्टिकोण विकसित करता है, और हम सभी को इस तरह के दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यदि हम इससे कुछ नए तत्व (दृश्य) खोज सकें, तो यह भारतीय कला की ओर से विश्व को एक उपहार होगा। हालांकि, अब स्थिति अलग है।" इस पत्र के बारे में एक रोचक बात यह है कि जब मुझे यह पत्र मिला, तो किसी ने इसे खोलकर दोबारा टेप कर दिया था। इसलिए मुझे थोड़ा संदेह हुआ। लेकिन इसे स्पष्ट करने के लिए, बर्वेजी ने स्वयं पत्र के अंत में एक नया पैराग्राफ लिखा- "मैंने पत्र को दोबारा पढ़ने के लिए खोला था। इसलिए मैंने इसे दोबारा टेप किया है।" बर्वेजी की इस ईमानदारी ने उनके प्रति मेरे सम्मान को और बढ़ा दिया।

बाद में, मई 1993 में, मुझे बर्वेजी के घर जाने का अवसर मिला। उद्देश्य मेरे डिप्लोमा थीसिस के लिए बर्वेजी से चर्चा करना और उनसे

मिलना था। एक दिन पहले, मैं कुर्ला में अपनी एक बहन के साथ रुका था और सुबह 10 बजे बर्वेजी के पास पहुँचा। बर्वेजी की अटूट दयालुता का अनुभव करने के बाद, मैं उनसे हुई ढेर सारी बातचीत के अविस्मरणीय अनुभव के साथ वापस लौटा। मुझे एहसास हुआ कि बर्वेजी का व्यक्तित्व उनकी चित्रकला और लेखन की तरह ही सरल था। मुझे याद नहीं कि उस समय हमारी क्या बातचीत हुई थी। लेकिन मुझे निश्चित रूप से याद है कि मैं पुणे लौटते समय सचमुच हवा में तैर रहा था, उनके व्यक्तित्व से अभिभूत था।

फिर जुलाई में, मैंने उन्हें पत्र लिखकर सूचित किया कि मेरी थीसिस का विषय "पॉल क्ली और भारतीय चित्रकारों पर उनका प्रभाव" है और मैं इसके लिए उनसे मिलना चाहता हूँ। मई में हुई बैठक के दौरान, हमने तकनीकी कला पर कुछ चर्चा अधूरी छोड़ दी थी। हमने उन्हें बताया कि हम उस विषय पर भी बात करना चाहते हैं। हमें इस पत्र का उत्तर 22 जुलाई 1993 को मिला, जिसमें उन्होंने हमें आश्वासन दिया कि मुंबई आने पर अगर हम उन्हें फोन करें तो हम उनसे कभी भी मिल सकते हैं। उसी पोस्टकार्ड में बर्वे लिखते हैं, "मेरा मानना है कि यदि हमारी पेंटिंग का विषय-वस्तु वास्तविक जीवन में प्राप्त होने वाले विभिन्न अनुभवों से बनता है, तो जब ऐसी ठोस विषय-वस्तु व्यक्त की जाती है, तो वह स्वतः ही सही आकार ले लेती है। हमारी विषय-वस्तु को केवल सतही आकृतियों (कला के मानदंड) को देखकर उसमें समाहित नहीं किया जा सकता।"

डिप्लोमा वर्ष के दौरान उनसे फोन पर भी लंबी बातचीत होती रही। बाद में मैं पारिवारिक व्यवसाय में व्यस्त हो गया और चित्र बनाना कम हो गया। इसी बेचैनी के दौर में मैंने अपनी फॅब्रिकेशन वर्कशॉप में एक प्रयोग किया - लोहे के टुकड़ों को हाथ से बने कागज पर रखकर जंग बनने दिया, जिससे अनोखी आकृतियाँ उभरीं। मैंने यह अनुभव उन्हें लिख भेजा। 2 सितंबर को आए उनके उत्तर में उन्होंने लिखा - "नई छवि के साथ-साथ नई अवधारणा पर भी विचार करना जरूरी है।" उन्होंने 'सफेद पर सफेद' (काज़िमिर मालेविच) का उदाहरण देते हुए दृश्य अवधारणा की गहराई समझाई। इसने मुझे सोचने पर मजबूर किया कि केवल जंग के धब्बे बना देना चित्रकला नहीं है; उसके पीछे एक विचार होना चाहिए।

घर के व्यवसाय से जुडने की वजह से मुझे पेंटिंग करने काफी कम हो गया था, और बर्वेजी ने इसके साथ आने वाले अवसाद और चिंता के बारे में आगे लिखा है - "अगर पेंटिंग के विचार से लगातार जुड़ाव बना रहे और काम कम हो जाए तो कोई बात नहीं, लेकिन पेंटिंग से अपना जुड़ाव टूटने न दें। अगर पेंटिंग की संख्या से ज़्यादा गुणवत्ता महत्वपूर्ण है, तो पेंटिंग की संख्या की बिल्कुल भी चिंता न करें।" - बर्वेजी के शब्दों ने मुझे बहुत सुकून दिया। और मुझे अच्छा काम करने के लिए एक अलग तरह की प्रेरणा मिली। उन्होंने मुझे मेरे डिप्लोमा के अंकों पर बधाई भी दी - उन्होंने लिखा - "खैर, ये सब ऊपरी बातें हैं, जीवन की असली परीक्षा अलग होती है। मुझे पूरा यकीन है कि आप उसमें ज़रूर सफल होंगे।" प्रयोग करना महत्वपूर्ण है, नई चीजों को खोजने की इच्छा बहुत जरूरी है, फिर चाहे हम कोई भी काम कर रहे हों, जब तक हमारी कलात्मक खोज बरकरार है, चिंता करने की कोई बात नहीं है। आज हो या कल - रास्ता मिल ही जाएगा।" इस पत्र में बर्वेजी ने कई महत्वपूर्ण बातें कही हैं - और मेरे जैसे एक नौजवान के लिए, जिसने अभी-अभी अपनी कला शिक्षा पूरी की थी और वास्तविक दुनिया में कदम रख रहा था, यह पत्र जीवन भर के लिए मार्गदर्शक बन गया।

इस पत्र का उत्तर मिलने से पहले ही मैंने बर्वेजी को एक और पत्र लिखा। उन्होंने 20 सितंबर को तुरंत उत्तर दिया। मेरा काम धीरे-धीरे शुरू हो चुका था और इसी दौरान कई सवाल उठने लगे। - क्या कोई शैली होनी चाहिए? अमूर्त चित्रकला में विषयवस्तु क्या होती है या क्या उसमें विषयवस्तु होनी चाहिए? बर्वेजी ने मेरा संदेह दूर किया। उन्होंने कहा, "विषयवस्तु स्वयं अमूर्त होती है - अर्थात्, उसका रूप विषय के अनुसार निश्चित होता है - वह मूर्त नहीं होती।" विस्तार से समझाने के बाद उन्होंने कहा - विषयवस्तु का रूप विशुद्ध रूप से दृश्य होता है। इसे शाब्दिक रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि दृश्य प्रमाण ही एकमात्र प्रत्यक्ष प्रमाण है। शैली - यह बाहरी रूप है। और इसका महत्व सीमित है, चित्रकार की खोज शैली से नहीं, बल्कि चित्रकला के अर्थ या विषयवस्तु से होती है जो शैली से परे झाँकती है। चित्रकार की शैली, जिसे अक्सर तकनीक से जोड़ा जाता है, मेरे लिए उतनी महत्वपूर्ण नहीं है। "महत्वपूर्ण यह है कि किसी चित्र में समग्र दृश्य परिणाम से उत्पन्न होने वाला अनुभव कितना गहरा और सार्वभौमिक है। भले ही उसका प्रारंभिक रूप व्यक्तिगत हो, उसका अंतिम परिणाम सार्वभौमिक हो सकता है।" इसके लिए उन्होंने तुकारामजी के एक अभंग का उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं – **'मन करा रे प्रसन्न, सर्व सिद्धिचे कारण '** ('मन को प्रसन्न करो, यही समस्त उपलब्धियों का कारण है') बौद्धिक और भावुक दोनों प्रकार के लोगों को समान रूप से प्रभावित करेगा – क्योंकि यह मूल रूप से जीवन के अनुभव का सार है। यही कारण है कि वान गॉग के चित्र इतने प्रभावशाली लगते हैं या रोथको या गायतोंडेजी के चित्रों के सामने लोग नतमस्तक हो जाते हैं। और ऐसे सार का अनुभव करना, उसे खोजना और उसे व्यक्त करने का प्रयास करना ही एक चित्रकार का पहला कर्तव्य है।

बर्वेजी के इस आखिरी पत्र में, और विशेष रूप से इस आखिरी पैराग्राफ में, उन्होंने एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है। 20 सितंबर 1994 के पत्र के बाद, मेरे काम में भी गति आ गई, वैचारिक भ्रम कम हो गया; इसलिए, मुझे पत्र लिखकर किसी भी शंका को दूर करने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई, और केवल कल्पना और खुशी के लिए पत्र लिखना उचित नहीं लगा, इसलिए मैंने उन्हें और पत्र नहीं लिखे, और अचानक 6 दिसंबर 1995 को, बर्वेजी अपने पीछे इतने सारे 'संग्रहित विचार' छोड़ गए और आकार और स्थान से परे अंतरिक्ष में चले गए।

■

दृश्य के भीतर दृश्य की आभासी दुनिया: डिजिटल पेंटिंग

विनोद शाही

विनोद शाही हिंदी साहित्य के सुविख्यात आलोचक, चिंतक, कथाकार, नाटककार, कवि और डिजिटल माध्यम के कलाकार हैं। डॉ. शाही ने समकालीन साहित्यिक विमर्श को नई वैचारिक दृष्टि प्रदान की है। आलोचना के क्षेत्र में उनकी पुस्तकें-साहित्य के नये प्रतिमान, हिंदी आलोचना की वैचारिकी, हिंदी साहित्य का इतिहास : एक उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श आदि हिंदी आलोचना को नए परिप्रेक्ष्य में स्थापित करती हैं। कथा, नाटक और कविता में भी उनका सृजन समान रूप से सक्रिय और प्रभावशाली रहा है। उन्हें रामविलास शर्मा आलोचना सम्मान (2010), शिगाफ़ी साहित्यकार सम्मान (पंजाब सरकार, 2015), वनमाली कथा आलोचना सम्मान (2020) तथा राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति सम्मान (2005) सहित अनेक प्रतिष्ठित सम्मान प्राप्त हुए हैं।

दृश्य-कला के इतिहास में आधुनिक काल का जो सबसे बड़ा योगदान है, वह यह है कि उसने दृश्य की भौतिक सीमाओं का अतिक्रमण करने का रास्ता प्रशस्त किया।हर वस्तु का एक पदार्थगत अस्तित्व होता है। उसका बोध हमें उसके प्रत्यक्ष या मूर्त्त रूप के माध्यम से होता है। परंतु वह जो वस्तुगत यथार्थ होता है, वह अपने आप में पर्याप्त नहीं होता। उसके पीछे और गहराई में एक अन्य यथार्थ, उसी के सूक्ष्म आयाम की तरह वहां मौजूद रहता है। वह हमें वस्तु अथवा दृश्य के भीतर के सच को देखने, जानने और समझने लायक बनाता है। उसे हम बाहरी वस्तु को देखते हुए महसूस तो कर पाते हैं, परंतु स्पष्ट रूप में देख नहीं पाते। हम बाहरी आंख से जो देखते हैं, वह ठोस तो होता है, पर सतही भी होता है। तो भीतर की आंख हमें सतह के पास देखने में मदद करती है। भीतर की आंख दृश्य को तरल बनाकर वस्तुओं के मर्म में प्रवेश करने के लिए, हमें एक अलग तरह की दृष्टि प्रदान करती है।

यह दृष्टि कुछ-कुछ वैसी होती है, जिसे हम सपनों के दौरान अचानक उपलब्ध हो जाते हैं। इस तरह जागते हुए और सपने में रहते हुए हम दृश्य और वस्तुओं के दो अलग संस्करण देखा करते हैं। जागृत और स्वप्न के संसारों की छवियों को, एक-दूसरे से जोड़कर, एक ही दृश्य के रूप में प्रस्तुत करने का काम अतियथार्थवादी दृश्य-कला के द्वारा मुमकिन हो सका।

लेकिन परंपरागत दृश्य-कला के जो उपकरण हैं, वे हमें कभी इतनी स्वतंत्रता नहीं देते कि हम दृश्य से जुड़ी हुई तमाम सीमाओं का अतिक्रमण कर सकें। रेखांकन, रंग विधान और दृश्यक्रम के परंपरागत कैनवास पर अंकित चित्र, एक हद तक ही अपनी सीमाओं के पार जा सकते हैं। दरअसल दृश्य और वस्तुओं के संयोजन बेहद जटिल होते हैं। उन सबको नियंत्रित संयोजित, परिवर्तित और अपने मुताबिक पुनस्संयोजित और पुनर्रचित करना, परंपरागत कैनवास पर किए गए काम में बेहद कठिन हो जाता है। इस मामले में डिजिटल दृश्य कला, बहुत सी इस तरह की सीमाओं के पार जाने में हमारी काफी मदद कर सकती है।

डिजिटल माध्यम हमें यह सुविधा देता है कि हम किन्ही वस्तुओं या दृश्य के संयोजनों को उनकी पृष्ठभूमियों से अलहदा करके उन्हें भिन्न पृष्ठभूमियों में रखकर एक अलग रूप में देख सकते हैं। यह भी संभव होता है कि हम रंगो, उनके शेड्स, छायाभासों या भिन्न-संयोजनों को अपनी मर्जी से 'ब्लर' कर सकते हैं, डॉटस या 'पिक्सल्स' में विखंडित कर सकते हैं, या एकदम किसी नए रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। सामान्य दृश्य को जलमग्न दशा में ले जा सकते हैं, अथवा दो दृश्यों को एक-दूसरे में

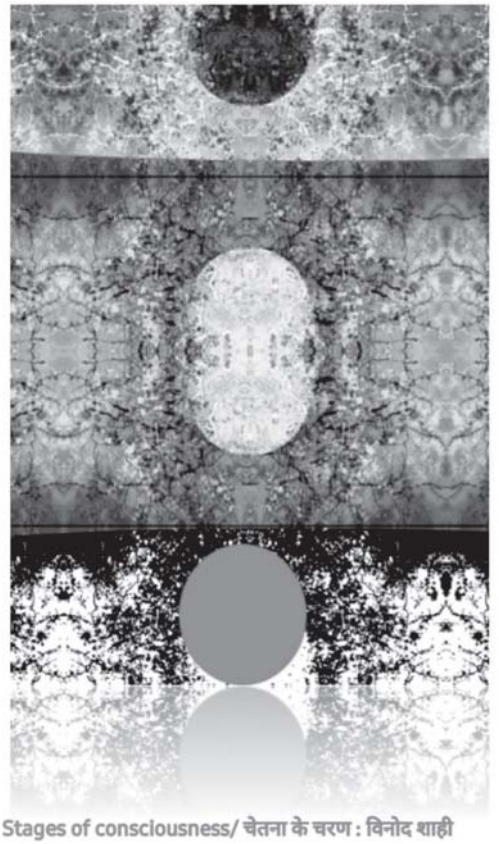

Stages of consciousness/ चेतना के चरण : विनोद शाही

विनोद शाही की डिजिटल कृति

'मर्ज' कर सकते हैं। डिजिटल दृश्य-कला हमें इस तरह के बहुत से 'नये टूल्स' के साथ काम करने की स्वतंत्रता देती है। 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' यानी 'संचार मेधा' की मदद से आप अपनी पसंद की छवि को डिजिटल रूप में बने-बनाये रूप में भी उपलब्ध कर सकते हैं। परंतु वह पहले से बनाई जा चुकी छवियों जैसी ही कोई और छवि होने की वजह से मौलिक नहीं होती और यांत्रिक होने की वजह से उतनी प्रभावित भी नहीं करती। परंतु आप उसे एक आधार की तरह इस्तेमाल करके उसे अपने मुताबिक एकदम नए और मौलिक रूप में दोबारा रच सकते हैं। यह भी मुमकिन है कि आप किसी चित्र पर काम करते हुए उसे एक कला वस्तु में बदल दें। लेकिन यह जो तमाम तकनीकी या उच्च-तकनीकी उपकरण हैं, वे कलाकार की दृष्टि में सहायक या पूरक की भूमिका में ही हो सकते हैं, उसका विकल्प नहीं हो सकते। किसी पेंटिंग को कला-वस्तु बनाने का असल काम कलाकार की वह दृष्टि ही करती है, जो उसे मौलिक बनाती है तथा दृश्य की गहराइयों में प्रवेश करती हुई कुछ नया रचने के लिए उत्सुक प्रतीत होती है।

यहां सबसे ज़रूरी बात यह है कि डिजिटल दृश्य-कला अपने आप में उतना अर्थ नहीं रखती, जितना अर्थ उसे वह अनुभूति, संवेदना, विचार, भाव या चेतना प्रदान करती है, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए कोई कलाकार इस माध्यम को अपनाता है।

परंपरागत दृश्य-कला को गहन सौंदर्य मूलक आस्वाद के हेतु की वस्तु की तरह ग्रहण किया जाता रहा है। डिजिटल दृश्य कला इस सौंदर्य वस्तु को, अवधारणा-मूलक या अनुभूति-मूलक वस्तु में बदल देती है। इसमें हम किसी दृश्य के साथ संबंधित सौंदर्य से ताल्लुक रखने वाले आस्वाद को ही उपलब्ध नहीं होते, अपितु उस दृश्य के माध्यम से व्यक्त होने वाले भाव, विचार, अनुभूति, धारणा या चेतना मूलक पक्ष को आस्वाद की वस्तु में बदलता हुआ पाते हैं। अंकित दृश्य या वस्तु यहां अपने आप में महत्वपूर्ण होने के बावजूद, भीतर छिपे हुए दृश्य से संबंधित भाव, अनुभूति, विचार या चेतना की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में ही अधिक ग्राह्य होने लगती है। इस तरह हम दृश्य के भीतर के दृश्य को नियामक की भूमिका में आता हुआ देखते हैं।

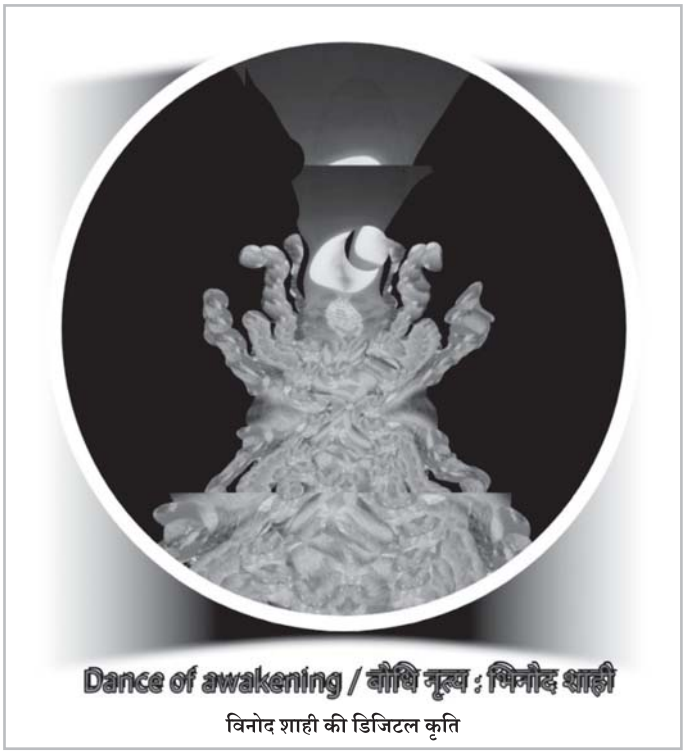

विनोद शाही की डिजिटल कृति

परंपरागत दृश्य-कला में कलाकार कौन है, यह बात अधिक महत्वपूर्ण रहती है। डिजिटल दृश्य कला इस मामले में भी समस्या पैदा करने वाला माध्यम प्रतीत होती है। यहां सजग रूप में कुछ रचने वाला रचनाकार केंद्रीय भूमिका में नहीं रहता। कलाकार के व्यक्तित्व की बजाय उसका अंतर व्यक्तित्व अधिक सक्रिय हो जाता है। तो वह जो हमारा भीतर का व्यक्तित्व है जब वह स्वयं को अभिव्यक्त करने की स्थिति में आता है, तो वह ठीक वही व्यक्ति नहीं होता, जो सजग रूप में रचना करता है। वह एक तरह से अपने भीतर प्रकट हो गई किसी स्वप्न-छवि को दृश्य-कला में बदलते हुए देखता है और रचनाकार होने की वजाय, उसका साक्षी ही अधिक होता है। वह पाता है कि डिजिटल माध्यम उसके स्वप्न की छवि को किस प्रकार मूर्त रूप प्रदान कर रहे होते हैं। इस तरह डिजिटल दृश्य-कला के रचनाकार के व्यक्तित्व के अलावा, डिजिटल माध्यम भी रचनाकार की भूमिका में होता है। वह अपने विपुल भंडार के भीतर से बहुत सी छवियों को प्रस्तुत करता है। ऐसा करता हुआ वह उन्हें भी उस छवि की पृष्ठभूमि की तरह एक नई शक्ल दे रहा होता है।

लेकिन दृश्य-कला के डिजिटल माध्यम की एक बड़ी समस्या है। वह यह कि वह मूलतः छवि मात्र होती है। इसका असंख्य बार पुनरुत्पादन संभव है। इसके मूल एवं पुनरुत्पादित छवि में अंतर करीब-करीब खत्म हो जाता है। थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ दूसरे लोग उन्हें अपनी कलाकृतियों के रूप में भी पुनर्प्रस्तुत कर अपना बना लेने लायक हो सकते हैं। इससे कलाकृति की बाजार-खपत और वितरण को नियंत्रित करना कठिन हो जाता है। कृति के मूल और पुनरुत्पादित रूप में फर्क ना होने से, उसकी प्रामाणिक प्रति कौन सी है, यह तय करना कठिन हो जाता है।

डिजिटल दृश्य-कला की दूसरी बड़ी समस्या यह है कि उसमें मूल कृति ही नहीं, उसकी आधारभूत वस्तु और दृश्य भी, अपने वस्तुपरक भौतिक आधार को खो देते हैं। अनेक दफा आभासी छवियां कृतिका आधार बनती है और जो कृति सामने आती है उसका अस्तित्व भी मूलतः आभासी ही होता है।

अब हम इस बात पर विचार कर सकते हैं कि डिजिटल कलाकृति में

प्रस्तुत की गई वस्तु या दृश्य की जो छवि है, उसके आभासी होने से, उसे कलागत दृष्टि से नुकसान क्या होता है। जवाब यह है कि इससे कलाकृति, एक कला-विधा के रूप में, अपनी विश्वसनीयता को खो देने के संकट का शिकार हो सकती है। वह नयी और मौलिक होने की वजह से जिज्ञासा, कौतूहल और विस्मय तो पैदा कर सकती है, परंतु उसे जीवन और जगत के विश्वसनीय प्रतिनिधि के रूप में देख पाना कठिन हो जाता है।

हालांकि जहां तक जीवन और जगत के आंतरिक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करने का सवाल है, डिजिटल दृश्य-कला बेहद अर्थपूर्ण, प्रभावी और अनुकरणीय तक मालूम पड़ सकती है। इससे कला के संजीदा दर्शक और पारखी को यह लग सकता है कि हम यथार्थ के समग्र अनुभव की बजाय, उसके आंतरिक पक्ष के अनुभव के लायक ही अधिक हो रहे हैं। इसलिए उन्हें यह यथार्थ को खंडित विखंडित करने से जुड़ी बात प्रतीत हो सकती है।

इसकी असल वजह यह है कि ऐसी कलाकृति के कलाकार रचयिता के लिए भी, वस्तु जगत और डिजिटल संसार के बीच की विभाजक-रेखा खो रही होती हैं। उनकी रचनाशीलता का एक हिस्सा उनका अपना होता है और दूसरा कंप्यूटर का। इससे रचनाकार एक तरह की सांझी रचनाशीलता के क्षेत्र में खुद को सक्रिय होता हुआ पाता है।

लेकिन इसका एक दूसरा पक्ष भी है। वह यह है कि ऐसा होने के बावजूद डिजिटल कलाकृति जो कहती है, वह रचनाकार के अंतर्मन के मूल सरोकार का बेहतर प्रतिनिधित्व करने वाली होती है।

तैल चित्र या वाटर कलर आदि परंपरागत माध्यमों से संबंधित दृश्य कलाकृतियां मूल-वस्तु या दृश्य को यथासंभव विश्वसनीय रूप में पुनर्प्रस्तुत करने या उसके द्वारा किसी गहरे अर्थ को व्यंजित करने का काम करती रही है। डिजिटल कलाकृति इस प्रकार की पुनर्प्रस्तुति या प्रतिनिधित्व-मूलकता को कंप्यूटर के कौशल के हवाले कर देती है और खुद उसके गहरे अर्थ-व्यंजक पक्ष पर ही अधिक केंद्रित रहती है। वस्तु या दृश्य की पुनर्प्रस्तुति या पहले से बनाई गई कलाकृतियों की नकल तैयार करने का काम, कंप्यूटर रचनाकारों के मुकाबले, कहीं अधिक दक्षता से कर सकता है। ऐसे में पारंपरिक दृश्य कला परिदृश्य, अपनी दक्षता के लिए, पहले की तरह अधिक ग्राह्य नहीं रह जाता। आधुनिक, उत्तराधुनिक और अति यथार्थवादी दृश्य-कला का परिदृश्य, तकनीकी माध्यमों के अधिक विकसित हो जाने के साथ-साथ, यथार्थ के गहन आयाम में अधिक रुचि दिखाने लगता है। इसलिए अब हम डिजिटल दृश्य-कला वाले जिस नए कला-विधान को अपने सामने प्रस्तुत हुआ देख रहे हैं, उसे केवल कंप्यूटर की वजह से उपस्थित हुआ संक्रमण ही नहीं कहा जा सकता। तकनीक या उच्च-तकनीक का इस्तेमाल भी, कला के अंतर्विकास की ज़रूरत के मद्दे-नजर ही अर्थ-पूर्ण हो सकता है। इस नुक्ते-निगाह से देखेंगे, तो कह सकते हैं कि डिजिटल दृश्य-कला अपने पूर्व परिदृश्य का एक आगे का चरण है जो धीरे-धीरे अपने अधिक अर्थ पूर्ण होने के साथ-साथ अपनी विश्वसनीयता के नए आधारों की खोज कर रहा है।

यहां हम इस बात पर गौर कर सकते हैं कि जैसे-जैसे हम युग-समय में आगे की ओर आगे बढ़ते हैं, हम पाते हैं कि कला, वस्तु या दृश्य के सौंदर्य-पक्ष के साथ-साथ, जटिल विचार-पक्ष या अधिक गहन कल्पना की अभिव्यक्ति करने के रास्ते खोजने लग पड़ी हैं। इस स्थिति को हम कला के अंतर्विकास की सूचक मान सकते हैं। गहन विचार और कल्पना के अतिरिक्त भावानुभूति और संवेदना के भी अधिक गहरे स्तर हो सकते हैं, जिन्हें अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए कला अब सामने आकर अपनी कमर बांध सकती है। यानी अब कला, भौतिक वस्तु-जगत को ही नहीं, अभौतिक और अति-भौतिक कोभी, मूर्त्त को ही नहीं, अमूर्त और आध्यात्मिक को भी; दृश्य को ही नहीं, अधि-दृश्य और अदृश्य को भी और ऐंद्रीय ही नहीं, आतींद्रिय और 'दे जा वू' को भी - कलात्मक अभिव्यक्ति के दायरे में ला सकती है।

डिजिटल दृश्य-कला के रूप में कला-परिदृश्य का यह जो अंतर्विकास दिखाई देता है, उसके लिये जो बातें अधिक जिम्मेवार प्रतीत होती है, वे है :

1. आभासी उपकरणों से संभव हो सकने वाली अत्यधिक प्रयोगशीलता
2. संपादन की सुविधा
3. रूप, रंग और संयोजन संबंधी विविधता
4. दृश्य की विविध परतों को एक दूसरे से अलहदा कर सकने की सुविधा
5. पृष्ठभूमि और प्रकाश के प्रतिस्थापन की संभावना
6. ब्रश और टेक्सचर के अधिक विविध माध्यमों का सुलभ होना
7. रंग, शेड और 'सैचुरेशन' जैसी चीजों पर अधिक नियंत्रण
8. गहराई और 'मूड' आदि को जोड़ने की सुविधा

डिजिटल दृश्य-कला अभी बहुत नया क्षेत्र है जिसमें बहुत काम करने की गुंजाइश है। इसलिए इस क्षेत्र में अधिक सक्रिय तथा चर्चित लोगों की सूचियाँ, अलग-अलग मंचों पर, अलग-अलग दिखाई देती हैं। तथापि कुछ नाम जो अधिक ध्यान खींच रहे है, उनकी बाबत यहां थोड़ी चर्चा अवश्य की जा सकती है। भारतीय परिदृश्य की बात करें, तो मुकेश सिंह और अर्चन नायर का जिक्र किया जा सकता है। मुकेश सिंह की डिजिटल कलाकृति 'यूनिवर्सल फॉर्म'तथा अर्चन नायर की कलाकृति 'होम ग्रोन' को काफी लोगों ने सराहा है। वैश्विक परिदृश्य के कुछ अन्य चर्चित नाम है- बीपल (द फर्स्ट 5000 डेज). डेविड हांकने (आईपैड पेंटिंग्स). पाक (द मर्ज), आयरीन बैसाखियों (नो फॉग टुडे)।

संपर्क : ए-563, पालम विहार, गुरुग्राम -122017

समकालीन कला : अभिव्यक्ति, बाजार और एल्गोरिद्मिक युग का द्वंद्व

अवधेश मिश्र

अवधेश मिश्र (डी लिट) देश के प्रख्यात कलाकार, कला दीर्घा, अंतरराष्ट्रीय दृश्यकला पत्रिका के संपादक और डॉ शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ के कलाचार्य हैं। देश एवं विदेश में डॉ. मिश्र के चित्रों के प्रदर्शन, अनेक पुस्तकों –'संवेदना और कला', 'कला विमर्श' एवं 'पहला दस्तावेज़' के लेखन / संपादन, कला जगत के मौखिक इतिहास की वीडियो श्रृंखला एवं कला की विविध गतिविधियों में सतत सक्रिय भागीदारी ने भारतीय कला जगत को समृद्ध किया है।

समकालीन कला केवल 'स्व' और 'सौंदर्य' की खोज नहीं है; वह अपने समय की बेचैनी, प्रश्नाकुलता और अंतर्विरोधों का सृजनात्मक दस्तावेज भी है। आज का कलाकार उस युग में सृजन कर रहा है जहाँ तकनीक अपने उफान पर है, बाज़ार प्रभावी भूमिका में है, राजनीति संक्रमण काल में है और पहचान के प्रश्न तीखे हो उठे हैं। ऐसे में समकालीन कला के सामने अनेक ज्वलंत मुद्दे उपस्थित हैं, जो उसके स्वर, स्वरूप और सरोकारों को निरंतर प्रभावित कर रहे हैं।

सबसे प्रमुख प्रश्न अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का है। कला का स्वभाव ही प्रश्न करना और असहमति को रूप देना है, किंतु जब सामाजिक या राजनीतिक संवेदनाएँ तीव्र हो जाती हैं, तब कलाकार की स्वतंत्रता विवादों के घेरे में आ जाती है। अनेक देशों में कला-प्रदर्शनियों, फिल्मों या प्रदर्शन-कला को लेकर प्रतिबंध और विरोध की घटनाएँ यह संकेत करती हैं कि रचनात्मक स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच संतुलन साधना आज एक बड़ी चुनौती है। कलाकार के लिए यह प्रश्न अत्यंत जटिल है कि वह सत्य के प्रति ईमानदार भी रहे और समाज के विविध समूहों के प्रति संवेदनशील भी।

दूसरा बड़ा मुद्दा बाज़ारीकरण का है। वैश्विक कला-बाज़ार, नीलामी-गृहों और गैलरी-प्रणालियों ने कला को निवेश और प्रतिष्ठा के साधन के रूप में स्थापित कर दिया है। परिणामस्वरूप कला का मूल्यांकन कई बार उसके वैचारिक या सौंदर्यात्मक महत्व के स्थान पर उसकी बिक्री-योग्यता से होने लगता है। डिजिटल युग में एनएफटी और आर्ट-फेयर की संस्कृति ने कलाकार को वैश्विक मंच दिया है, किंतु साथ ही कला को उपभोग की वस्तु में बदलने का जोखिम भी बढ़ाया है। यह द्वंद्व कि कला आत्माभिव्यक्ति है या पूंजी का उत्पाद - समकालीन विमर्श का केंद्रीय प्रश्न बन गया है।

तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव भी एक ज्वलंत विषय है। डिजिटल माध्यमों ने सृजन की सीमाएँ विस्तृत कर दी हैं; वर्चुअल रियलिटी, ऑगमेंटेड रियलिटी और एआई-आधारित कला नई संभावनाएँ खोल रही हैं। किंतु साथ ही यह चिंता भी उभर रही है कि क्या मशीन-निर्मित छवियाँ मानवीय संवेदना का स्थान ले लेंगी? कलाकार की मौलिकता और सृजनाधिकार का प्रश्न भी यहाँ प्रासंगिक हो उठता है। तकनीक सुविधा है या चुनौती - इस पर गहन बहस जारी है।

तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव आज समकालीन कला-जगत का सबसे अधिक बहसयोग्य और ज्वलंत विषय बन चुका है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब वीडियो-आर्ट, डिजिटल प्रिंट और मल्टीमीडिया इंस्टॉलेशन ने कला की पारंपरिक सीमाओं को तोड़ना प्रारंभ किया, तब ही यह स्पष्ट हो गया था कि तकनीक केवल उपकरण नहीं बल्कि अभिव्यक्ति की नई भाषा बनने जा रही है। इक्कीसवीं सदी में इंटरनेट, एल्गोरिद्म और कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने इस परिवर्तन को और तीव्र कर दिया है।

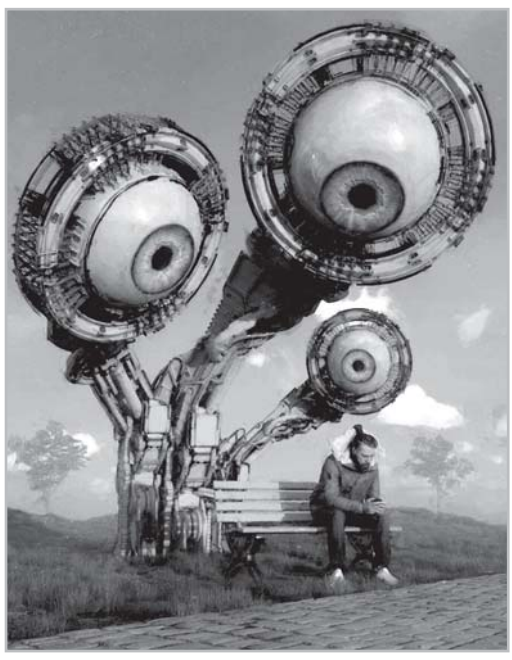

डिजिटल माध्यमों ने सृजन की परिधि को अभूतपूर्व विस्तार दिया है। वर्चुअल रियलिटी और ऑगमेंटेड रियलिटी के माध्यम से दर्शक अब कला को केवल देखता नहीं बल्कि उसमें प्रवेश करता है। उदाहरणार्थ, जापान का सामूहिक कला-समूह टीमलैब अपनी इमर्सिव डिजिटल इंस्टॉलेशनों के लिए विश्वभर में चर्चित है, जहाँ प्रकाश, ध्वनि और इंटरएक्टिव तकनीक के माध्यम से दर्शक स्वयं कला-परिदृश्य का हिस्सा बन जाता है। इसी प्रकार अमेरिकी कलाकार रेफिक एनादोल डेटा और मशीन लर्निंग के माध्यम से ऐसी दृश्य-रचनाएँ निर्मित करते हैं जो स्मृति, वास्तुकला और कृत्रिम चेतना के प्रश्नों को कलात्मक रूप देती हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता-आधारित कला ने 2018 में वैश्विक स्तर पर तब सनसनी उत्पन्न की, जब पेरिस-स्थित कला-संगठन ओब्वियस द्वारा निर्मित एआई-जनित चित्र एडमंड डी बेलामी की नीलामी न्यूयॉर्क के प्रतिष्ठित नीलामी-गृह क्रिस्टीज़ में लगभग 4,32,500 अमेरिकी डॉलर में हुई। इस घटना को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। इसने सिद्ध किया कि एल्गोरिद्म-निर्मित छवियाँ भी कला-बाज़ार में स्वीकृति प्राप्त कर सकती हैं। इसके बाद एनएफटी की अवधारणा ने डिजिटल कला को स्वामित्व और संग्रहणीयता का नया आयाम दिया। 2021 में डिजिटल कलाकार बीपल की कृति एवरीडेज़: द फर्स्ट 5000 डेज़ लगभग 69 मिलियन डॉलर में बिकी, जिसने डिजिटल कला की आर्थिक संभावनाओं को अभूतपूर्व ऊँचाई प्रदान की। इन घटनाओं ने कला-जगत को यह सोचने पर विवश कर दिया कि सृजन का अर्थ क्या है। यदि कोई एल्गोरिद्म लाखों चित्रों के डेटा-सेट पर प्रशिक्षित होकर नई छवि निर्मित करता है, तो उसकी मौलिकता किसकी मानी जाएगी - प्रोग्रामर की, डेटा-निर्माताओं की या मशीन की? कलाकार की भूमिका क्या केवल निर्देश देने तक सीमित हो जाएगी? सृजनाधिकार और कॉपीराइट के प्रश्न यहाँ अत्यंत जटिल हो उठते हैं। कई देशों में यह कानूनी बहस जारी है कि एआई निर्मित कला पर स्वामित्व किसका होगा और क्या मशीन को 'रचनाकार' का दर्जा दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण चिंता मानवीय संवेदना के स्थानापन्न होने की है। कला का मूल आधार अनुभव, पीड़ा, स्मृति और अंतःप्रेरणा रहा है। मशीनें पैटर्न और डेटा के आधार पर रचना कर सकती हैं, किंतु क्या वे जीवनानुभव की उस गहराई को व्यक्त कर सकती हैं, जो मनुष्य की चेतना से उपजती है? आलोचकों का मत है कि एआई कला तकनीकी रूप से चमत्कृत कर सकती है पर उसमें अस्तित्वगत व्याकुलता या नैतिक दुविधा का वह ताप नहीं होता जो मानवीय सृजन में दिखाई देता है। वहीं समर्थकों का तर्क है कि एआई एक उपकरण है - जैसे कभी कैमरा या कंप्यूटर था और अंततः उसकी दिशा और आशय मानव ही निर्धारित करता है।

तकनीक ने कला को लोकतांत्रिक भी बनाया है। सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से कलाकार बिना गैलरी या संस्थागत समर्थन के भी वैश्विक दर्शक-वर्ग तक पहुँच सकता है। यह अवसर विशेषतः उन कलाकारों के लिए महत्वपूर्ण है जो मुख्यधारा से बाहर रहे हैं। किंतु इसी के साथ 'डिजिटल ओवरलोड' और त्वरित उपभोग की प्रवृत्ति ने कला को क्षणभंगुर भी बना दिया है। दर्शक की एकाग्रता घट रही है और गहराई के स्थान पर तात्कालिक प्रभाव को प्राथमिकता मिल रही है। इस प्रकार तकनीक सुविधा भी है और चुनौती भी। वह सृजन के नए द्वार खोलती है पर साथ ही नैतिक, कानूनी और दार्शनिक प्रश्न भी खड़े करती है। समकालीन कला का दायित्व है कि वह तकनीक को न तो अंधस्वीकार करे और न ही अकारण अस्वीकार। आवश्यकता इस संतुलन की है कि तकनीकी नवाचार मानवीय संवेदना और वैचारिक गहराई के साथ संवाद करे क्योंकि कला का भविष्य इस पर निर्भर करेगा कि मनुष्य तकनीक को अपना सहायक बनाए, स्वामी नहीं। यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानवीय कल्पना का विस्तार बने तो वह सृजन की संभावनाओं को अनंत कर सकती है; पर यदि वह मानवीय चेतना का विकल्प बनने लगे तो कला का आत्मिक स्वर संकट में पड़ सकता है। यही द्वंद्व आज के कला-विमर्श का केंद्रीय बिंदु है जहाँ एल्गोरिद्म और अंतःकरण आमने-सामने खड़े हैं और समकालीन कलाकार उस संवाद का मध्यस्थ है। तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव आज समकालीन कला-जगत का केंद्रीय विमर्श बन चुका है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब वीडियो-आर्ट और डिजिटल इंस्टॉलेशन ने पारंपरिक कैनवास की सीमाएँ तोड़ीं तभी यह स्पष्ट हो गया था कि कला का भविष्य बहु-माध्यमीय और तकनीक-संवर्धित होगा।

इक्कीसवीं सदी में इंटरनेट, डेटा-संस्कृति और मशीन लर्निंग के विकास ने इस परिवर्तन को और अधिक गहरा कर दिया। आज वर्चुअल रियलिटी, ऑगमेंटेड रियलिटी और एआई आधारित सृजन कला को केवल दृश्य अनुभव नहीं रहने देते बल्कि उसे इमर्सिव और सहभागितापूर्ण बना देते हैं।

भारतीय संदर्भ में इस प्रवृत्ति को समझने के लिए 'इंडिया आर्ट समिट' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उसके रूपांतरण को देखना आवश्यक है। 2008 में प्रारंभ हुआ यह आयोजन बाद में इंडिया आर्ट फेयर के रूप में विकसित हुआ और दक्षिण एशिया के सबसे बड़े समकालीन कला मंचों में गिना जाने लगा। बीते वर्षों के संस्करणों में डिजिटल कला, वीडियो-इंस्टॉलेशन और न्यू-मीडिया को जो प्रमुखता मिली है, वह यह संकेत करती है कि भारतीय कला-जगत भी वैश्विक तकनीकी प्रवृत्तियों से अलग नहीं है।

हाल के संस्करणों में आभासी अनुभवों, प्रोजेक्शन-मैपिंग और इंटरएक्टिव स्क्रीन-आधारित कृतियों ने दर्शकों को आकर्षित किया। कई युवा भारतीय कलाकारों ने एल्गोरिद्मिक पैटर्न, डेटा-आधारित दृश्य-रचनाओं और सामाजिक मीडिया-प्रभावों को विषय बनाया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि नई पीढ़ी तकनीक को केवल प्रदर्शन के साधन के रूप में नहीं बल्कि विचार की संरचना के रूप में देख रही है। फिर भी 'इंडिया आर्ट समिट/फेयर' ने जहाँ भारतीय कला को वैश्विक पहचान और बाज़ार प्रदान किया, वहीं उस पर यह आरोप भी लगे कि वह कला को अत्यधिक बाज़ारोन्मुख बनाता है। महँगे स्टॉल, अंतरराष्ट्रीय गैलरियों की उपस्थिति और संग्रहकर्ताओं की सक्रियता ने कला को निवेश के रूप में स्थापित किया। डिजिटल और एआई कला की उपस्थिति ने इस बाज़ारवादी प्रवृत्ति को और तीव्र किया क्योंकि तकनीक-आधारित कृतियाँ प्रायः आकर्षक, तात्कालिक और सोशल-मीडिया अनुकूल होती हैं।

दिल्ली में फरवरी 2026 में आयोजित इंडिया आर्ट फेयर ने एक बार फिर यह सिद्ध किया कि दक्षिण एशिया का कला परिदृश्य वैश्विक समकालीन विमर्श का सक्रिय और प्रभावशाली हिस्सा बन चुका है। आर्ट फेयर के इस संस्करण में पारंपरिक माध्यमों के साथ डिजिटल, न्यू-मीडिया और एआई-आधारित कृतियों की उल्लेखनीय उपस्थिति रही, जिसने तकनीक और सृजनात्मकता के संबंध पर गहन संवाद को जन्म दिया। भारतीय और अंतरराष्ट्रीय गैलरियों की भागीदारी, उभरते कलाकारों के प्रयोगधर्मी कार्य तथा संस्थागत प्रदर्शनों ने इस मंच को केवल बाज़ार-केंद्रित आयोजन न रहकर विचार-विमर्श के जीवंत स्थल में रूपांतरित किया। विशेष रूप से युवा कलाकारों की उपस्थिति और पहचान, पर्यावरण तथा सामाजिक न्याय जैसे विषयों पर केंद्रित कृतियों ने यह संकेत दिया कि भारतीय समकालीन कला केवल सौंदर्य-चिंतन तक सीमित नहीं, बल्कि अपने समय की जटिलताओं से सक्रिय मुठभेड़ कर रही है। हालांकि कला-बाज़ार की सक्रियता और संग्रहकर्ताओं की बढ़ती भूमिका ने व्यावसायिक आयाम को भी रेखांकित किया, फिर भी समग्र रूप में यह संस्करण नवाचार, संवाद और सांस्कृतिक बहुलता का संतुलित उत्सव प्रतीत हुआ।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या तकनीकी चमत्कार कला के गहरे वैचारिक विमर्श को आच्छादित कर देते हैं? कुछ समीक्षकों का मत है कि इमर्सिव इंस्टॉलेशन दर्शक को चकित तो करते हैं, परंतु कभी-कभी वे विचार की स्थिरता और आलोचनात्मकता को कम कर देते हैं। दूसरी ओर समर्थकों का तर्क है कि यदि कला को व्यापक समाज तक पहुँचना है तो उसे समकालीन तकनीकी भाषा में संवाद करना ही होगा। सृजनाधिकार का प्रश्न भी भारतीय संदर्भ में प्रासंगिक है। एआई-आधारित कृतियों के संदर्भ में यह स्पष्ट नहीं है कि कॉपीराइट किसके पास होगा - कलाकार, सॉफ्टवेयर-निर्माता या डेटा-स्रोत? भारत में कॉपीराइट कानून अभी भी 'मानवीय रचनाकार' की अवधारणा पर आधारित है, जिससे एआई-निर्मित कला की कानूनी स्थिति जटिल हो जाती है। इस प्रकार तकनीक भारतीय समकालीन कला के लिए अवसर भी है और चुनौती भी। 'इंडिया आर्ट समिट/फेयर' जैसे मंचों ने यह दिखाया है कि भारत वैश्विक कला-विमर्श में सक्रिय भागीदार है। परंतु यह भी आवश्यक है कि तकनीकी आकर्षण के बीच कला की सामाजिक संवेदना, वैचारिक गहराई और सांस्कृतिक जड़ों का संतुलन बना रहे।

पहचान और प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी समकालीन कला के केंद्र में है। स्त्रीवाद, दलित-विमर्श, आदिवासी चेतना, लैंगिक विविधता और हाशिए के समुदायों की अभिव्यक्ति ने कला के दायरे को व्यापक बनाया है। कला अब केवल अभिजात वर्ग की भाषा नहीं रही; वह विविध सामाजिक अनुभवों का मंच बन रही है। यह परिवर्तन सकारात्मक है पर इसके साथ

प्रतिनिधित्व की प्रामाणिकता और सांस्कृतिक उपनिवेशवाद जैसे मुद्दे भी उठ खड़े हुए हैं। कौन किसकी कथा कह रहा है और किस अधिकार से - यह प्रश्न गंभीरता से विचारणीय है। पर्यावरणीय संकट भी समकालीन कला का प्रमुख सरोकार बन चुका है। जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता का ह्रास और प्रदूषण जैसे विषयों पर अनेक कलाकार अपने कार्यों के माध्यम से चेतना जगाने का प्रयास कर रहे हैं। इंस्टॉलेशन, लैंड-आर्ट, सैंड-आर्ट और परफॉर्मेंस आर्ट के माध्यम से प्रकृति के साथ मानव के संबंध को पुनः परिभाषित किया जा रहा है। कला यहाँ केवल सौंदर्य का माध्यम नहीं बल्कि सामाजिक जागरण का उपकरण बन जाती है। सार्वजनिक कला/जन कला और शहरी हस्तक्षेप भी चर्चा के केंद्र में हैं। स्ट्रीट-आर्ट और ग्रैफिटी ने कला को दीर्घाओं से बाहर निकालकर सड़कों पर ला खड़ा किया है। इससे कला अधिक लोकतांत्रिक हुई है, पर साथ ही वैधता, स्वामित्व और संरक्षण के प्रश्न भी उठे हैं। शहरों के सौंदर्यीकरण और जन-संवाद के बीच कला की भूमिका को लेकर निरंतर बहस चल रही है।

समकालीन कला के ये ज्वलंत मुद्दे यह स्पष्ट करते हैं कि कला स्थिर नहीं बल्कि जीवंत और गतिशील प्रक्रिया है। वह समय की धड़कनों को सुनती है और उन्हें रूप देती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि कलाकार, दर्शक और संस्थाएँ - तीनों मिलकर ऐसे संवाद की रचना करें, जिसमें स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व, परंपरा और नवाचार, बाज़ार और मूल्य, इन सभी के बीच संतुलन स्थापित हो सके क्योंकि समकालीन कला का उद्देश्य केवल दृश्य आनंद नहीं बल्कि विचार की उर्वरता और संवेदना का विस्तार है। यदि वह अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों से मुँह मोड़ ले तो वह इतिहास में निष्प्राण हो जाएगी; और यदि वह साहसपूर्वक संवाद करे तो वह समाज के आत्मबोध का दर्पण बन सकती है।

संपर्क: सी-361, राजाजीपुरम लखनऊ, -226017
ब्लॉग : vizooka.blogspot.com
मोबाइल नंबर : 9415022724

■

द्वैमासिक पत्रिका 'कला समय' के संबंध में स्वामित्व तथा अन्य विवरण विषयक

घोषणा-पत्र

फार्म- 4 (नियम 8 देखिये)

1. प्रकाशन का स्थान	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
2. प्रकाशन की अवधि	–	द्वैमासिक
3. मुद्रक का नाम	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
4. प्रकाशक का नाम	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
5. संपादक का नाम	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	–	भँवरलाल श्रीवास
राष्ट्रीयता	–	भारतीय।
पता	–	जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016

मैं भँवरलाल श्रीवास घोषणा करता हूँ कि ऊपर दी गई विशिष्टयाँ मेरे सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के साथ सही हैं।

तारीख: 1 मार्च 2026

भँवरलाल श्रीवास
प्रकाशक के हस्ताक्षर

कला में सुंदरता असुंदरता के प्रश्न

अरविंद औझा

अरविंद औझा एक बहुआयामी रचनाकार और संस्कृति-कर्मी हैं, जो पिछले दो दशकों से भी अधिक समय से कला, साहित्य, डिज़ाइन, सिनेमा और शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय और "निफ्ट" दिल्ली जैसी संस्थाओं से अपनी औपचारिक पढ़ाई पूरी करने के साथ आपने प्राचीन लिपियों का भी अध्ययन किया है। एक स्व-प्रशिक्षित चित्रकार के रूप में आपकी कृत्तियाँ भारतीय दर्शन और नव-तंत्र की दृष्टियों से गहराई से जुड़ी हुई हैं। आपके द्वारा निर्देशित व लिखित लघु फ़िल्मों का भी अनेक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मंचों पर प्रदर्शन हो चुका हैं। बतौर डिज़ाइनर आपने कई प्रतिष्ठित कॉर्पोरेट कंपनियों और सरकारी संस्थाओं के लिए महत्वपूर्ण परियोजनाओं का नेतृत्व किया है। देश के अनेक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों, सरकारी और गैर सरकारी सांस्कृतिक मंचों पर भी आपकी रचनात्मक उपस्थिति लगातार बनी हुई है।

बहुत पहले मैंने कहीं पढ़ा था। क्या असुंदरता से भी कला का सृजन संभव है? यह प्रश्न तब पहली बार मुझे जिज्ञासा के उस तल पर ले गया था जहां से कला के केन्द्रीय विचार को सौंदर्य के एक पक्षीय विस्तार में समझना मुश्किल था। बाद में इस विषय पर और ज्यादा विचार करते हुए मुझे यह बात स्पष्ट हुआ कि कला संरचना दरअसल सौंदर्य और असौंदर्य दोनों ही पक्षों की एक समन्वित दृष्टि है जिसे कला प्रक्रिया में एक सही अर्थ और सही संदर्भ में समझना बेहद जरूरी है। वर्तमान कला संदर्भ में ज्यादा अनुभव-विरोधी वाक्य शायद यह माना जा सकता है कि - "यह सुंदर है" और सबसे अधिक अन्वेषी वाक्य यह कि - "मैं इसे सुंदर मानता हूँ।"

दृष्टि के ठीक इस बिंदु से चित्रकला, उसकी आलोचना और उसके मूल्यांकन का पूरा प्रश्न जन्म लेता है। पहला वाक्य सौंदर्य को एक वस्तुगत सत्य की तरह स्थापित करता हुआ जान पड़ता है जबकि दूसरा उसे एक दृष्टि के रूप में स्वीकार करता हुआ सा। यहाँ समस्या सुंदर या असुंदर होने की नहीं है, समस्या उस निश्चयात्मक दृष्टि की है जिसके साथ हम अपने स्वाद, संस्कार और सहज बोध को एक सार्वभौमिक सत्य की तरह उद्घोषित करते हैं। भारतीय कला-चिंतन और आधुनिक कला-विमर्श दोनों इसी एक बिंदु पर आकर आमने-सामने खड़े होते हैं। एक ओर 'सत्यम-शिवम्-सुंदरम्' का महासूत्र है तो दूसरी ओर असुंदरता, विकृति और विखंडन को कला की भाषा बनाने वाली एक आधुनिक चेतना। प्रश्न यह नहीं कि इनमें कौन सही है या कौन गलत, प्रश्न यह है कि आज के समय में हम चित्रकला की सौंदर्य-दृष्टि का निर्णय आखिर कैसे करें?

भारतीय चिंतन में सुंदरता कभी भी महज़ एक दृश्य अनुभव, ऐंद्रिय सुख या रूपात्मक संतुलन का नाम नहीं रही है। यदि हम अपनी दर्शन-परंपरा की बात करें और खासकर सांख्य दर्शन की, जिसे परंपरागत रूप से कपिल मुनि से जोड़कर देखा जाता है, तो वह दर्शन यह स्पष्ट करता है कि पूरी सृष्टि प्रकृति के तीन गुणों की साम्यावस्था है - सत्त्व, रजस् और तमस् - जिनकी निरंतर गतिशीलता का स्वाभाविक परिणाम ही यह संपूर्ण दृश्य-जगत है। तीनों गुणों का संतुलन प्रकृति कहलाती है और इनका असंतुलन विकृति। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि संतुलन और असंतुलन दोनों ही प्रकृति के ही अंतर्निहित सत्य हैं। इसलिए विकृति यहाँ अपवाद नहीं बल्कि प्रकृति की ही एक विशिष्ट अवस्था है। दृष्टि की यह व्यापकता भारतीय कला को एक उदात्त चरित्र देती है। यहाँ सुंदर और असुंदर का द्वैत कोई अंतिम विचार के रूप में स्थापित नहीं है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि जिन रसों की स्थापना करते हैं उनमें करुण, भयानक और बीभत्स भी उतने ही वैध हैं जितने श्रृंगार या हास्य। आगे चलकर आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त जैसे सौंदर्य-शास्त्री यह स्पष्ट करते हैं कि कला का उद्देश्य भावों को रस में रूपांतरित करना और व्यक्तिगत अनुभूति को एक सार्वभौमिक अनुभव में बदल देना है। यहाँ आनंद का अर्थ सुख नहीं बल्कि चेतना का ही विस्तार है। इसलिए असुंदर विषय भी कला में सहज प्रवेश पाकर अंततः सौंदर्य में रूपांतरित हो जाते हैं।

कालिदास और भवभूति को यदि हम साथ रखकर देखें तो भारतीय सौंदर्यबोध की यह व्यापकता और ज्यादा स्पष्ट होती जान पड़ती है। महाकवि कालिदास कुमारसम्भव में कहते हैं -

फ्रांसिस न्यूटन सूजा की कलाकृति

"यदुच्यते पार्वति पापश्यते, न रूपमित्यव्यभिचारि तदध्य।"

अर्थात हे पार्वती, सच बात तो यह है कि रूप-सौंदर्य पाप-वृत्ति को बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि पापों के कल्मष को धोकर मन को रसपूर्ण, सूक्ष्म, चैतन्यपूर्ण और आनंदमय बनाने के लिए होता है। भवभूति सौंदर्य की अपनी मूल अवधारणा में कहते है कि सौंदर्य भावनात्मक गहनता से उत्पन्न होता है, न कि केवल दृश्य या अलंकारिक आकर्षण से - **एको रसः करुण एव नाट्ये प्रतीयते बुधैः।** जहाँ कालिदास की कला-दृष्टि में प्रकृति का माधुर्य, संतुलन और लय है वहीं भवभूति के पास विरह, तपन और नैतिक द्वंद्व से जन्मी एक गंभीरता है। दोनों ही सुंदर हैं पर अलग-अलग विशिष्ट अर्थों में। लेकिन भारतीय तांत्रिक परंपरा इस विमर्श को कहीं और आगे ले जाती है जहाँ काली, भैरव, श्मशान और संभावित विकरालता के समस्त रूप उस सौंदर्यबोध को तोड़ते हुए दिख पड़ते हैं जो केवल कोमलता को ही सुंदर मानता रहा है। यहाँ विकृति भी एक ऊर्जा है और असुंदरता भी मुक्ति का द्वार।

मार्शल द्युशां की कृति (द फाउंटेन)

पिकासो की कृति (द वीपिंग वुमन)

पाश्चात्य चिंतन परंपरा में प्लेटो सौंदर्य को सृष्टि का मूल तत्त्व मानते हुए उसे सत्य के निकट रखते है और सौंदर्य अनुभूति के लिए एक आदर्श लोक की कल्पना करते है। उनके लिए असौंदर्य कोई कुरुपता नहीं बल्कि सत्य से दूरी और आदर्श से विचलन है जो महज़ भावनाओं को भड़काती है लेकिन विवेक को नहीं। प्रख्यात सौंदर्य शास्त्री एमैन्युल कांट अपने सौंदर्य संबधी विचारों को रखते हुए सौंदर्य को जीवन के निष्काम आनंद और मनुष्य के निर्णय क्षमता से जोड़ते हैं। वे कहते है कि जो रूपहीन, असीम या भयावह है वह सुंदर नहीं पर उदात्त (सब्लाइम) हो सकता है। यहाँ वे असौंदर्य को एक सहज सीमा-स्थिति में ढ़ालते है जहाँ कल्पना विफल होती है और बुद्धि सक्रिय।

वैसे तो आधुनिक कला-दृष्टि ने किसी महासूत्र को कभी स्वीकार नहीं किया क्योंकि आधुनिकता स्वयं ही सूत्र-विरोधी है, लेकिन फिर भी एक केंद्रीय विचार यह उभरता है कि कला का कार्य सिर्फ सांत्वना देना नहीं बल्कि सत्य को उद्घाटित करना भी है। पश्चिमी कला-जगत में 'मार्शल द्युशां' की चर्चित कलाकृति फाउंटेन (यूरिन पॉट) इसी उद्घाटन का एक ऐतिहासिक उदाहरण मानी जा सकती है। यह कृति इस आधार पर असुंदर इसलिए नहीं कही जा सकती कि यह गंदगी दिखाती हुई भी कोई संदर्भ रचती है, बल्कि इसलिए महत्वपूर्ण मानी जा सकती है कि यह अपनी संपूर्ण उपस्थिति और अर्थवत्ता में बहुत दृढ़ता से प्रश्न उठाती है कि कला का निर्णय कौन करता है? सौंदर्य का अधिकार किसके पास है? द्युशां ने यह स्पष्ट किया कि कला का असली सौंदर्य वस्तु में नहीं बल्कि कलाकार के चयन में निहित होता है। अतियथार्थवादी चित्रकार 'सल्वोडर डाली' ने अपने कलाकर्म में गुप्तांग के बाल (प्यूबिक हेयर), मनुष्य के अवचेतन मन की विकृत छवियाँ और वर्जित प्रतीकों का प्रयोग कर यह दिखाया कि जिसे समाज असुंदर और निषिद्ध कहता है, दरअसल वे भी मन के गहरे सत्य साबित हो सकते हैं। निश्चित तौर पर यहाँ असुंदरता एक मनोवैज्ञानिक ईमानदारी के रूप में हमारे सामने आती है। 'पाब्लो पिकासो' की टूटी हुई आकृतियाँ, 'फ्रांसिस बेकन' की चीखती मानवीय देह और 'जोसेफ वेउस' की घाव जैसी इंस्टॉलेशन - ये सब इस बात के प्रमाण हैं कि आधुनिक कला में असुंदरता कोई मानसिक विकृति नहीं बल्कि सत्य के प्रति एक अटूट निष्ठा है।

यदि परंपरागत भारतीय दृष्टि कला को सत्य, शिव और सुंदर कहती है तो आधुनिक कला-दृष्टि यह उद्घोषणा करती है कि सत्य वह है जो सुंदर न होते हुए भी हमारे अनुभव-संसार से कभी हटाया नहीं जा सकता। तो फिर निर्णय कैसे हो? यहीं से कला और सौंदर्य-बोध का सबसे कठिन प्रश्न हमारे सामने आता है। यदि सुंदरता अंतिम मानदंड नहीं है तो अच्छी और बुरी चित्रकृति का निर्णय कैसे किया जाए? क्या सब कुछ सापेक्ष है? क्या "सब कुछ कला है" यह कह देना ही पर्याप्त है?

उत्तर स्पष्ट है - नहीं!

चित्रकला में निर्णय कठिन है पर असंभव नहीं। फर्क बस इतना है कि यह निर्णय गणितीय नहीं बल्कि एक नैतिक और वैचारिक प्रक्रिया की तरह है। सबसे पहला प्रश्न 'आंतरिक अनिवार्यता' से जुड़ा है। यूरोप के महान अमूर्तवादी चित्रकार 'वेसिली कैंडिंस्की' ने कला को एक 'आत्मिक अनिवार्यता' कहा। क्या कोई कलाकृति कलाकार के भीतर किसी वास्तविक अनुभव, द्वंद्व या दबाव से उपजी है? या वह केवल शैली, बाज़ार और तात्कालिक प्रभाव की प्रतिक्रिया मात्र है? बिना आंतरिक अनिवार्यता के बनी कृति तकनीकी रूप से सक्षम हो सकती है, पर आंतरिक रूप से सदैव कमजोर ही बनी रहती है।

दूसरा प्रश्न दृश्य-भाषा की संगति का है। हर कलाकार अपनी एक भाषा रचता है - रेखा, रंग, आकृति और रिक्ति के माध्यम। मुद्दा यह नहीं कि भाषा यथार्थवादी है या अमूर्त, बल्कि यह है कि क्या कृति अपनी चुनी हुई भाषा में ईमानदार और सुसंगत है। अभिव्यक्ति-तल पर कला में एक सांयोगिक अराजकता और अर्थपूर्ण विखंडन में यही भेद होता है।

तीसरा बिंदु है अनुभूति की तीव्रता। एक अच्छी कृति दर्शक को रोकती है। वह स्मृति में टिकती है, प्रश्न बनती है और कभी-कभी बेचैन भी करती है। एक कमजोर कृति देखने के तुरंत बाद विस्मृत हो जाती है। इसी तथ्य

के साथ जुड़ा है कलाकार के भीतर जोखिम लेने का साहस। सच्ची कला हमेशा कुछ खोने का जोखिम उठाती है - जैसे स्वीकृति, लोकप्रियता और सहज समझ लिए जाने का आग्रह। जो कृति सबको खुश करने की कोशिश करती है, वह अक्सर किसी को भी गहराई से नहीं छू पाती।

इन सबके बीच ईमानदारी और चतुराई का फर्क निर्णायक हो जाता है। तकनीकी दक्षता और चकाचौंध ईमानदारी का भ्रम तो पैदा कर सकती है, पर समय अपनी यात्रा में अंततः उसी कृति को स्वीकार करता है जिसमें अनुभव का सत्य अपने उच्चतर मूल्य सौंदर्य में अंतर्निहित होता है।

संगीत और साहित्य में अच्छे और बुरे का निर्णय अपेक्षाकृत इस अर्थ में आसान होता है कि वहाँ समय अपने संपूर्ण प्रभाव में उपस्थित रहता है। यहाँ रचनाएँ अपने कलात्मक विस्तार में सीधे समय में खुलती हैं और गुणवत्ता के आधार पर या तो ये रचनाएँ काल-प्रवाह में टिकती हैं या गुणवत्ता की अनुपस्थिति में ये रचनाएँ अपने ही भार से टूट जाती हैं। लेकिन चित्रकला में समय सदैव स्थिर होता है क्योंकि चित्रकला एक स्थानपरक कला-माध्यम है। यहाँ समय गौण होता है और स्थान प्राणवान। दर्शक एक क्षण में पूरी छवि देख लेता है और साथ ही इस भ्रम का सहज शिकार भी हो जाता है कि उसकी कला-अनुभव की समझ पूरी हो गई।

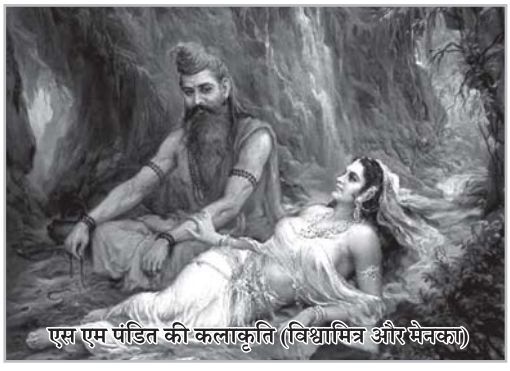

एस एम पंडित की कलाकृति (विश्वामित्र और मेनका)

फ्रांसिस बेकन की कृति (मैन एंड बीस्ट)

इसीलिए चित्रकला में आलोचना की दृष्टि कहीं अधिक सूक्ष्मता, धैर्य, प्रशिक्षण और संवेदनशीलता की माँग करती है। और यहीं से आलोचक की भूमिका भी सामने आती है। चित्रकला की आलोचना केवल पसंद और नापसंद का एक सपाट बयान नहीं है बल्कि वह रचनात्मक दृष्टि को परिष्कृत करने और उसे अनवरत गढ़ते रहने की एक चेष्टा है। आलोचक का दायित्व यह नहीं होता कि वह फैसला सुनाए, बल्कि यह होता है कि वह हमें बताए कि यह कृति किस संदर्भ में, किस भाषा में और किस जोखिम के साथ खड़ी है।

आज, जब "सब कुछ कला है" कहना आसान हो गया है, आलोचक का साहस और दायित्व और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। उसे यह कह पाने का नैतिक बल चाहिए कि कोई कृति सतही है, भले ही वह लोकप्रिय क्यों न हो, और यह भी कि कोई कृति महत्वपूर्ण है, भले ही वह असहज या असुंदर क्यों न लगे।

इस संदर्भ में यह बात भी महत्वपूर्ण है कि वरिष्ठ कलाकारों के पास अपना शिल्प, अनुभव और स्मृति की गहराई होती है, पर खतरा यह है कि उनका अनुभव एक आदत न बन जाए। वहीं युवा कलाकारों के पास अदम्य ऊर्जा और विद्रोह की छटपटाहट होती है, पर यहाँ जोखिम यह है कि इनकी असहजता केवल शोर न बन जाए। इसलिए मूल्यांकन उम्र से नहीं, अनुभव की सच्चाई से होना चाहिए। एक युवा कलाकार की किंचित कच्ची लेकिन सच्ची कृति, एक वरिष्ठ कलाकार की चमकदार लेकिन थकी हुई कृति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो सकती है।

समकालीन समय में, कृत्रिम सुंदरता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जब अत्यंत सुंदर, संतुलित और आकर्षक छवियाँ बनाने में सक्षम है, तब यह प्रश्न और भी तीखा हो उठता है। यदि सुंदरता ही अंतिम मानदंड होती, तो मशीन कला-अभिव्यक्ति में मनुष्य से आगे निकल चुकी होती। पर कला केवल पैटर्न मात्र नहीं है, यह एक जीवंत अनुभव है जो मनुष्य की स्मृति, पीड़ा, जोखिम और नैतिक साहस से उपजता है।

अंततः चित्रकला में अच्छी और बुरी कृति का फर्क इस प्रश्न पर आकर टिक जाता है कि क्या यह कृति आवश्यक है? क्या यह किसी वास्तविक अनुभव, संघर्ष या प्रश्न की अभिव्यक्ति है? क्या यह हमें और अधिक संवेदनशील, अधिक सहृदय और अधिक जागरूक बनाने में सहायक है? यदि हाँ - तो यह कृति सुंदर है या असुंदर, लेकिन महत्वपूर्ण अवश्य है। यदि नहीं - तो यह चाहे जितनी भी आकर्षक क्यों न हो, महज़ एक दृश्य-भ्रम से अधिक कुछ और नहीं।

इसी बिंदु पर भारतीय रस-दृष्टि और आधुनिक कला का विखंडन एक-दूसरे से मिलते हुए जान पड़ते हैं। दोनों हमें यह सिखाते हैं कि कला का उद्देश्य सजावट नहीं बल्कि एक सतत जागरण है। सुंदरता किसी भी रचनात्मक अभिव्यक्ति का परिणाम हो सकती है, लेकिन अंतिम मानदंड नहीं। और इसी बिंदु पर लौटकर वह शुरुआती वाक्य फिर से अपने पूरे अर्थ के साथ हमारे सामने उपस्थित होता है कि सुंदर क्या है, यह तथ्य उतना महत्वपूर्ण नहीं। हम किसे सुंदर कहते हैं - यही एकमात्र दृष्टि ही हमारी अभिव्यक्ति-क्षमता में चित्रकला, बोध, अनुभव, अर्थ, आलोचना और हमारे समय का असली प्रश्न है।

संपर्क: प्रीत विहार, नई दिल्ली - 110092
मो: 9667809910 ई-मेल: arvindojha189@gmail.com

कला-चिन्तन

कार्टून कला : पत्रकारिता का मौन और मुखर ब्रह्मास्त्र

चन्द्र मोहन

गुरुग्राम निवासी श्री चन्द्र मोहन विज्ञान और कला के दुर्लभ संयोग के अनूठे साधक एवं चिन्तक और बहु आयामी प्रतिभा के धनी रक्षा मंत्रालय से सेवानिवृत्त हुए पेशे से इंजीनियर रहे किन्तु समानान्तर रूप से कलाओं के अनेक रूपों को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाकर उसे बख़ूबी संजीदगी से जीते हैं। आपने कई वर्षों तक आकाशवाणी, दिल्ली के प्रातःकालीन सजीव (लाइव) प्रसारित प्रतिष्ठित कार्यक्रम "आज सुबह" के प्रस्तोता और विभिन्न विषयों पर वृत्त रूपक (फीचर) का निर्माण कर 12 आकाशवाणी वार्षिक पुरस्कार भी प्राप्त किए। 100 से भी अधिक विभिन्न विधाओं कला-संस्कृति, चिकित्सा विज्ञानं, राजनीति,फ़िल्मी एवं अन्य क्षेत्रों की कई मशहूर हस्तियों से साक्षात्कार कर उन्हें कला-जगत के दिलों तक पहुंचाया। एक बेहतरीन लेखक, कार्टूनिस्ट और ग्राफिक डिज़ाइनर के रूप में भी आपके विविध प्रकाशन एवं कार्य उल्लेखनीय हैं।...

जहां शब्द अपनी अभिव्यक्ति की सीमा पर रुक जाते हैं, वहाँ लकीरें संवाद करना शुरू करती हैं। कार्टून की जादुई रेखाएं बिना किसी शोर के वह सब कह जाती हैं, जिसे व्यक्त करने के लिए पृष्ठों के विस्तार की आवश्यकता होती है। कभी-कभी एक कार्टूनिस्ट की कल्पना इतनी सूक्ष्म, मारक और गहरी होती है कि उसका प्रहार रेशम जैसा कोमल होते हुए भी पाठक के मन-मस्तिष्क पर वज्र के समान स्थायी प्रभाव अंकित कर देता है। पत्रकारिता का मूल धर्म समाज को सूचित करना, शिक्षित करना और सत्ता के गलियारों में जवाबदेही की गूँज पैदा करना है। जब शब्द जटिलताओं के भँवर में उलझकर बौने प्रतीत होने लगते हैं, तब 'व्यंग्य चित्र' या 'कार्टून' एक ऐसे कलात्मक विस्फोट के रूप में उभरता है, जो एक ही झटके में पूरी विडंबना को उजागर कर देता है। वास्तव में, कार्टून मात्र मनोरंजन या हास्य का उपकरण नहीं है, बल्कि यह पत्रकारिता का एक शक्तिशाली, अनिवार्य और धारदार अस्त्र है।

कार्टून चित्रः सुधीर धर

कार्टून पत्रकारिता, जिसे वैश्विक स्तर पर 'संपादकीय कार्टूनिंग' (Editorial Cartooning) के नाम से जाना जाता है, दृश्य संचार की वह विलक्षण विधा है जो हास्य के पुट और व्यंग्य के मिश्रण से समसामयिक घटनाओं पर निर्भीक टिप्पणी करती है। यदि हम इतिहास के झरोखों से झांकें, तो पाएंगे कि कार्टूनों का अस्तित्व तब भी उतना ही प्रभावी था जब साक्षरता दर नगण्य थी। दृश्य की अपनी एक सार्वभौमिक भाषा होती है जिसे समझने के लिए किसी व्याकरण की आवश्यकता नहीं होती। 18वीं और 19वीं शताब्दी के कालखंड में ब्रिटिश कलाकार जेम्स गिलरे और अमेरिकी चित्रकार थॉमस नैस्ट ने इस विधा को वह तेवर प्रदान किए, जिन्होंने इतिहास की दिशा बदल दी। जेम्स गिलरे को 'राजनीतिक कार्टून का जनक' माना जाता है; उन्होंने नेपोलियन और जॉर्ज तृतीय जैसी शक्तिशाली शख्सियतों का सार्वजनिक उपहास उड़ाकर यह सिद्ध कर दिया कि एक तुलिका (ब्रश) की शक्ति तलवार से कहीं अधिक होती है। वहीं, थॉमस नैस्ट ने 'रिपब्लिकन हाथी' और 'सांता क्लॉस' जैसी प्रतीकात्मक छवियों को गढ़ा, जो आज भी वैश्विक संस्कृति का अटूट हिस्सा हैं।

भारतीय पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य में कार्टूनिंग का इतिहास अत्यंत गौरवशाली और संघर्षपूर्ण रहा है। भारतीय कार्टूनिस्टों ने न केवल समाज का मनोरंजन किया, बल्कि अपनी स्याही से देश का राजनीतिक इतिहास भी लिखा। इस यात्रा में सबसे प्रदीप्त नाम **के. शंकर पिल्लई** का है, जिन्हें भारतीय कार्टूनिंग का 'भीष्म पितामह' कहा जाता है। 1948 में 'शंकर्स वीकली' की स्थापना कर उन्होंने भारतीय व्यंग्य चित्रकारी को एक संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। शंकर पिल्लई और पंडित जवाहरलाल नेहरू के बीच का संबंध स्वस्थ लोकतंत्र की एक अनुपम मिसाल है। नेहरू ने स्वयं उनसे कहा था—"डोंट स्पेयर मी, शंकर" (शंकर, मुझे भी मत छोड़ना)। यह

कथन उस दौर की सहिष्णुता और आलोचना को स्वीकार करने के साहस का परिचायक था। शंकर ने नेहरू पर लगभग 4000 कार्टून बनाए, जो आज भी राजनीतिक आलोचना के उच्च प्रतिमान माने जाते हैं। उन्होंने 'चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट' के माध्यम से बच्चों के लिए भी कार्टून कला के द्वार खोले।

व्यंग्य और सादगी के इस सफर में **आर.के. लक्ष्मण** का नाम भारतीय जनमानस के हृदय में रचा-बसा है। उनके सृजन 'द कॉमन मैन' (आम आदमी) ने भारतीय लोकतंत्र की विसंगतियों और व्यवस्था की विकृतियों को जिस जीवंतता से उकेरा, वह विश्व पत्रकारिता के इतिहास में विरल है। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में उनका दैनिक कॉलम 'यू सेड इट' (You Said It) दशकों तक भारतीय सुबह का अनिवार्य हिस्सा रहा। चेक वाली शर्ट और धोती पहने वह मूक 'आम आदमी' अपनी मौन उपस्थिति से भ्रष्टाचार, नौकरशाही और राजनीतिक पाखंड पर जो कटाक्ष करता था, वह अखबार की मुख्य सुर्खी से भी अधिक प्रभावशाली होता था। लक्ष्मण की कला ने उन्हें पद्म विभूषण और रेमन मैग्सेसे जैसे सम्मानों तक पहुँचाया, लेकिन उनकी असली उपलब्धि आम भारतीय की पीड़ा को एक दृश्य भाषा देना थी।

इसी कड़ी में **अबू अब्राहम** का नाम उनकी तीखी और बेबाक राजनीतिक चेतना के लिए स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। आपातकाल (Emergency) के अंधकारमय दौर में, जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर सेंसरशिप का कड़ा पहरा था, अबू अब्राहम ने साहस की पराकाष्ठा दिखाते हुए एक कार्टून बनाया। इसमें तत्कालीन राष्ट्रपति फ़ख़रुद्दीन अली अहमद को बाथटब में लेटे हुए अध्यादेश (Ordinance) पर हस्ताक्षर करते दिखाया गया था। यह दृश्य सत्ता के विवेकहीन अनुसरण और लोकतांत्रिक मूल्यों के पतन पर सबसे करारा प्रहार था। उनकी रेखाएं अत्यंत सरल थीं, लेकिन उनमें निहित व्यंग्य की मारक क्षमता अभूतपूर्व थी।

भारतीय कार्टून जगत के एक और चमकते सितारे **सुधीर धर** थे, जिन्होंने अपनी कला से न केवल पाठकों को गुदगुदाया, बल्कि सामाजिक

कार्टून चित्र: चन्द्र मोहन

कार्टून चित्र: चन्द्र मोहन

विसंगतियों की सटीक व्याख्या भी की। उनकी शैली की विशेषता 'न्यूनतम रेखाएं और अधिकतम प्रभाव' थी। 'हिंदुस्तान टाइम्स' और 'द पायनियर' के माध्यम से उनके कॉलम ('This is it!)' ने वर्षों तक पाठकों को मुस्कुराहट के साथ सोचने पर विवश किया। सुधीर धर एक 'जेंटलमैन कार्टूनिस्ट' थे, जो शालीनता और शिष्टाचार की परिधि में रहकर व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ाने की क्षमता रखते थे। उनके काम को 'न्यूयॉर्क टाइम्स' और 'वाशिंगटन पोस्ट' जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी सम्मान प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार, **ओ. वी. विजयन** की कला में 'डार्क ह्यूमर' (गहरा व्यंग्य) और दार्शनिक गंभीरता का अनूठा समन्वय था। वे केवल एक चित्रकार नहीं बल्कि एक गंभीर विचारक और लेखक भी थे। वहीं आधुनिक दौर में **सुधीर तैलंग** ने अपनी पैनी दृष्टि से देश के कई प्रधानमंत्रियों के कार्यकाल का विश्लेषण किया। उनकी पुस्तक 'No Prime Minister' राजनीतिक कार्टूनिंग के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। इस सूची में **राजिंदर पुरी** की निर्भीकता, **बाल ठाकरे** की तीक्ष्णता (जो राजनीति में आने से पूर्व एक कुशल कार्टूनिस्ट थे) और वे 'फ्री प्रेस जर्नल' में आर.के. लक्ष्मण के साथ काम करते थे।, वर्तमान में **सतीश आचार्य** की सोशल मीडिया पर त्वरित और धारदार सक्रियता यह दर्शाती है कि यह कला आज भी उतनी ही जीवंत है।

कार्टून की असीमित प्रभावशीलता के पीछे कई मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारक विद्यमान हैं। एक कार्टून वह असाध्य कार्य कर जाता है जो एक हज़ार शब्दों का संपादकीय भी नहीं कर पाता। आज के सूचना विस्फोट और व्यस्तता के युग में, जब पाठक के पास लंबी व्याख्याएं पढ़ने का धैर्य नहीं है, तब एक कार्टून पलक झपकते ही पूरी घटना का सार संप्रेषित कर देता है। इसकी सबसे बड़ी शक्ति इसकी 'दृश्य भाषा' (Visual Language) है। शब्द साक्षरता की मांग करते हैं, लेकिन कार्टून के व्यंग्य को एक निरक्षर व्यक्ति भी उसी गहराई से समझ सकता है जितना कि एक प्रबुद्ध बुद्धिजीवी। दृश्य सूचनाएं मानव मस्तिष्क में दीर्घकाल तक स्थायी रहती हैं।

पत्रकारिता को लोकतंत्र का 'चौथा स्तंभ' कहा जाता है, और

कार्टून चित्र: आर.के. लक्ष्मण

कार्टून चित्र: आर.के. लक्ष्मण

कार्टून चित्र: सुधीर तैलंग

कार्टून चित्र: के. शंकर पिल्लई

कार्टूनिस्ट उस स्तंभ की सुरक्षा करने वाली सबसे धारदार तलवार है। उसका धर्म सत्ता की आंखों में आंखें डालकर अप्रिय सत्य कहना है। जब तानाशाही बढ़ती है या नेता अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते हैं, तब कार्टूनिस्ट अपनी तूलिका के प्रहार से सत्ताधारियों के मुखौटे उतार फेंकता है। यही नहीं, समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे-जातिवाद, भ्रष्टाचार, गरीबी और असमानता पर कार्टूनिस्ट करारा प्रहार करते हैं। वे समाज को आईना दिखाते हैं कि हम कहाँ गलत हैं। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कार्टूनिस्ट अखबारों के पहले पन्ने पर आम लोगों की दबी हुई आवाज़ों को जगह दिलाता है।

व्यंग्य (Satire) इस कला की आत्मा है। यह सीधे के बजाय तिरछे या यूँ कहें कि अप्रत्यक्ष रूप से हमला करता है, जिससे बात गहरी चुभती भी है और अक्सर कानूनी पेचीदगियों से भी बच जाती है लेकिन हमेशा नहीं। किसी नेता की लंबी नाक या विशाल पेट दिखाना केवल शारीरिक चित्रण नहीं, बल्कि उसके अहंकार, असत्य या असीमित लालच का प्रतीक होता है। जैसे शांति के लिए 'कबूतर', न्याय के लिए 'आंखों पर पट्टी बंधी महिला' और महंगाई के लिए 'राक्षस' जैसे प्रतीक जटिल वैश्विक समस्याओं को सरलीकृत कर देते हैं।

एक आम धारणा यह है कि जिसकी चित्रकारी अच्छी है, वह अच्छा कार्टूनिस्ट बन सकता है, किंतु वास्तविकता इसके विपरीत है। एक श्रेष्ठ कार्टूनिस्ट वह है जिसकी 'प्रेक्षण शक्ति' (Observation) प्रखर है। वह अपनी आंखों से नहीं, बल्कि अपने मस्तिष्क और संवेदनाओं से देखता है। वह समाज की सामान्य घटनाओं में छिपी विडंबनाओं को पकड़ता है। आश्चर्य की बात यह है कि आर.के. लक्ष्मण, सुधीर तैलंग और अबू अब्राहम जैसे दिग्गजों ने इस कला की कोई विधिवत या औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। लक्ष्मण को तो बॉम्बे के जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स ने प्रवेश देने से यह कहकर मना कर दिया था कि उनके चित्रों में वह प्रतिभा नहीं है। उन्होंने अपनी दीवारों और फर्श को अपनी पाठशाला बनाया। इन महान् कलाकारों की सफलता का रहस्य उनकी 'प्रतिभा' और 'निरंतर अभ्यास' में छिपा था।

कार्टून चित्र: अबू अब्राहम

आज के डिजिटल और एआई के युग में कार्टून पत्रकारिता के सम्मुख नई संभावनाएं और गंभीर चुनौतियां दोनों ही खड़ी हैं। अब कार्टून अखबारों के कोनों से निकलकर सोशल मीडिया पर 'वायरल' हो रहे हैं। स्थिर चित्रों का स्थान अब एनिमेटेड क्लिप्स ले रही हैं। परंतु, इस तकनीक के साथ-साथ असहिष्णुता का ग्राफ भी बढ़ा है। कार्टूनिस्टों पर कानूनी मुक़दमे, शारीरिक हमले और डिजिटल सेंसरशिप का खतरा बढ़ता जा रहा है। यह एक गंभीर प्रश्न है कि क्या कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) एक मनुष्य जैसी गहरी संवेदना, हास्यबोध और व्यंग्य का सृजन कर सकती है? शायद तकनीक रेखाएं तो खींच सकती है, लेकिन वह 'आत्मा' कहाँ से लाएगी जो व्यवस्था के अन्याय को देखकर तड़प उठती है?

कार्टून बनाना केवल एक कलात्मक विधा नहीं, बल्कि एक महती सामाजिक जिम्मेदारी है। जब तक समाज में असमानता, भ्रष्टाचार और सत्ता का दंभ रहेगा, तब तक एक कार्टूनिस्ट की आवश्यकता बनी रहेगी। कार्टूनिस्ट वह मशालची है जो समाज की सोई हुई चेतना को जगाता है। वह कठोर से कठोर व्यवस्था को एक मुस्कुराहट के साथ हिलाने की अद्भुत क्षमता रखता है। पत्रकारिता के इस 'मौन ब्रह्मास्त्र' की धार को बनाए रखना न केवल कला जगत के लिए, बल्कि जीवंत लोकतंत्र की रक्षा के लिए भी अनिवार्य है।

संपर्क : 1140 सेक्टर 21(हुडा मार्केट) पॉकेट सी ,
गेट नं. 2 के बगल में गुरुग्राम - 122016 मोबा. 9811467241

आलेख में प्रकाशित कार्टून चित्रों को दिखाने का उद्देश्य किसी के कॉपी राइट, मानहानि करना उद्देश्य नहीं है सिर्फ पाठकों का ज्ञानार्जन कराना लेखक और कला समय पत्रिका का उद्देश्य है। (चित्र साभार) - संपादक

देखूं जैसी कला की दुनिया

जॉनी एम. एल.

केरल में जन्मे जॉनी एम.एल. समकालीन भारतीय कला जगत के सक्रिय और बहुआयामी व्यक्तित्व हैं। अंग्रेज़ी भाषा एवं साहित्य, कला इतिहास और आलोचना तथा क्रिएटिव क्यूरेटिंग में परास्नातक उपाधियों से संपन्न, वे कला इतिहासकार, समीक्षक, क्यूरेटर, लेखक और अनुवादक—इन सभी भूमिकाओं में समान रूप से सक्रिय रहे हैं। उन्होंने अपने पेशेवर जीवन की शुरुआत दिल्ली से प्रकाशित प्रमुख अंग्रेज़ी समाचारपत्रों में कला स्तंभ लेखन से की। 1990 के दशक के मध्य में, जब भारतीय कला परिदृश्य मुख्यतः स्थापित दीर्घाओं के इर्द-गिर्द केंद्रित था, तब जॉनीएमएल ने वैकल्पिक क्यूरेटोरियल परियोजनाओं के माध्यम से एक स्वतंत्र और प्रयोगधर्मी मंच तैयार करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। सहस्राब्दी के आरंभिक उभार काल में उनका ध्यान विशेष रूप से क्यूरेशन और गंभीर लेखन की ओर केंद्रित रहा...।

जॉनी एम. एल. अपने स्पष्ट और वैचारिक लेखन के लिए जाने जाते हैं। उनकी लिखी प्रस्तुत टिप्पणियां कला-संस्थाओं, बाजार-प्रेरित प्रवृत्तियों और औपनिवेशिक विरासत से जुड़े प्रश्नों को उठाती हैं। अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियों के संदर्भ में, भारतीय कला की भूमिका पर भी यहां परिप्रेक्ष्य उत्पन्न होता है। इस लेखन का पक्ष, कला को केवल सौंदर्यबोध तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक और राजनीतिक विमर्श से जोड़ता है। कला लेखक सुमन कुमार सिंह ने उनकी टिप्पणियों का हिंदी अनुवाद कर, अपनी वेबसाइट 'आलेखन' पर प्रस्तुत किया है। साभार वे टिप्पणियां यहां प्रस्तुत है।

- संपादक

अतुल डोडिया की राह पर ऐ वेईवेई ?

ओखला स्थित धान मिल परिसर । बीएमडब्ल्यू कारों और डिज़ाइनर कपडे पहने लोगों के रूप में धन-ऐश्वर्य पूरे परिसर में दृष्टिगत है। यहाँ के पथरीले रास्ते, लम्बे-नुकीले हील वाली जूतियाँ पहने सुंदरियों को अजीबोगरीब, लगभग अमानवीय मुद्राओं में चलने को मजबूर कर देते हैं। नेचर मोर्ते गैलरी में प्रदर्शित ऐ वेईवेई की कलाकृतियाँ आपको अपनी ओर बुलाते हैं। हैरानी की बात यह है कि रविवार की दोपहर को माँएँ अपने बच्चों के साथ, पुरुष अपनी पत्नियों के साथ और प्रेमी जोड़े हाथों में हाथ डाले वेईवेई के कृतियों की प्रदर्शनी देखने पहुँचे हुए हैं। जिन्होंने वेईवेई का नाम सुना है, वे उसे भलीभांति जानते हैं।

गैलरी के भीतर प्रवेश करते ही चीज़ें प्रभावशाली लगने लगती हैं, क्योंकि सामने ही आपको होकुसाई की ग्रेट वेव पर आधारित 'सर्फ़िंग' दिखाई देती है, और बाईं ओर माने के विशाल और लगभग अभिभूत कर देने वाले लिली पोंड (कमल तालाब) का विस्तार दिखता है— ये सभी हज़ारों लेगो ब्लॉक्स से निर्मित हैं।

दाईं ओर एक प्यारी-सी गर्ल विद द पर्ल ईयररिंग है, और अंदर जाकर आप क्रीम से सनी हुई मोनालिसा, एक नीले रंग की जैक्सन पोलॉक जैसी कृति और कपड़ों व बटनों से बना हुआ एक बड़ा सा FUCK देखते हैं।

मैं यहाँ असली वेईवेई को ढूँढता हूँ और उसे पाता हूँ—कोका-कोला के लोगो से ओवर-पेंट किए गए एक प्राचीन फूलदान में, और चीनी जारों को एक के ऊपर एक रखकर बनाए गए एक चीनी मिट्टी के स्तंभ में, जो दुनिया भर में लड़ी जा रही निरर्थक युद्धों, उनसे पैदा हुए सामूहिक विस्थापन और अनकहे मानवीय दुखों को दर्शाता है।

मोनालिसा पर लगी क्रीम मुझे ताकाशी मुराकामी के नायक और मैथ्यू बार्नी की क्रीमास्टर श्रृखला की वीर्य-सदृश फुहारों की याद दिलाती है। ठीक है। लेकिन मुझे इसमें कुछ कमियाँ और कुछ अतिशयताएँ दिखाई देती हैं। कमियाँ—हाँ, कुल मिलाकर वेईवेई की आत्मा की कमी। अतिशयता—आह, यहाँ रज़ा और गायतोंडे के काम भी हैं और नाथद्वारा के कृष्ण की एक पिछवाई भी, जो लेगो ब्लॉक्स से बनाई गई है।

जब मुझे पता चला कि वेईवेई की कृतियाँ नेचर मोर्ते में प्रदर्शित होंगे और वे इंडिया आर्ट फ़ेयर के दौरान व्यक्तिगत रूप से भारत आएँगे, तो उनसे बहुत अपेक्षाएँ जुड़ गई थीं। वे मुझे एक कलाकार के रूप में पसंद हैं और मैंने उन्हें काफ़ी गहराई से पढ़ा और समझा है। उनकी सत्ता-

ऐ वेई वेई की इंडिया आर्ट फेयर में प्रदर्शित की गई कला कृति

विरोधी कला, उनकी राजनीतिक सक्रियता, उनकी क़ैद, उनका शोध और उनकी अभिव्यक्तियाँ,

उनका व्यंग्य, उनके हस्तक्षेप, उनका ब्लॉग लेखन, उनकी फ़ोटोग्राफ़ी— इन सबने उन्हें मेरे मन में जेफ़ कून्स और डेमियन हर्स्ट से कहीं बड़ा बना दिया था।

तो फिर उन्होंने रज़ा, गायतोंडे और पिछवाई की अनुकृति क्यों की? क्या इसलिए कि वे भारत आ रहे थे? अगर उन्हें भारतीय कृतियों को चुनना ही था, तो हुसैन की सरस्वती क्यों नहीं, या आरा की कोई नग्न आकृति, या फिर अकबर पदमसी क्यों नहीं? क्या यह केवल बाज़ार का आकर्षण था जिसने उन्हें इस तरह की कलाकृतियाँ रचने को प्रेरित किया? मुझे नहीं पता।

फिर मेरे दिमाग़ का दूसरा हिस्सा पूछता है— अरे छोड़ो, अगर वेईवेई माने, वर्मीर, पोलॉक और दा विंची की अनुकृति रच सकते हैं, तो रज़ा या गायतोंडे क्यों नहीं? इनमें फ़र्क़ ही क्या है? ये तो बस ऐसे दृश्य-संदर्भ हैं जो व्यापक रूप से पहचाने जाते हैं और मूल्यवान माने जाते हैं। क्या यह वही बात नहीं है

जैसे राजा रवि वर्मा ने पौराणिक साहित्य को दृश्य रूप दिया, या जैसे अतुल डोडिया ने रवि वर्मा से लेकर पिकासो तक को आधार बनाकर चित्र बनाए?

शायद अतुल डोडिया के ज़्यादातर काम वास्तव में दूसरे महान कलाकारों के कार्यों पर खड़े होते हैं। संदर्भ ही उनके काम को रचते हैं— या कह लें कि वे मास्टर कृतियों की पैरोडी बनाते हैं, लेकिन इतनी गंभीरता के साथ कि वे सब नक़ल जैसे प्रतीत होते हैं। इस प्रदर्शनी में ऐ वेईवेई बस दूसरे कलाकारों के भरोसे दिखाई देते हैं। सचमुच, एक बेहद निराशाजनक दृश्य।

इंडिया आर्ट फेयर में प्रदर्शित की गई एक वेई वेई की कलाकृति

लेकिन किसी कला आलोचक के शब्दों का यहाँ क्या महत्व? संभव है कि ये कृतियाँ पहले ही बेहद महत्त्वपूर्ण संग्रहों में जा चुकी हों। अगर इन्होंने बाज़ार में मौद्रिक मूल्य पैदा कर लिया है, तो ऐसे में किसी आलोचक द्वारा निराशा व्यक्त करना ठीक वैसा ही है जैसे कोई अंबानी के बेटे की शादी के ख़र्चों पर ऑनलाइन भाषण दे रहा हो। फिर भी, मुझे ऐ वेईवेई को उस स्थान पर वापस लाने के लिए काफ़ी कोशिश करनी पड़ेगी जहाँ वे कभी थे।

शायद... शायद... वह FUCK शीर्षक कलाकृति भारतीय कला संग्राहकों और आम दर्शकों के लिए ही है। वैसे मैंने कभी भी सत्ता को इंगित करती उनकी मध्यमा उँगली दिखाने वाली मुद्रा पर शक नहीं किया।

सफलता और असफलता का अंतर्द्वंद्व

प्रत्येक सफल कलाकार कमोबेश एक ही तरह से सफलता का स्वाद चखते और उसका आनंद लेते हैं। वे महंगे कपड़े, कार, घर, स्टूडियो खरीदते हैं और छुट्टियां मनाने विदेश जाते हैं।

लेकिन बहुधा इनमें एक स्पष्ट अंतर दिखता है। वे कलाकार जिन्हें शुरुआती सफलता मिल जाती है, वह उन्हें बेहतर (प्रशिक्षित, दिखने में सुंदर और संतुष्ट) जीवनसाथी दिलाती है। अब अगर आपको कलाकार की सफलता के मुकाबले जीवनसाथी के मामले में कुछ बेमेल नज़र आए, तो यकीन मानिए कि यह सफलता उन्हें देर से मिली है।

वैसे कुछ असफल कलाकार भी होते हैं और हर बार सफल न हो पाने या आंशिक सफलता का स्वाद कुछ अलग और अनूठा होता है। ध्यान रहे, मैं सफलता की कमी को असफलता नहीं कहता, क्योंकि यह बिल्कुल भी असफलता नहीं है। क्योंकि सफलता बस एक मौका है जो किसी को मिला और किसी को नहीं मिला।

इन असफल होने वालों के दो प्रकार हैं। एक, वे जो किसी और कारण से जल्दी ही मंच छोड़ देते हैं और फिर देर से अपनी वापसी करते हैं। दूसरा, काफी समय तक किए गए अपने अच्छे काम के बावजूद, उनके अन्दर कुछ ऐसी कमी रह जाती है जिसके कारण वे खरीदारों और दीर्घा संचालकों को अपनी तरफ आकर्षित नहीं करा पाते हैं I

इन दोनों मामलों वाले इसे अपनी कमनसीबी या दुर्भाग्य मानते हैं। लेकिन वे अपने जीवन के अंत तक उस दिन की उम्मीद करते रहते हैं, जब किसी दिन सफलता उन पर मुस्कुराएगी। वे निराश होकर दुनिया छोड़ चुके होते हैं। इस उम्मीद के साथ कि उनके बच्चे या रिश्तेदार उनकी कलाकृतियों की कद्र करेंगे । लेकिन उनके उत्तराधिकारी कुछ स्पष्ट कारणों से ऐसा नहीं करते; मसलन ये कलाकृतियाँ बहुत सी जगह घेरते हैं और उनसे कोई सीधा फायदा भी नहीं दिखता होता।

इस स्थिति में उनके समकालीन कहने लगते हैं कि जब उसे नौकरी मिली थी, तो उसे वह कर लेनी चाहिए थी। उधर बेटा कह सकता है कि पिता ने भ्रम में पड़कर अपना जीवन बर्बाद कर लिया। इसी बीच अचानक फिर एक दिन, किसी को उस कलाकार की ढेर सारी कलाकृतियाँ मिल जाती हैं। ऐसे में वह व्यक्ति उस कलाकार का इतिहास बदल सकता है, कम से कम मरणोपरांत।

क्योंकि उस समय तक, अपने दौर में कला जगत पर राज करने वाले प्रभावी और शक्तिशाली लोग गिरकर धूल चाट चुके होंगे। ऐसे में दशकों की गुमनामी के बाद एक नया सितारा जन्म लेता है। क्योंकि प्रसिद्धि की गुंजाईश हरेक के लिए है, जाहिर है ऐसे में हर किसी के लिए एक उम्मीद भी है।

क्यों कला समीक्षक कभी-कभी भयभीत चूहा बन जाते हैं

पिछले कुछ दशकों से मैं कला, कलाकारों और कला बाजार तथा सामान्य जीवन में उनके व्यवहार के पैटर्न पर हास्यास्पद रूप से आत्म-धर्मी, बेहिचक और बेशर्म उपदेशात्मक लेखन करता आ रहा हूँ। कुछ लोग मेरी

स्पष्टवादिता की सराहना करते हैं, जबकि कुछ लोग मेरी आलोचनात्मक टिप्पणियों को छिपकर या खुलेआम तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। जहाँ पहले प्रकार के लोग मुझसे और अधिक अपेक्षा रखते हैं, वहीं दूसरे प्रकार के लोग चुपचाप मेरी आलोचना के अचानक और लंबे समय से प्रतीक्षित अंत की कामना करते हैं।

ऐसे में मेरे प्रशंसक प्रायः वे कलाकार होते हैं जिनमें इतना शिष्टाचार और साहस होता है कि वे अपने भीतर झाँक सकें, बिना आक्रामक प्रतिक्रिया या अवसादजनक आत्म-भर्त्सना के फंदे में फंसे। क्योंकि वे ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने अपने अहं से समझौता कर लिया है, आत्म-विश्वास पाया है और आत्म-सुधार की क्षमता विकसित की है। कुछ कलाकार उम्र में मुझसे काफी वरिष्ठ हैं (मैं उन्हें सत्तर पार कहकर डायनासोर जैसा महसूस नहीं कराना चाहता), फिर भी वे मेरी आलोचनात्मक बातों पर गंभीरता से विचार करते हैं, भले ही वे जानते हों कि वे मेरी बातों के अनुसार खुद को बदलने वाले नहीं हैं।

इंडिया आर्ट फेयर में प्रदर्शित एक कलाकृति। फोटो: डॉ चित्रसेन

कलाकार, अंततः कलाकार ही होते हैं; सबसे ख़राब कलाकारों में भी अपनी सीमाओं में कल्पना की सबसे सुंदर उड़ान होती है। लेकिन इस लेख में मैं अपने ही समुदाय के लोगों के बारे में बात करने जा रहा हूँ — यानी कला आलोचकों के बारे में। उनमें से कई लोग मेरे कट्टर अनुयायी हैं, भले ही वे खुलकर मेरी प्रशंसा कभी नहीं करते। उनमें से कुछ साहसी हैं और अवसर मिलने पर मुझे और आगे लिखने के लिए प्रेरित करते हैं। एक और समूह ऐसे कला आलोचकों का है, जो हमेशा आलोचना के गिरते स्तर की शिकायत करते रहते हैं लेकिन कभी भी इसे स्पष्ट शब्दों में अपने लेखन में व्यक्त नहीं करते।

आगे बढ़ने से पहले मैं बताना चाहूँगा कि आजकल हम किस प्रकार की कला आलोचना कर रहे हैं या देख रहे हैं । सबसे पहले तो हमें कला आलोचना को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उसे कला लेखन से अलग करना चाहिए। वैसे भी हमारे यहाँ कई कला लेखक हैं जो खुद को कला आलोचक कहते हैं। दरअसल कला लेखन, कला आलोचना नहीं है। कला लेखन हमेशा कला या कलाकार के बारे में होता है, जिसमें कोई आलोचनात्मक दृष्टिकोण नहीं होता। ऐसे लेख प्रायः उस बात को ही दुहराते हैं जो कलाकार ने कहा है या जो उसकी कला या उस कलाकार के बारे में सार्वजनिक रूप से उपलब्ध है। ऐसे लेखों से पाठकों को कोई ठोस दृष्टिकोण या आलोचनात्मक मूल्यांकन नहीं मिलता।

कला आलोचना एक ऐसा लेखन है जिसमें कला आलोचक का दृष्टिकोण होता है, जो उसके अनुभव और कला के ऐतिहासिक समझ से पुष्ट होता है। दैनिक अखबारों में जो कॉलम छपते हैं, वे कला आलोचना हो सकते हैं, लेकिन ज़रूरी नहीं कि वे हमेशा ऐसा हों। इन दिनों अंग्रेज़ी के दैनिक अखबारों में भी अच्छे कला कॉलम नहीं मिलते। वरिष्ठ कलाकार, आलोचक और लेखक अशोक भौमिक एक हिंदी दैनिक अख़बार में कॉलम लिखते हैं, जिसे कला आलोचना का एक अच्छा उदाहरण कहा जा सकता है। कभी-कभी अखबार, कला आलोचना के क्षेत्र के प्रसिद्ध नामों से किसी प्रसिद्ध कला व्यक्तित्व या कला आयोजन पर लेख लिखवाते हैं। लेकिन उनमें से अधिकतर लेख फीचर लेखन या 'फील गुड' कहानियों की तरह के होते हैं, जिन्हें बस रविवार को पढ़ने के लिए तैयार किया गया होता है।

दैनिक अखबारों, ऑनलाइन समाचार तथा सांस्कृतिक पोर्टलों में घटती जगह ने कला आलोचना और कला आलोचकों के लिए अवसरों को लगभग समाप्त कर दिया है। हालांकि, कई अन्य सोशल मीडिया मंचों पर सकारात्मक कला आलोचना के प्रयास किए जा रहे हैं। आज सोशल मीडिया पर भी सनसनीखेज़ लेखन का बोलबाला है, ख़ासतौर पर जब कोई सुपरस्टार आलोचक जैसे जैरी सॉल्ट्ज़ एक उदाहरण पेश करते हैं। लेकिन कोई भी सॉल्ट्ज़ की रत्ती भर भी नकल करने की कोशिश नहीं करता, क्योंकि अधिकांश कला आलोचक सच बोलने से डरते हैं। वैसे भी उनमें से अधिकांश अब कैटलॉग लेखक बन गए हैं या फिर ऐसी पत्रिकाओं के लेखक, जिन्हें कला लॉबी द्वारा संचालित किया जाता है और जो बड़े कला मेलों या आयोजनों के दौरान विशेष अंक के रूप में प्रकाशित होते हैं।

वस्तुतः कैटलॉग लेखन एक प्रकार का प्रचारात्मक लेखन होता है जिसमें 'वास्तविक' कला आलोचकों की सेवाओं की आवश्यकता होती है। यह कैटलॉग लेखन, कला लेखन से कुछ ऊपर के स्तर का होता है किन्तु कला आलोचना से कुछ नीचे वाला, फिर भी उसमें कला आलोचना के कुछ अंश तो होते ही हैं I जाहिर है कि एक कैटलॉग की प्रस्तावना में कोई कला आलोचक संबंधित कलाकार की खराब सौंदर्यशास्त्रीय प्रस्तुति की कठोर आलोचना नहीं कर सकता। लेकिन वह अपेक्षाकृत सौम्य शब्दों (euphemisms) का प्रयोग करके संकेत दे सकता है, बिना उस आलोचनात्मक ढांचे को तोड़े, जिसे उसने स्वयं उस कलाकार के लिए खड़ा किया है। अक्सर कैटलॉग लेखन पैसे के लिए किया गया कार्य होता है और एक इंसान तथा पेशेवर के रूप में यहाँ आपको वही लिखना पड़ता है जिसकी अपेक्षा की जाती है।

अब सवाल उठता है कि आखिर ये कला आलोचना क्या है ? दरअसल कला आलोचना का मकसद सार्वजनिक क्षेत्र में प्रस्तुत कलाकृतियों को जवाबदेह बनाना होता है। सार्वजनिक क्षेत्र में प्रदर्शित कोई

भी कलाकृति, अपने दर्शकों की परवाह किए बिना, संस्कृति का एक प्रतीक होती है। ऐसे में संस्कृति की जाँच-पड़ताल, विश्लेषण और ज़रूरत पड़ने पर उसमें सुधार का सुझाव ऐसे में आवश्यक हो जाता है I कोई भी सांस्कृतिक उत्पाद, चाहे वह चित्रकला हो, मूर्तिकला, फ़ोटोग्राफ़ी, इंस्टॉलेशन या परफ़ॉर्मेंस, वह एक व्यक्तिपरक सोच की प्रक्रिया का परिणाम होता है। कलाकार की यह व्यक्तिपरकता जो उसकी कलाकृति में परिलक्षित होती है, वह ऐतिहासिक प्रक्रियाओं और टकरावों से निकला हुआ एक संश्लिष्ट सार होती है। जरुरी नहीं कि सभी ऐतिहासिक शक्तियाँ सकारात्मक ही हों। ऐसे में कुछ बातें मानव सभ्यता की मूलभूत समझ और विवेक के विरुद्ध भी जा सकती हैं। तो ऐसी स्थितियों को प्रश्नों के घेरे में लाना और स्पष्ट करना ज़रूरी होता है। और यहाँ इन तथ्यों को उजागर करना ही कला आलोचक का काम है।

मैं 'संदर्भ की तानाशाही' विषय पर चर्चा करता रहा हूँ (जैसा कि ब्रिटिश आलोचक एडी फ्रैंकल ने प्रस्तावित किया है)। कला आलोचना केवल संदर्भ तक सीमित नहीं होती। किसी भी कलाकृति के दो प्रकार के सौंदर्यशास्त्रीय मूल्य होते हैं; पहला, औपचारिक सौंदर्यशास्त्र, जो कलाकृति की बनावट और उसके निर्माणात्मक तत्वों से संबंधित होता है। दूसरा, आंतरिक सौंदर्यशास्त्र, जो कलाकृति के 'अर्थ' को दर्शकों के सामने प्रकट करने में सक्षम होता है। पहला सौंदर्यशास्त्र इस बात से जुड़ा होता है कि दर्शक या आलोचक उस कलाकृति को अपने चक्षुओं से कैसे ग्रहण करता है, उसकी संरचना के ज़रिये उसमें व्यक्त भावनाओं, स्मृतियों और विचारों से कैसे जुड़ता है, वहीं दूसरा पहलू उन कारणों और गतिशीलताओं की पड़ताल करता है, जिन्होंने उस कलाकृति की रचना को संभव बनाया। जो आलोचक पहले पहलू पर ही रुक जाता है, वह कलाकृति के ऐतिहासिक सार को समझने में विफल रहता है। और दूसरी तरफ जो आलोचक पहले वाले सौंदर्य पक्ष को बिल्कुल नहीं देखता, वह संदर्भ का ग़ुलाम बन जाता है। ऐसी स्थिति में एक अच्छा आलोचक जो करता है — वह है मध्य मार्ग को अपनाते हुए, अपनी सारी बुद्धि और संवेदनशीलता को एकत्र कर कलाकृति को महसूस करता है और फिर उसे अपने लेखन से प्रकट करता है I

इंडिया आर्ट फेयर में प्रदर्शित एक कलाकृति। फोटो: डॉ चित्रसेन

हमारे कला आलोचक ऐसा नहीं कर रहे हैं। क्योंकि वे ऐसा करने से डरते हैं। समकालीन समय में सबसे अधिक सराही और अपनाई जाने वाली कला 'आलोचना' दरअसल ऐसा लेखन है, जिसमें लेखक अपने विषय से जुड़े व्यक्तिगत अनुभवों को साझा करने में सारी ऊर्जा झोंक देता है। इस तरह की लेखन शैली में आत्म-कथात्मक कल्पना (auto-fiction) की विशेषताएँ और कोमलता होती है, क्योंकि कुछ समय बाद जब पाठक उस दौर से दूर हो जाते हैं जिसकी चर्चा उस लेखन में की गई होती है, तब लेखक असली घटनाओं को कल्पना में ढालने लगता है और कल्पना को असल जैसा दिखाने लगता है। लोगों को यह पसंद आता है। असल में, पाठकों को बच्चों जैसा बना दिया जाता है जैसे वे किसी दादाजी से पुराने ज़माने की कहानियाँ सुन रहे हों, जिसमें उनकी बहादुरी, जीत और कारनामों का ज़िक्र हो।

कला को कल्पना में ढालना या कलाकारों के इर्द-गिर्द कहानियाँ बुनना कुछ मामलों में मददगार होता है, क्योंकि ऐसी कहानियाँ कलाकृति की प्रामाणिकता और उत्पत्ति को मज़बूत आधार देने के लिए जरूरी मानी जाती हैं। हालांकि, इन सब बातों का कला आलोचना में अधिक योगदान नहीं हो पाता। यहाँ तक कि कला आलोचना के नाम पर की गई भारी-भरकम अकादमिक लेखन भी यही काम करता है, बस यहाँ मंच बदल जाता है I कला आलोचना को आत्म-कथात्मक, अकादमिक बड़बड़ाहट या गपशप का माध्यम बना देना, अंततः स्वयं से कला आलोचना की हत्या करने जैसा है। मैं जेरी सॉल्ट्ज़ और हाल फोस्टर के कला कॉलम पढ़ने की कोशिश कर रहा था — पहले प्रसिद्ध कला आलोचक हैं और दूसरे प्रसिद्ध अकादमिक आलोचक। मेरी समझ से वे बेहद अपठनीय हैं। सॉल्ट्ज़ का लेखन बस घटनाओं पर उनके निजी प्रभाव होते हैं, जिन्हें विचित्र भाषा शैली से सजाया गया होता है। वहीँ फोस्टर की बौद्धिकता उनके आलोचनात्मक लेखन को अत्यंत गूढ़ और अपारदर्शी बना देती है।

अब आइए मैं अपने कला आलोचकों और भारत में कला आलोचना की मौत को लेकर उनकी कभी न खत्म होने वाली शिकायतों की बात करूँ। मेरा तो मानना है कि, कला आलोचना ज़िंदा है लेकिन आलोचक खुद सिधार गए हैं। क्योंकि ऐसे में शिकायतें करने के बजाय वे स्वयं वैसा क्यों नहीं लिखते, जैसा वे वास्तव में लिखना चाहते हैं ? वैसे सच तो यह भी है कि आजकल कला आलोचकों के पास लिखने के लिए पर्याप्त मंच नहीं हैं। कुछ कला पत्रिकाएं सिर्फ गुटबाज़ी के बल पर चलती हैं और कुछ अन्य पत्रिकाएं किसी तरह अपने को जिंदा रखे हुए है, और अक्सर कलाकारों से मिलने वाले

सहयोग से चलाया जाता है। यहाँ तक कि अब कला आलोचना में किसी तरह के पारिश्रमिक की गुंजाईश नहीं बची I (बेशक, कैटलॉग लेखन, क्यूरेटर निबंध और प्रचार लेखन के लिए भुगतान होता है। मेरा आशय यह नहीं कि कला आलोचक सस्ते होते हैं)। लेकिन अगर आप कला आलोचना करना चाहते हैं तो डरने की क्या ज़रूरत है? आप बस अपना सोशल मीडिया अकाउंट खोलिए और उस पर लिखिए — जैसा कि मैं वर्षों से करता आ रहा हूँ।

जो कला आलोचक गैलरियों और कलाकारों की चुपचाप शिकायतें करते रहते हैं, वे दरअसल अब भी उनसे कुछ पाने की उम्मीद रखते हैं। मेरे हिसाब से, अगर आप उनसे कुछ उम्मीद कर रहे हैं तो यह वैसा ही है जैसे लोकोक्ति में एक लोमड़ी मोटे अंडकोषों वाले सांड के पीछे इस उम्मीद से चल रही हो — इस आशा में कि कभीन कभी वे उसके मुंह में गिर जाएँगे! कला दीर्घाएं या ऐसी ही संस्थाएं कला आलोचना को न तो समर्थन देंगी, न प्रचारित करेंगी और न ही उसमें पैसा लगाएंगी — इसलिए कृपया इस भ्रम में न रहें। सीधे शब्दों में कहें तो आपके पास खोने को कुछ नहीं है। इसलिए मैं उन सभी लेखकों से जो कला आलोचक बनना चाहते हैं अपेक्षा करता हूँ— वे बड़े लोगों का डर छोड़ें और जो मन में है, वही लिखें।

कला दीर्घाएं अब तेजी से केवल देखने के कमरों में बदलती जा रही हैं। धन-सम्पन्न मुख्यधारा की गैलरियाँ अब अपने कला उद्घाटन कार्यक्रम कुछ दिनों के लिए बीकानेर हाउस, इंडिया हैबिटैट सेंटर या त्रावणकोर हाउस जैसे प्रसिद्ध स्थानों पर करती हैं और फिर शो को अपनी गैलरी में ले जाती हैं, जहाँ वे कलाकृतियाँ आम जनता से अचानक हटा ली जाती हैं और केवल इच्छुक दर्शकों और खरीदारों को ही दिखाई जाती हैं। वहीँ कुछ अन्य गैलरियाँ अब अपने ग्राहकों के अलावा किसी और को निमंत्रण तक नहीं भेजतीं। क्योंकि अब कला प्रदर्शनियाँ पूरी तरह से निजी आयोजन बन चुकी हैं। तो ऐसे में अगर आप कला आलोचना करते हैं तो आप क्या खोते हैं? जाहिर है कुछ भी नहीं।

बहु-विषयक कला या अर्थहीन स्वतंत्रता?

'मल्टीडिसिप्लिनरी यानी बहु-विषयक कलाकार' एक ऐसा शब्द है जिसे सुनते ही मेरे चेहरे पर विद्रूप सी मुस्कान आ जाती है।क्योंकि यह मुझे साफ़-साफ़ कहता है—'हे आलोचक, मुझसे किसी भी चीज़ के प्रति प्रतिबद्धता की उम्मीद मत रखो, सिवाय इन मुद्दों पर मेरी दो कौड़ी की राय के जिनसे मैं अपना काम चला लेता हूँ I ऐसे में तुम्हारी राय मेरे लिए कोई मायने नहीं रखती।'

अलबत्ता 'मिक्स्ड मीडिया' उतनी चुनौती नहीं देता। अगर आप इसे ध्यान से देखें तो उसमें थोड़ा ऐक्रेलिक, थोड़ा कपड़ा, कुछ टिशू पेपर, थोड़ा तेल, कुछ मुद्रित सामग्री, कुछ वुडकट, कुछ टहनियाँ, थोड़ा फेविकोल, कुछ चारकोल, थोड़ा धातु और न जाने और भी क्या-क्या यहाँ मिल सकता है। फिर भी यह आलोचक या दर्शक के लिए सोचने-समझने का कोई न कोई संकेत छोड़ देता है।

मल्टीडिसिप्लिनरी यानि बहु-विषयक यहाँ 'इंटरडिसिप्लिनरी' यानि अंतःविषयक का क़रीबी रिश्तेदार है, जिसका मतलब है कि आप अपने काम के बारे में कुछ भी कर या कह सकते हैं, लेकिन इसके बावजूद इस प्रक्रिया में आप संबंधित विधा के अनुशासनों से बंधे रहते हैं।

उदाहरण के लिए, आप एक प्रशिक्षित प्रिंटमेकर हैं, लेकिन आपकी रुचि वास्तुकला में भी है। तो ऐसे में आप वास्तुकला के तत्वों को अपनी कलाकृति में—या तो अवधारणात्मक रूप से या सामग्री के तौर पर प्रयुक्त करते हैं।

यहाँ अगर मैं खेल का रूपक इस्तेमाल करूँ, तो यह सब इंटरडिसिप्लिनैरिटी डेकैथलॉन की तरह है; जिसमें कई खेलों के माध्यम से आपकी सहनशक्ति की परीक्षा ली जाती है। लेकिन वहाँ जीतने का एक निर्धारित लक्ष्य तय रहता है।

वहीँ मल्टीडिसिप्लिनैरिटी फुटबॉल के किसी ऐसे खेल की तरह है जहाँ खिलाड़ियों को मनमर्ज़ी से गोलपोस्ट बदलने या सीमा रेखा के बाहर कहीं भी गेंद मारकर उसे गोल घोषित कर देने की छूट होती है।

"हम एक ऐसे कलाकार को देखते हैं जो कुछ देर तक चित्रकारी करता है और अचानक कविता पाठ करने लगता है और फिर प्रदर्शन करता है, और अंत में कुछ वस्तुओं का परिचय देता है और नैनो-प्रौद्योगिकी की तकनीकी शब्दावली का उपयोग करके उन्हें समझाता है, ताकि कलाकार की पर्यावरणीय चिंताओं से जुड़कर आप शांति महसूस कर लें I

मैं दक्षिण भारत में चल रही एक बिएनाले में प्रदर्शित एक कलाकार का काम देख रहा था, जहाँ कलाकार ने गैलरी की दीवारों के पास कुछ सूखी टहनियाँ रखी थीं और उसका शीर्षक दिया था—'बॉम्बे डक'। अब चूँकि हम सभी जानते हैं कि बॉम्बे डक एक खास तरह की मछली है। इसलिए हम वहां मछली तलाशते हैं। लेकिन हमें वहां कोई मछली दिखाई नहीं देती।

फिर हम पढ़ते हैं कि यहाँ कलाकार ने सिलिका, ग्लास-ब्लोइंग और अन्य ऐसे रूपों का इस्तेमाल किया है, जहाँ कलाकार की साँस पृथ्वी के तत्वों को स्पर्श करती है।

हे भगवान! यानी कुछ भी ?

"फिर मैं उन सूखी टहनियों पर कांच से बनी चीजों को बेतहाशा ढूंढने लगता हूँ और तब मुझे उन पर कुछ पिघला हुआ पदार्थ लटका हुआ मिलता है ।" यह ज़रूर मुंबई की कोलीवाड़ियों में सुखाने के लिए टँगी मछलियाँ होंगी। मुझे लगता है कि पराग टंडेल ने इससे कहीं बेहतर काम किया है।

हे प्रभु ! मुर्खता की भी कहीं कोई सीमा तो होनी चहिये.....

सम्पर्क: बी 3 मुजीब बाग, जामिया नगर, जामिया मिलिया इस्लामिया,
नई दिल्ली -110025
मो. 8527744314

बदलते भारत की सांस्कृतिक आत्मा का प्रतिबिम्ब: 64वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी

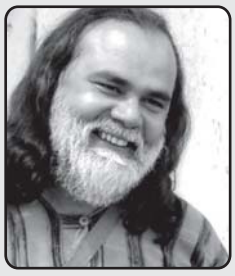

कनु पटेल

गुजरात की कलाभूमि विसनगर में 1966 में जन्मे कनु पटेल (कनैयालाल फकीरचंद पटेल) के व्यक्तित्व की गिनती एक संवेदनशील समकालीन कलाकार के रूप में होती है। वे बचपन में ही चित्रकला, भवाई (गुजरात का लोक नाट्य) और संगीत से जुड़े गए थे। उनके पिता भवाई के कलाकार थे। कनु पटेल ने कला के दो क्षेत्रों में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई है। एक का रास्ता चित्रों के रंगों से होकर गुजरता है, तो दूसरे का रास्ता अभिनय के रंगों से होकर गुजरता है। लज्जा कम्यूनिकेशन नामक अपना आर्ट स्टूडियो चलाने के साथ-साथ, वे सी.वी.एम. कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट्स, वल्लभ विद्यानगर (आनंद,गुजरात) में मानद निदेशक के रूप में सेवाएँ दे रहें हैं। साथ ही आनर्त कला संघ और लज्जा रंगमंच जैसे संगठनों में अध्यक्ष के रूप में कला के विकास के लिए लगातार काम कर रहे हैं।...

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में कला केवल सौंदर्यबोध का साधन नहीं रही; वह समाज की अंत:चेतना, सामूहिक स्मृति और वैचारिक प्रतिरोध की अभिव्यक्ति भी रही है। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए ललित कला अकादमी द्वारा आयोजित 64वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी समकालीन भारत के जटिल और बहुस्तरीय परिदृश्य का एक गंभीर और विचारोत्तेजक दस्तावेज बनकर सामने आई।

यह प्रदर्शनी केवल कलाकृतियों का संकलन नहीं थी; यह बदलते भारत के सामाजिक तनावों, सांस्कृतिक संक्रमणों, आर्थिक असमानताओं, पर्यावरणीय संकटों और पहचान की बहसों का एक सघन दृश्य-पाठ (visual text) थी। इसमें प्रस्तुत कृतियाँ दर्शक को केवल देखने के लिए नहीं, बल्कि सोचने, असहज होने और आत्ममंथन करने के लिए आमंत्रित करती हैं।

ललित कला अकादमी की राष्ट्रीय प्रदर्शनी दशकों से भारतीय दृश्य कला की दिशा और प्रवृत्तियों को चिह्नित करती रही है। 64वीं प्रदर्शनी इस ऐतिहासिक क्रम की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, क्योंकि यह ऐसे समय में आयोजित हुई जब भारत तीव्र सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन, डिजिटल क्रांति, वैश्विक राजनीतिक तनाव और सांस्कृतिक पुनर्संरचना के दौर से गुजर रहा है।

यह प्रदर्शनी इस प्रश्न को केंद्र में रखती प्रतीत होती है—क्या कला केवल परिवर्तन का प्रतिबिंब है, या वह परिवर्तन की सक्रिय सहभागी भी है? प्रस्तुत कृतियाँ संकेत देती हैं कि कला आज केवल साक्षी नहीं, बल्कि संवाद और प्रतिरोध का माध्यम भी है।

बदलते भारत का दृश्य-मानचित्र

महानगरों का विस्तार, स्मार्ट सिटी परियोजनाएँ, मेट्रो नेटवर्क और कंक्रीट के जंगल—इन सबके बीच मनुष्य की व्यक्तिगत पहचान और संवेदना का प्रश्न अधिक तीखा होकर उभरता है। कई कलाकारों ने टूटे हुए घरों, आधे निर्मित पुलों, भीड़ में खोए चेहरों और ऊँची इमारतों की छाया में सिकुड़ती मानवीय आकृतियों के माध्यम से यह दिखाया कि विकास की चमक के पीछे एक गहरा अस्तित्ववादी संकट भी है।

इन कृतियों में रंगों का प्रयोग भी प्रतीकात्मक था—धूसर, मटमैले और धात्विक रंग आधुनिक जीवन की निस्संगता को रेखांकित करते हैं। यहाँ कला एक सौंदर्यपरक वस्तु नहीं, बल्कि सामाजिक आलोचना का उपकरण बन जाती है।

ग्रामीण भारत से शहरों की ओर पलायन, असंगठित श्रमिकों की अस्थिरता और सामाजिक सुरक्षा की कमी जैसे मुद्दे कई कलाकृतियों में केंद्रीय रहे। कलाकारों ने श्रमिकों की थकी हुई देह, अस्थायी झोपड़पट्टियों और असुरक्षित जीवन स्थितियों को मार्मिक यथार्थवाद के साथ चित्रित किया।

कुछ इंस्टॉलेशन में वास्तविक वस्तुओं का उपयोग कर श्रम की अदृश्य दुनिया को दृश्य रूप दिया गया। यह प्रस्तुति दर्शकों को उस वर्ग की ओर देखने के लिए बाध्य करती है, जो विकास की नींव तो रखता है, पर स्वयं हाशिए पर रहता है।

ललित कला अकादमी द्वारा आयोजित यह

वार्षिक मंच समकालीन भारतीय कला की समृद्धि, गहराई और विविधता का सशक्त प्रमाण है। इस वर्ष देशभर से प्राप्त प्रविष्टियों में से 283 कलाकृतियों का चयन किया गया है, जिन्हें सावधानीपूर्वक संयोजित कर इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि दर्शक भारतीय कला की विविध अभिव्यक्तियों-व्यक्तिगत से सामाजिक, अमूर्त से कथात्मक, परंपरागत से प्रयोगधर्मी-की व्यापक दृश्य यात्रा कर सकें। यह प्रदर्शनी केवल कलात्मक उत्कृष्टता का प्रदर्शन नहीं, बल्कि हमारे समय की जटिलताओं, अंतर्विरोधों और निरंतरताओं का जीवंत प्रतिबिंब भी है। विविध माध्यमों और विषयों को छह क्यूरेटोरियल खंडों—'अनुष्ठान एवं आध्यात्म', 'मिथक और स्मृतियाँ', 'ग्रामीण-शहरी परिदृश्य', 'हानि और विस्थापन', 'अतियथार्थवाद' तथा 'सामग्री और स्पर्श'—में सुविचारित ढंग से संयोजित किया गया है, जो दर्शकों को अलग-अलग दृश्य संवादों से रूबरू कराते हैं। हमें आशा है कि यह प्रदर्शनी केवल सौंदर्यबोध का अनुभव ही नहीं, बल्कि समकालीन भारत की धड़कनों को उसके कलाकारों की दृष्टि से समझने और आत्ममंथन करने का अवसर भी प्रदान करेगी।

संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन कार्यरत ललित कला अकादमी द्वारा प्रस्तुत 64वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी देश की सृजनात्मक उत्कृष्टता और सांस्कृतिक बहुलता का सशक्त प्रतीक है। 1955 से प्रारंभ हुई यह प्रदर्शनी समय के साथ निरंतर विकसित होती रही है और प्रत्येक दशक में बदलती कला प्रवृत्तियों के अनुरूप स्वयं को रूपांतरित करती आई है। यह मंच उभरते तथा स्थापित—दोनों प्रकार के कलाकारों को समान अवसर प्रदान करते हुए कलात्मक गुणवत्ता, पारदर्शिता और समावेशिता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को पुनर्स्थापित करता है।

इस वर्ष प्राप्त व्यापक प्रविष्टियों में से स्वतंत्र जूरी द्वारा चयनित कृतियाँ समकालीन भारतीय कला के विविध विषयों, माध्यमों और दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करती हैं। क्षेत्रीय आयोजन, भ्रमणशील प्रदर्शनियाँ, आमंत्रित कलाकारों की सहभागिता और पुरस्कार प्रोत्साहन जैसी पहलों ने इस प्रदर्शनी को एक जीवंत सांस्कृतिक आंदोलन का स्वरूप दिया है। जूरी, क्यूरेटर, अकादमी सदस्यों और समर्पित कर्मचारियों के प्रयासों से साकार यह आयोजन देशभर में कला-संवाद को प्रोत्साहित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। "प्रदर्शनी को व्यापक क्यूरेटोरियल दृष्टि के अंतर्गत छह विशिष्ट चरणों में संयोजित किया गया है, जो समकालीन भारतीय कला की विविध संवेदनाओं और वैचारिक आयामों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करते हैं।"

1. अनुष्ठान एवं आध्यात्म

भक्ति और साधना के रूप में कला

यह खंड सौंदर्यात्मक रूप और आध्यात्मिक चिंतन के अंतर्संबंधों की पड़ताल करता है। प्रतीकों, रूपकों और ध्यानमय प्रक्रियाओं के माध्यम से प्रस्तुत कृतियाँ धार्मिक आचरणों, पवित्र भू-दृश्यों और आध्यात्मिक अनुभूतियों से कलाकारों के संवाद को अभिव्यक्त करती हैं। चाहे वे जीवित परंपराओं से उपजी हों या अंतर्मन में रची-बसी आस्थाओं से, ये कृतियाँ कला को साधना, अनुष्ठान और आत्मोर्ध्वगमन के माध्यम तथा माध्यमिका दोनों के रूप में स्थापित करती हैं।

2. मिथक और स्मृतियाँ

अतीत का पुनर्निर्माण, आदिरूपों का पुनर्पाठ

इस खंड के कलाकार मिथकीय संरचनाओं, पूर्वज स्मृतियों और कथात्मक परंपराओं से प्रेरणा लेते हुए उन कहानियों को नए संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं, जो सांस्कृतिक पहचान और व्यक्तिगत चेतना को आकार देती हैं। ये कृतियाँ सामूहिक मिथक और निजी स्मरण के बीच की तरल सीमाओं को रेखांकित करती हैं तथा यह प्रश्न उठाती हैं कि इतिहास, लोककथा और स्मृति किस प्रकार वर्तमान में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। यहाँ मिथक केवल चित्रित नहीं होता, बल्कि पुनर्जीवित, पुनर्व्याख्यायित और कभी-कभी चुनौती भी दी जाती है।

3. ग्रामीण–शहरी परिदृश्य

भू-दृश्यों के पार दृश्य संवाद

यह क्यूरेटोरियल खंड भारत की विविध और गतिशील भौगोलिक एवं सामाजिक संरचनाओं—कृषि प्रधान अंचलों से लेकर विस्तृत शहरी फैलाव तक—के प्रति कलात्मक प्रतिक्रियाओं को सामने लाता है। कृतियाँ जीवन-यथार्थ, संक्रमणशील स्थानों और बदलते सामाजिक-आर्थिक संदर्भों, प्रवासन प्रवृत्तियों तथा पारिस्थितिक परिवर्तनों पर विचार करती हैं। सामूहिक रूप से ये रचनाएँ सह-अस्तित्व, विघटन और ग्रामीण जड़ों

तथा शहरी आकांक्षाओं के बीच की निरंतर गतिशीलता का सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करती हैं।

4. हानि और विस्थापन

अनुपस्थिति और अस्थिरता की अभिव्यक्ति

यह खंड विछिन्नता, लोप और अस्थिरता के अनुभवों पर केंद्रित है। रूपक, विखंडन और अमूर्तन के माध्यम से चयनित कृतियाँ उन परिस्थितियों को संबोधित करती हैं, जिनमें विस्थापन उत्पन्न होता है—चाहे वह संघर्ष, पर्यावरणीय संकट, व्यक्तिगत शोक या सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन के कारण हो। ये कलाकृतियाँ शोक और प्रतिरोध—दोनों के स्थल बन जाती हैं, और दर्शकों को ऐसे संसार पर विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं जो टूटन और अस्थायित्व से चिह्नित है।

5. अतियथार्थवाद

विचलित यथार्थ और अवचेतन की दुनिया

इस खंड में समकालीन कलाकारों द्वारा अतियथार्थ को एक विधि और दृष्टिकोण के रूप में अपनाने की प्रवृत्ति को रेखांकित किया गया है। स्वप्न-चित्रों, अवचेतन कथाओं और प्रतीकात्मक विकृतियों के माध्यम से ये कृतियाँ स्थिर यथार्थ की धारणाओं को चुनौती देती हैं। वे विखंडन, द्वंद्व और आंतरिक बहुलताओं को अभिव्यक्त करती हुई, कल्पनात्मक और अतार्किक तत्वों के सहारे दैनिक जीवन की सतह के नीचे छिपे सत्य को उद्घाटित करती हैं।

6. सामग्री और स्पर्श

माध्यम, सतह और सृजन की राजनीति

यह खंड भौतिक अन्वेषण और स्पर्शानुभूति पर केंद्रित है, जहाँ प्रक्रिया, बनावट और रूप की भौतिकता को प्रमुखता दी गई है। इस क्षेत्र के कलाकार प्रयोगधर्मी सतहों, असामान्य तकनीकों और देहधर्मी रेखांकन के माध्यम से माध्यम की सीमाओं को चुनौती देते हैं। यहाँ स्पर्श केवल औपचारिक गुण नहीं, बल्कि अर्थ-निर्माण का सशक्त माध्यम बन जाता है- जो दर्शक को केवल दृश्य अनुभव तक सीमित न रखकर सृजन की प्रक्रिया से भी जोड़ता है।

पर्यावरणीय संकट और पारिस्थितिक चेतना

64वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी का एक अत्यंत गंभीर पक्ष पर्यावरणीय चेतना का उभार था। जलवायु परिवर्तन, सूखती नदियाँ, पिघलते हिमखंड और जैव-विविधता का संकट—इन सबको कलाकारों ने प्रतीकात्मक तथा वैचारिक दोनों स्तरों पर प्रस्तुत किया।

कुछ कृतियों में वृक्षों की जड़ों को मानव नसों की तरह चित्रित किया गया, मानो प्रकृति और मनुष्य एक ही जैविक तंत्र के अंग हों। अन्य कार्यों में पुनर्चक्रित प्लास्टिक और औद्योगिक कचरे का उपयोग कर यह संकेत दिया गया कि आधुनिक उपभोक्तावाद स्वयं अपने विनाश के बीज बो रहा है। यहाँ कला चेतावनी भी है और आत्मालोचना भी।

स्त्री-विमर्श, देह और अस्मिता

समकालीन भारतीय कला में स्त्री का स्वर अब केवल प्रतिनिधित्व का विषय नहीं, बल्कि वैचारिक हस्तक्षेप का माध्यम है। 64वीं प्रदर्शनी में महिला कलाकारों की भागीदारी उल्लेखनीय रही।

चित्रों और मूर्तियों में स्त्री-देह को वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि अनुभव और स्मृति के स्थल के रूप में प्रस्तुत किया गया। घरेलू श्रम, मातृत्व, हिंसा, आत्मनिर्भरता और लैंगिक असमानता जैसे विषयों को संवेदनशील और गंभीर दृष्टि से उभारा गया।

कुछ कृतियों में पौराणिक स्त्री पात्रों को समकालीन संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया गया—मानो इतिहास और वर्तमान का संवाद हो रहा हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में स्त्री की भूमिका को लेकर विमर्श अब अधिक जटिल और आत्मचेतस हो चुका है।

परंपरा का पुनर्पाठ और सांस्कृतिक स्मृति

भारतीय कला की जड़ें लोक और जनजातीय परंपराओं में गहराई से समाई हैं। 64वीं प्रदर्शनी में कई कलाकारों ने इन परंपराओं का पुनर्पाठ किया।

लोक-आलेखन, मिथकीय प्रतीकों और पारंपरिक रंग-संयोजन को आधुनिक संरचनाओं के साथ संयोजित कर एक नया दृश्य-व्याकरण रचा गया। यह प्रयोग बताता है कि परंपरा जड़ नहीं है; वह निरंतर संवाद और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में है। सांस्कृतिक स्मृति यहाँ स्थिर अतीत नहीं, बल्कि सक्रिय वर्तमान बन जाती है।

तकनीक, डिजिटलता और कला का भविष्य

डिजिटल युग ने कला की प्रकृति को गहराई से प्रभावित किया है। 64वीं राष्ट्रीय प्रदर्शनी में वीडियो आर्ट, डिजिटल प्रिंट, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित कृतियाँ और इंटरैक्टिव इंस्टॉलेशन प्रमुख रूप से उपस्थित थे।

इन माध्यमों ने यह प्रश्न उठाया कि जब छवियाँ स्क्रीन पर निर्मित और वितरित होती हैं, तब कला का 'मूल' स्वरूप क्या रह जाता है? क्या डिजिटल पुनरुत्पादन कला की प्रामाणिकता को चुनौती देता है, या उसे नए आयाम प्रदान करता है?

कलाकारों ने इस दुविधा को रचनात्मक ऊर्जा में रूपांतरित किया। दर्शक अब केवल निष्क्रिय पर्यवेक्षक नहीं, बल्कि सहभागिता के माध्यम से कला-निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा बनता है।

राजनीतिक-सामाजिक अंत:धाराएँ

64वीं प्रदर्शनी की गंभीरता का एक प्रमुख आयाम उसका राजनीतिक-सामाजिक बोध है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, लोकतांत्रिक मूल्यों, नागरिकता और पहचान जैसे प्रश्न कई कृतियों में अंतर्निहित थे।

रूपकों और प्रतीकों के माध्यम से कलाकारों ने सत्ता, प्रतिरोध और असहमति के संबंधों को उभारा। कुछ चित्रों में टूटे हुए नक्शे, बिखरे अक्षर और धुँधले चेहरे लोकतांत्रिक संवाद की जटिलताओं का संकेत देते हैं।

यह कला प्रत्यक्ष नारेबाजी से बचते हुए भी तीखा प्रश्न उठाती है—क्या विकास और प्रगति की परिभाषा में मानवीय गरिमा और न्याय का स्थान सुरक्षित है?

युवा ऊर्जा और क्षेत्रीय विविधता

देश के विभिन्न राज्यों—पूर्वोत्तर, दक्षिण, मध्य भारत और हिमालयी क्षेत्रों—से आए कलाकारों ने क्षेत्रीय अनुभवों को राष्ट्रीय मंच पर प्रस्तुत किया। इससे भारतीयता की बहुलता और विविधता स्पष्ट हुई।

युवा कलाकारों की कृतियों में व्यक्तिगत स्मृतियों और सामूहिक इतिहास का संगम दिखाई दिया। वे पहचान, भाषा, जाति और डिजिटल जीवन के अंतर्विरोधों को साहसपूर्वक सामने लाते हैं।

यह प्रदर्शनी इस तथ्य का प्रमाण है कि भारतीय कला अब महानगर-केंद्रित नहीं रही; वह देश के दूरस्थ अंचलों की संवेदनाओं को भी अभिव्यक्ति देती है।

दर्शक, आलोचना और संवाद की संस्कृति

64वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी केवल एक आयोजन नहीं, बल्कि विचार-विमर्श का मंच भी थी। कला समीक्षकों, विद्यार्थियों और सामान्य दर्शकों के बीच संवाद की प्रक्रिया ने इसे जीवंत बनाया।

कला यहाँ एकतरफा प्रस्तुति नहीं, बल्कि बहस और विमर्श का क्षेत्र बन जाती है। दर्शक जब किसी कृति के सामने ठहरता है, तो वह अपने समय, समाज और स्वयं के प्रति प्रश्नों से घिर जाता है—यही इस प्रदर्शनी की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

ललित कला अकादमी द्वारा आयोजित 64वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी समकालीन भारत के परिवर्तनशील युग का एक गंभीर सांस्कृतिक दस्तावेज है। यह प्रदर्शनी दिखाती है कि कला केवल सौंदर्य का उत्सव नहीं, बल्कि आत्ममंथन का माध्यम भी है।

यहाँ प्रस्तुत कृतियाँ हमें याद दिलाती हैं कि राष्ट्र केवल आर्थिक प्रगति से नहीं बनता; उसकी आत्मा संस्कृति, संवेदना और रचनात्मकता में बसती है।64वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी इस सत्य को पुनर्स्थापित करती है कि भारतीय कला अपनी जड़ों से जुड़ी रहते हुए भी निरंतर नए प्रश्नों का सामना कर रही है। वह परिवर्तन की साक्षी भी है और सहभागी भी—एक ऐसी सृजनात्मक शक्ति, जो बदलते भारत के परिदृश्य को न केवल चित्रित करती है, बल्कि उसे समझने और दिशा देने का साहस भी रखती है।

उपाध्यक्ष डॉ. नंदलाल ठाकुर कहते हैं कि—64वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी के अवसर पर आप सभी को शुभकामनाएँ देते हुए मुझे अत्यंत संतोष और गर्व का अनुभव हो रहा है। यह प्रतिष्ठित आयोजन ललित कला अकादमी की उस निरंतर प्रतिबद्धता का प्रतीक है, जिसके माध्यम से हम देश की सृजनात्मक प्रतिभाओं को प्रोत्साहन प्रदान करते हुए समकालीन भारतीय कला की विविधता, गहराई और उत्कृष्टता का सम्मान करते हैं।

इस वर्ष चयनित कृतियाँ भारत के बदलते सांस्कृतिक परिदृश्य—उसकी परंपराओं, जिज्ञासाओं और नवाचारों—का सशक्त प्रतिबिंब प्रस्तुत करती हैं। उभरते तथा मध्य-करियर कलाकारों को समान अवसर प्रदान करना अकादमी की समावेशी और दूरदर्शी सोच का प्रमाण है। मैं आमंत्रित क्यूरेटर, जूरी सदस्यों और अकादमी की समर्पित टीम के प्रयासों की सराहना करता हूँ तथा सभी चयनित कलाकारों को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ देता हूँ।

सम्पर्क: लज्जा कम्युनिकेशन, दूसरी मंजिल सुपरमार्केट, डॉ. राजेंद्र मार्ग, नाना बाजार रोड, वल्लभ विद्यानगर, जिला आनंद, गुजरात, मो. 9825041289

अनुरोध

सभी लेखकों एवं पुस्तक समीक्षकों से निवेदन है कि 'कला समय' के लिए भेजे जाने वाले आलेख अधिकतम 3 पृष्ठ तथा पुस्तक समीक्षा अधिकतम 2 पृष्ठ की ही मान्य होगी।

-सम्पादक

जय कृष्ण अग्रवाल के लिए कवि नरेश सक्सेना की कलम

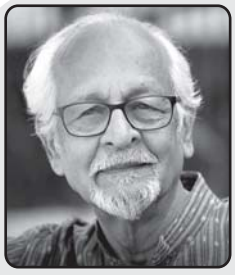

प्रो. जयकृष्ण अग्रवाल

प्रो. जयकृष्ण अग्रवाल भारतीय कला जगत की पहली पंक्ति के प्रतिष्ठित और वरिष्ठ कलाकार हैं। उनका सृजन संसार प्रिंट मेकिंग, चित्रकला और छायांकन विधा से समृद्ध रहा है। ग्राफिक आर्ट और प्रिंटमेकिंग के क्षेत्र में निरंतर प्रयोग करते हुए उन्होंने विशिष्ट पहचान स्थापित की है। उनकी कला में सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार बेहद स्पष्ट और चाक्षुष भाषा के नए प्रतिमान लेकर आते हैं।अनुभूत जीवन से जुड़ा मानवीय संवेदना का संश्लिष्ट तारल्य उनकी कला का वैशिष्ट्य है। उनकी कृतियों में समकालीन जीवन की जटिलताओं पर गहरी संवेदना और प्रतिप्रश्न एक साथ देखें जा सकते हैं। अग्रवाल सर की रचनात्मक-भाषा, रूप-छवि को छायां प्रकाश की सशक्त रेखाओं में बांट कर सघन बनावट देती हैं। टेक्स्चर और रंग-संयोजन उनकी कृतियों को उत्कृष्टता की ओर ले जाता है।यह सब उनकी कला के मोहक संतुलन पर आदृत है। एच्चिंग, लिथोग्राफी, वुडकट तथा स्क्रीन प्रिंट जैसी तकनीकों में उनका विशेष कौशल रहा है। वे प्रिंटमेकिंग को केवल तकनीकी प्रक्रिया के रूप में नहीं लेते, बल्कि एक गंभीर वैचारिकी के रूप में विकसित करते हैं।

दीर्घ काल तक कला-विद्यार्थियों के बीच रहने के कारण जय कृष्ण सर एक कलाकार के साथ-साथ प्रेरक शिक्षक और मार्गदर्शक भी रहे हैं। कला जगत में उनका विशेष सम्मान है। अनेक युवा कलाकारों और प्रिंटमेकरों ने उनके निर्देशन में प्रशिक्षण प्राप्त किया है। उनकी कला यात्राओं, एकल व सामूहिक प्रदर्शनियों तथा कला-शिविरों में सक्रिय सहभागिता ने उन्हें भारतीय प्रिंटमेकिंग परंपरा के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों में स्थान दिलाया है। भारत के महत्वपूर्ण कवियों, लेखकों और अन्य विधाओं के रचनाधर्मियों से आपका निरंतर सान्निध्य,साथ और संवाद रहा है जिनमें साहित्यकार यशपाल, अमृतलाल नागर, कुंवर नारायण,नरेश सक्सेना जैसे अनेक नाम है। भारतीय कला को समकालीन चेतना से जोड़ने और वैचारिक गहराई प्रदान करने वाले जय कृष्ण सर का योगदान कला-सृजन और कला-शिक्षा—दोनों क्षेत्रों में समान रूप से उल्लेखनीय है। राज्य ललित कला अकादमी, उत्तर प्रदेश द्वारा जय कृष्ण अग्रवाल सर को अधिसदस्यता सम्मान से समादृत करने के अवसर पर वरिष्ठ कवि नरेश सक्सेना द्वारा प्रकट किए गये मर्मस्पर्शी उद्गार को यहां प्रकाशित किया जा रहा है। साथ ही जय कृष्ण सर द्वारा एक साक्षात्कार में कहीं गई महत्वपूर्ण बात का अंश भी प्रकाशित किया जा रहा है।

- संपादक

एक नुकीले पत्थर की नोक में शायद उसका दिमाग है,
जिसमें एक विचार है
लाल रंग में दहकता हुआ,
स्पेस में लपकते हुए कुछ शहतीर हैं,
या दो भुतहे पत्थर हैं
जैसे काला लबादा ओढ़े दो लोग जिनके सिर गायब हैं -
पीछे दीवार पर
सिर की जगह पर
सूर्य या चन्द्रमा का एक पूर्ण वृत्त मय एक सरल रेखा को
याद दिलाते हुए
कि इन पत्थरों को तराशा जाना अभी शेष है।

जय कृष्ण के इन चित्रों में मूर्तन और अमूर्तन का एक स्तब्ध कर देने वाला अद्वैत है। स्पेस, अनन्त और ऊर्जा जैसे आदिम विषयों की अभिव्यक्ति की जटिलताओं से जूझते हुए जय कृष्ण अपने समय यानी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के समय का संस्पर्श बहुत साफ, तेज और तराशे हुए आकारों, रेखाओं और रंगों से देते हैं।

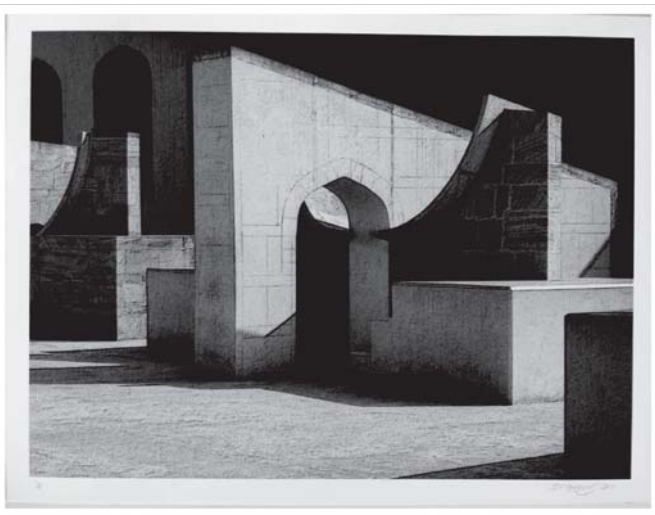

डीजिटल प्रिंट : प्रो. जयकृष्ण अग्रवाल

सन 1941 में जन्मे जय कृष्ण ने शिक्षा की शुरुआत आर्किटेक्चर से की थी, लेकिन जल्दी ही उन्हें चित्रकला के सम्मोहन ने अपनी ओर खींच लिया। अंततः छापा चित्रकला को उन्होंने अपनी विशेषज्ञता के लिये चुना जो उस समय तक भारत में अपनी शैशवावस्था में ही थी। उत्तर प्रदेश में छापा चित्रकला की पहली वर्कशॉप की स्थापना और इस विषय के पहले व्याख्याता होने का श्रेय जय कृष्ण को है। लखनऊ कला एवं शिल्प महाविद्यालय में वर्ष 1963 में प्रवक्ता के पद से शुरुआत करके वे वर्ष 2001 में प्राचार्य के पद से सेवा मुक्त हुए। पिछले चालीस वर्षों से इस विषय की प्रविधियों, औज़ारों और मशीनों से जूझते और उन्हें सरल और सहज बनाते हुए जय ने न सिर्फ उसकी तकनीक को सिद्ध किया बल्कि उससे मुक्त भी हुए। इस हद तक कि अब वह सिर्फ स्टेंसिल पर काम करना पसंद करते हैं जिसमें आकारों और रंगों से खेलना बिना तकनीकी हस्तक्षेप के सम्भव है। इस दौरान वर्ष 1972-73 में ब्रिटिश काउंसिल की स्कालरशिप पर लंदन विश्वविद्यालय के स्लेड स्कूल ऑफ फाइन आर्ट्स में प्रशिक्षण प्राप्त किया। वर्ष 1977 में संयुक्त राज्य अमेरिका के निमंत्रण पर वहां के राज्यों एवं सेन डिएगो विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर कैलिफोर्निया में विशेषज्ञों, कलामर्मज्ञों एवं कलाकारों के साथ गहन विचार विनिमय एवं अनुभव की साझेदारी की। अन्य पुरस्कारों सहित जय कृष्ण को वर्ष 1974 में अंतर्राष्ट्रीय एवं वर्ष 1976 में राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

भारतीय कला का प्रतिनिधित्व करते हुए जय कृष्ण के चित्र एकल एवं समूह प्रदर्शनियों में भारत के अतिरिक्त लंदन, यूगोस्लाविया, नार्वे, इटली, जापान, जर्मनी, पोलैंड, अल्जीरिया, लिस्बन, ट्यूनीस, मेड्रिड, यू.एस.ए, बांग्लादेश एवं रूस में प्रदर्शित एवं प्रशंसित होते रहे हैं। अनेक सामाजिक एवं कला संस्थाओं के साथ सक्रिय साझेदारी द्वारा जय कृष्ण ने अनगिनत सेमिनार, कलाशिविर, कार्यशालाएं आदि का आयोजन किया है।

एक प्रकार से उनकी भूमिका उत्तर प्रदेश में छापा चित्रकला के संस्थापक की है। मैं जय कृष्ण को पिछले लगभग 40 वर्ष से जानता हूं जब हम कुछ कवि और कलाकार देर रात तक कॉफी हाउस और उसके बाद लखनऊ की सड़कों पर आवारागर्दी करते थे। जय को मैंने हमेशा एक अव्यक्त बेचैनी और ऊर्जा से भरा पाया है जिसकी अभिव्यक्ति के लिये पूरे पैशन के साथ कविता, थियेटर, संगीत, फोटोग्राफी आदि के इर्दगिर्द भटकते रहे।

भाषा से बहुत निकट का रिश्ता होने के बावजूद जय की जिद्दोजहद भाषा से मुक्त होने की रही है। इस हद तक कि वह अपने चित्रों के शीर्षक तक शब्दों में नहीं देते। मेरे मन में हमेशा यह सवाल उठता रहा है कि जैसे शब्द, शब्दों का शीर्षक हो सकते हैं, वैसे ही क्या चित्र चित्रों के शीर्षक नहीं हो सकते?

– नरेश सक्सेना

एक साक्षात्कार में जय कृष्ण अग्रवाल द्वारा कहा गया अंश

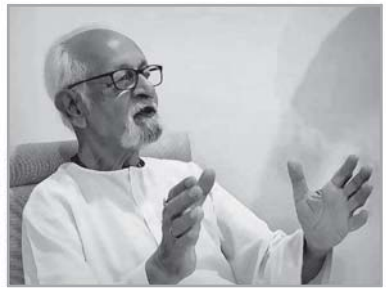

.....मुझे बिहार के मधुबनी जाने का मौका मिला। वहाँ मैं एक ऐसी कलाकार से मिला, जो ग्यारह बार जापान जा चुकी हैं और विश्व के अनेक शहरों में वे गई हैं। प्रतिष्ठित हैं, पद्मश्री से अलंकृत हैं। काफ़ी मान-सम्मान मिल चुका है, पर अभी भी वे अपने पुराने तरीके से ही रहती हैं। मतलब, उनके घर में न एयर कंडीशनर है, न कुर्सियाँ हैं। एक तख्त था, जिस पर वे स्वयं भी बैठी थीं और मैं भी बैठा था। वैसा ही पुराना खपरैल वाला घर था। मैंने उनसे पहला ही सवाल पूछा — आप तो अफोर्ड कर सकती हैं बेहतर ज़िंदगी। आपके घर में सुख-सुविधाएँ हो सकती हैं। आपने उन्हें क्यों नहीं स्वीकार किया? मैं तो समझता हूँ कि आपके ट्रैक रिकॉर्ड से आर्थिक संकट की कोई स्थिति नहीं दिखती।

उन्होंने कहा — "ऐसा कुछ नहीं है। पर मैं जानती हूँ कि मेरी कला जमीन से जुड़ी हुई है, इस जीवन-शैली से जुड़ी हुई है। जिस दिन यह जीवन-शैली बदल जाएगी, मेरी कला भी बदल जाएगी। और मेरी कला ज्यादा महत्वपूर्ण है, बनिस्पत एयर कंडीशनर और इन सब चीज़ों के।" मुझे उनकी बात बहुत समझ में आई। मुझे लगा कि भारतवर्ष में इतनी पुरानी हमारी संस्कृति रही है — पाँच हजार वर्ष की कही जाती है, और दो हजार वर्ष तो हमारे सामने का इतिहास है। एक से एक अद्भुत कलाकृतियाँ और परंपराएँ रही हैं। पर हमने उनका अनुसरण न करके सीधे वेस्ट या ईस्ट की ओर रुख कर लिया। हमें अपनी जमीन से जुड़ना चाहिए था। अपनी जमीन से चीज़ें निकालनी चाहिए थीं। इसकी ज़रूरत थी, जो नहीं हुआ।

जय कृष्ण अग्रवाल के
एक प्रिंट को देखते हुए

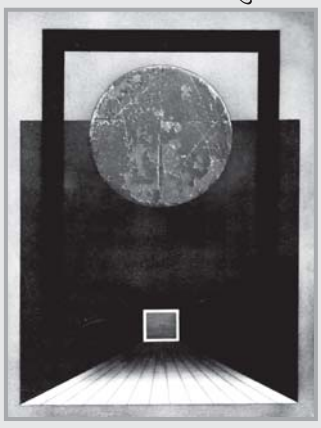

खरोंचों से सना
लाल गोला
आता है
अस्तित्व और आदमी के बीच
धरती पर लिखी पहली ध्वनि--
अग्निमीळे की तरह।
और धँस जाता है
आँख की कोर में।

दूर जाती लकीरों के ठीक ऊपर
ऊर्ध्व टंगा
तप्त लोह वृत्त
जैसे टंगी रहती है
हृदय की खोह में
कसमसाती आश्वस्तियां।

धरती पर
औंधे गिरे अँधेरे में
विलीन होती
स्याह चौंखट
ढूँढती है ज़मीन
ठीक उसी पल! होता है
नीली खिड़की का जादू - कि
काला अवकाश
नीले रंग की ज़द में होता है!!

-कला समय

कला आयोजन

'भारतीय कला' पर राजस्थान इंटरनेशनल सेंटर में विहंगम कला प्रदर्शनी

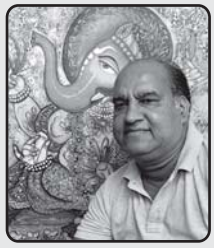

विनय त्रिवेदी

"भविष्य को बताने का सबसे बेहतर तरीका है, उसे बना डालना।" - अब्राहम लिंकन

पिंक सिटी जयपुर में द टाइम्स ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित "भारतीय कला" शीर्षक प्रदर्शनी 13 फरवरी से 22 फरवरी 2026 तक राजस्थान इंटरनेशनल सेंटर (RIC), जयपुर में आयोजित की गई। यह महत्वपूर्ण आयोजन भारतीय समकालीन कला की विविधता और उसकी सृजनात्मक ऊर्जा को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। इस प्रदर्शनी की क्यूरेटर प्रतिष्ठित कला समीक्षक डॉ. अल्का पांडे हैं। उन्होंने भारतीय समकालीन कला और कला-जगत में हो रहे परिवर्तनों को दृष्टिगत रखते हुए चयनित कलाकृतियों के माध्यम से इस आयोजन को एक विशिष्ट आयाम प्रदान किया है। राजस्थान इंटरनेशनल सेंटर, जयपुर, जीवंत कला–संस्कृति क संवाहक रहा है। इसकी दीर्घाएँ कला और परंपरा के स्वर्णिम इतिहास की साक्षी हैं। यहाँ का सृजनशील वातावरण कलाकारों को केवल तकनीकी दक्षता ही नहीं देता, बल्कि उन्हें वैचारिक दृष्टि और सांस्कृतिक संवेदनशीलता भी प्रदान करता है। यह प्रदर्शनी समकालीन भारतीय कला की विविध अभिव्यक्तियों को एक मंच पर संगठित करती है, जहाँ रंग, रूप और विचारों का जीवंत

संवाद दिखाई देता है। कलाकारों की विशिष्ट शैलियाँ उनके मौलिक हस्ताक्षर के रूप में उभरती हैं। उनकी सृजनात्मक ऊर्जा और वैचारिक गहराई दर्शकों को एक समृद्ध कलानुभव प्रदान करती है। प्रदर्शित कलाकृतियाँ हमारी कला-संस्कृति के अनेक आयामों से परिचित कराती हैं और परंपरा तथा आधुनिकता के मध्य सेतु का निर्माण करती हैं। प्रदर्शनी में देश के सुप्रसिद्ध कलाकारों की कृतियाँ प्रदर्शित हैं, जिनमें एम. एफ. हुसैन, जामिनी राय, मंजीत बाबा, अमित अम्बालाल, भूपेन खक्कर, सतीश गुजराल, शक्ति बर्मन, परितोष सेन, श्यामल दत्ता रे, आर. बी. भास्कर, सुनील दास, हिम्मत शाह, जोगेन चौधरी, के. जी. सुब्रमण्यन, टी. वैकुंठम, मनु पारेख, परेश मेहता, लक्ष्मण ऐले, माधवी पारेख, जयश्री बर्मन तथा अन्य प्रमुख कलाकारों की उत्कृष्ट कृतियाँ शामिल हैं।साथ ही राजस्थान के कलाकारों—शैल चौयल, एस. एच. काजी, अंकित पटेल, दिलीप शर्मा, विनोद शर्मा, आकाश चौयल, गंगा सिंह, सचिन कोठारी, अब्बास बाटलीवाला, मनोज टेलर, डॉ. चन्द्रशेखर सेन, कल्याण जोशी और दिलीप डामोर—की कृतियाँ भी विशेष आकर्षण का केंद्र हैं। इस प्रदर्शनी में चित्रकला, मूर्तिकला, मिश्रित माध्यम, जनजातीय एवं लोक कला, वस्त्र कला, फाइबर आर्ट तथा इंस्टॉलेशन जैसी विविध विधाओं को एक ही छत के नीचे प्रस्तुत किया गया है। राजस्थान इंटरनेशनल सेंटर के निदेशक श्री निहालचंद गोयल ने कहा,"राजस्थान इंटरनेशनल सेंटर के लिए यह गर्व की बात है कि 'द आर्ट ऑफ इंडिया 2026' का आयोजन जयपुर में हो रहा है। राजस्थान ने सदैव कला के हर रूप को सम्मान दिया है।"RIC की क्यूरेटर एवं सहायक कार्यक्रम अधिकारी निखत अंसारी के अनुसार,"राजस्थान अंतर्राष्ट्रीय केंद्र, जयपुर वैश्विक स्तर पर संस्कृति, कला और विचारों को प्रोत्साहित करने का मंच है। यह कलाकारों और कला-प्रेमियों को संवाद और सृजन के नए अवसर प्रदान करता है। सच्चा कला-प्रेमी वही है जो नई पीढ़ी को अवसर देता है और उनकी प्रतिभा को उभारने में सहयोग करता है।"कार्यक्रम में कला-प्रेमियों, विद्यार्थियों, शिक्षाविदों और मीडिया प्रतिनिधियों की उत्साहपूर्ण उपस्थिति रही। पैनल चर्चा के दौरान हुए विचार-विमर्श ने भारतीय कला के प्रति समझ और सराहना को और अधिक सुदृढ़ किया।

- विनय त्रिवेदी, कलाकार एवं कला-लेखक, जयपुर ■

मेरी कला यात्रा के पथ-प्रदर्शक : कलाविद् राम जैसवाल

लक्ष्यपाल सिंह राठौड़

लक्ष्यपाल सिंह राजस्थान के सक्रिय समकालीन चित्रकार एवं कला-शिक्षक हैं। वर्तमान में वे कला व्याख्याता के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने एम.ए. ड्रॉइंग एवं पेंटिंग में तथा आर्ट मास्टर डिप्लोमा, लखनऊ से प्राप्त किया है। वे राजस्थान के समकालीन कलाकारों के समूह आकार आर्ट ग्रुप के संस्थापक सदस्य हैं। और पिछले तीन दशकों से राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय रूप से प्रदर्शनों में भाग लेते रहे हैं।इनकी कला में राजस्थान की सांस्कृतिक चेतना, ऐतिहासिक स्मृति और समकालीन अभिव्यक्ति का सशक्त समन्वय दिखाई देता है। उन्हें 2004 में All India Fine Arts & Crafts Society द्वारा राष्ट्रीय एवं राज्य पुरस्कार तथा 2002 में Rajasthan Lalit Kala Academy द्वारा राज्य पुरस्कार प्राप्त हुआ। उनकी एकल तथा सामूहिक प्रदर्शनियाँ देश के अनेक स्थानों पर आयोजित हुई हैं।...

"वास्तव में कला का धर्म सौंदर्य अभिव्यक्ति करना है न कि रुग्ण और भद्दे प्रयोग करना है" इतने सरल और कला के प्रति स्पष्ट विचार थे कलाविद् स्व. राम जैसवाल सर के। वे कहते थे कि कला जब भी सौंदर्य सृजन के उद्देश्य से अवतरित हुई है वह जीवन शून्य अलंकरण मात्र या व्यक्तिगत हस्ताक्षर बनकर रह जाती है जबकि उसमें सौंदर्य के साथ भावनात्मक पक्ष भी उजागर होना आवश्यक है अलंकरण मात्र नहीं साथ ही वे कला क्षेत्र में राजनैतिक घुसपैठ के भी परम विरोधी रहे। **जैसवाल सर का जन्म 5 सितम्बर 1937 में उत्तरप्रदेश के मथुरा जनपद में सादाबाद नामक स्थान पर हुआ इन्होंने डिप्लोमा इन फ़ाईन आर्ट्स गन्मेंन्ट कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स लखनऊ से प्राप्त किया।**

वस्तुतः पाश्चात्य कला में यथार्थवाद को अधिक अपनाया और भारतीय कला आध्यात्मिक रही है और जैसवाल सर के कला कर्म में इन दोनों का संतुलित मिश्रण प्राप्त होता है, आपने आधुनिक कला को अपनाते हुए भारतीय विषय वस्तु व घटनाओं को चित्रित किया।

उनकी कला शैली में दृश्य चित्र, मानवाकृतियाँ, पशु-पक्षी आकृतियाँ व प्रकृति में बिखरे रंगों का बहुत सहजता सरलता और कोमलता के साथ अभिव्यक्त किया है और जो अभिव्यक्ति इससे पूर्ण नहीं हो पाई उसे व्यक्त करने के लिए उन्होंने भाषा, काव्य व कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया, उनके शब्द और कुछ कहने की शैली इस प्रकार होती थी कि एक साधारण मनुष्य के लिए पहेली और कलाकार के लिए कलामर्म को समझने का माध्यम बन जाती थी।

चित्रण के समानान्तर जैसवाल सर के लेखन की यात्रा भी निरन्तर चलती रही कविताओं से आरम्भ लेखन 1961 से 1972 तक कहानियों में उतरा और चार कहानी संग्रह प्रकाशित हुए, 'असुरक्षित', 'उग्रह', 'समय दंश', और 'विषजल', कहानियाँ देश की सभी-प्रतिष्ठित पत्रिकाओं यथा, सारिका, कल्पना, नया-प्रतीक, सम्बोधन, कहानी, नई कहानी, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, आजकल, मधुमती, बिन्दु, इत्यादि में प्रकाशित हुई। कहानियों का क्षेत्र भी मध्यमवर्गीय जीवन की मानसिक - सामाजिक विसंगतियों के साथ गहरी सामाजिक पृष्ठभूमि और मानवीय मूल्यों को दर्शाता है आपके चित्र साहित्य रचनायें काव्य संग्रह समीक्षाएं कलाचर्चा लेख देश की प्रमुख पत्र पत्रिकाओ में प्रकाशित हुए दूसरी ईद, राधा कृष्ण, प्रणय व यात्रा का अन्त उन्मना, सरस्वती, आदि अनादि पिता का व्यक्तिचित्र आदि चित्रों का संयोजन कलात्मक व दर्शनीय है "उन्मना" चित्र नायिका के अलन्कृत चित्रण और वातावरण वाश पद्दति में बना भारतीय कला का एक उत्कृष्ठ उदाहरण व श्रेष्ठ स्थान रखता है। इसमें नायिका के भावनात्मक पक्ष के साथ सौंदर्य का चरम दिखाई देता है रंग योजना, लयात्मक रेखाएं हस्तमुद्राएं और भाव भंगिमाएं देखते ही बनती है। सम्पूर्ण

उनमना: राम जैसवाल जी की कलाकृतियां

चित्र उनकी आत्म अभिव्यक्ति का सुन्दर उदाहरण है। "आदि-अनादि" चित्र शिव पार्वती का आन्तरिक प्रणय बहुत ही अद्भुत दैवत्व प्रभाव के साथ कम रंगों में जिसमे नीले रंग की पारदर्शिता देखते ही बनती है। आषाढ़ का प्रथम दिवस जिसमें चित्र में पक्षियों का चहचहाना व वृक्ष की टहनियों का नायिका से तादम्य स्थापित करना, आषाढ़ के प्रथम दिवस का स्वागत करते प्रतीत होते हैं।

राम जैसवाल जी की कलाकृतियां

"अतीत" शीर्षक से चित्र में नायिका के अन्तर्मन विरह में अपने अतीत के स्मरण में वियोग की मनोदशा को प्रकृति से संवाद करती दिखाई पड़ती है, अतीत के पन्नों का वातावरण में उड़ता दिखाकर यादों के पलटती स्मृतियों को बहुत सूक्ष्मता और सुन्दरता के साथ संयोजित किया है 1 इस आत्मस्पर्शी चित्र में रंग, रेखा और अन्तराल में आपकी श्रेष्ठता और सिध्हस्त कलाकार होने का प्रमाण देती है।

"राधा-कृष्ण" नामक चित्र में आध्यात्मिक प्रणय दर्शनीय है, यह सभी चित्र भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक अलग स्थान प्राप्त करती है। उनका यह कहना कि "कला का धर्म आत्म सौन्दर्य है न कि सौन्दर्य अभिव्यक्ति करना है" सार्थक और सत्य नजर आता है वे जैसा सोचते थे उससे अधिक अपनी कलात्मक रचनाओं में अभिव्यक्त करते थे भारतीय कला संस्थाएं, अकादमियाँ उन्हें वह उचित स्थान नहीं दिला पाई जिस स्थान पर उन्हें होना चाहिए था। यह सभी चित्र मेरे कलाकार मन और कलात्मक जीवन के प्रेरणा बने जिससे मुझे अपनी कृतियों को स्वयं की शैली में अभिव्यक्त करने का अवसर मिला यह कृतियाँ भविष्य में भी मार्गदर्शक के रूप में मेरे समक्ष अनवरत रहेंगी उनका साहित्यिक भाव चित्रों में भी होता है उनके सहज सरल व्यक्तित्व ने मुझे हमेशा प्रभावित किया उनका चले जाना मेरे लिए एक आघात सा है अब लगता है कि उनके बोले गए हर शब्द पर अमल करने का समय है अपने रचना कर्म में उन्हें सम्माहित करना है हम उनसे और अधिक प्राप्त कर सकते थे वे जो रिक्त स्थान छोड़ गए हैं उस रिक्त को उनकी प्रेरणाओं को अपने कार्य का मूल मंत्र बनायेंगे उनके आत्मिक संवादों के भावों को ओर मुखर करेंगे अपनी जलरंग श्रृंखला में स्व. सुभाष कुलहरी, बी.सी. गहलोत, देवेन्द्र खारोल, पवन कुमावत, गिरीश चौरसिया जैसे शिष्यों में वे अपनी परम्परा छोड़ गए। साहित्य के क्षेत्र में आपने विस्तृत कार्य किया जिसमें कला पत्रिका "रचना" का सम्पादन किया हिन्दी साहित्य पत्रिका 'प्रयास' का सम्पादन भी आपके निर्देशन में हुआ आपको 1959 में भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा 1974 मे राजस्थान साहित्य अकादमी से कहानी पुरस्कार व 1990 मे काव्य पुरस्कार प्राप्त किया।

श्री राम जैसवाल सर सहज व्यक्तित्व के धनी थे वे सबको जोड़े व समाहित करने की एक परम्परा को कला वर्ग के विद्यार्थियों में विकसित की उनके विद्यार्थियों से हमेशा आत्मीय सम्बन्ध रहे दयानंद महाविद्यालय अजमेर में प्रोफेसर पद पर रहते हुए उन्होंने ललित कला विभाग को राज्य में ही नहीं अपितु देश में प्रसिद्धि व प्रतिष्ठा दिलवाई और उसके उत्थान के लिए निरंतर प्रयासरत रहे जिसके कारण जलरंग पद्धति पूरे भारत में प्रसिद्ध हुई। उनके जलरंग व वाश तकनीक से बने चित्रों ने मुझे हमेशा प्रेरित किया उनके मार्गदर्शन में स्नातक करने के पश्चात लखनऊ आर्ट कॉलेज से आगे की कला शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा मिली जहाँ जैसवाल सर स्वयं कला विद्यार्थी रहे। 1985 से कला शिक्षक के रूप में कला जगत को एक नई विस्तृत दिशा में मोड़ने का प्रयास किया वे विद्यार्थियों की प्रतिभा को तराशते रहे और उन्हें उत्साहित करते रहे। लखनऊ आर्ट कॉलेज में दाखिले के पश्चात् अपने अध्ययन के दौरान उनके द्वारा वहां की घटनाओं के वर्णन हमेशा मेरी समृति में रहे जिनमे बी. एन. आर्या सर वे जैसवाल सर के सीनियर भी थे जिनकी कला से वे स्वयं प्रेरणा पाते थे। बी. एन. आर्या सर से मैंने भी वाश शैली की बारीकियों को समझने की प्रेरणा मिली और यह जाना कि वाश पद्धति केवल एक तकनीक नहीं बल्कि जीवन दर्शन है।

जैसवाल सर प्रकृति में उत्पन्न रंगों को अनुभव करने की कला को बहुत ही सहजता व सरलता के साथ समझने और कैसे अभिव्यक्त करना होता है यह हमने जानने के प्रयास किये।

जैसवाल सर लखनऊ की घटनाओं को प्रेरक प्रसंग के रूप में सुनाया करते थे यही कारण है कि उनका आंतरिक चित्रकार व साहित्यकार हमेशा मेरे साथ रहा एक बार भीलवाड़ा में कला महाविद्यालय स्थापित करने के उद्देश्य से उनके साथ यात्रा करने का अवसर मिला तब उन्होंने अपने कलात्मक आचरण व व्यक्तित्व से गहन परिचय करवाया लखनऊ के डाली गंज व गोमती किनारे के दृश्य चित्रों को बनाने के अपने अनुभवों

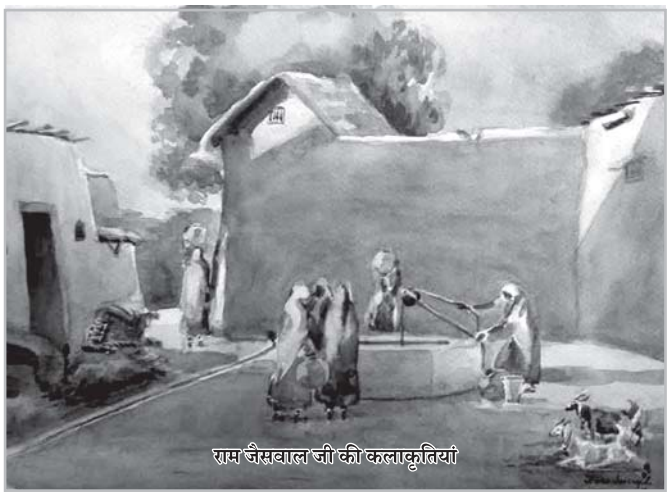
राम जैसवाल जी की कलाकृतियां

को आत्मसात किया वे दृश्य चित्रों को यथा स्थान जाकर बनाने की प्रेरणा देते थे जिससे दृश्यों व रंगों के बदलते अनुभवों को समझने का अवसर मिला उनका व्यक्तित्व उस समय के कला विद्यार्थियों में संस्कार के रूप में दिखाई देता है। वे केवल दृश्य चित्र ही नहीं बनाते, वे क्षणों को ही नही पकड़ते बल्कि प्रकृति की नमी, प्रकाश की चमक और मन की शांति को उकेरते थे। दृश्य चित्र बनाते समय वहाँ घटने वाली घटनाओं को वे रोचक तरीके से हम विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किया करते थे। जिससे मुझे प्रकृति और एक कलाकार के मध्य का सम्बन्ध कैसे एकाकार होता है उसे जानने समझने और अभिव्यक्त करना मेरे लिए संभव हो पाया जैसवाल सर प्रकृति में उत्पन्न रंगों को अनुभव करने की कला को बहुत ही सहजता व सरलता के साथ बताते थे विशेष रूप से जो मैंने सीखा वह उनकी ही देन है वे अक्सर कहते थे कि दृश्य चित्र में कोहरे का प्रभाव देते समय छनती धूप को अनुभव करें तथा क्रिमसन, वरमिलियन व येला ऑकर के समावेश से धूप और प्रकृति के रहस्यमयी अंतरंगता को चित्र में ला सकते हो, यही कारण है कि मैने अपनी प्रांरम्भिक कला यात्रा में कई दृश्य चित्र बनाएं। मेरे अग्रज और सर के प्रिय जलरंग चित्रकार स्व. डॉ. सुभाष कुलहरी के साथ कॉलेज समय के पश्चात् लगभग पाँच वर्षो तक जलरंग दृश्य चित्र श्रृंखला के रूप में बनाये जिनमें आनासागर बजरंगगढ़ दौलतबाग मार्टिनलब्रिज गढ़ी मलियान पुष्कर घाट घन्टाघर व तारागढ़ आदि प्रमुख है जिनके कारण रंगों का अंतर्भाव मेरी वर्तमान की कृतियों में गहनता के साथ समावेश करने में सक्षम हो पाया हूँ। जल रंग केवल चित्र नहीं बनाता, वह हमें यह समझने का अवसर देता है कि जीवन भी एक विशाल धरातल है जहाँ हर क्षण एक नई परत है, और हर परत अपने आप में पूर्ण व पारदर्शी है।

सर एक कलाकार ही नहीं थे बल्कि उनका व्यक्तित्व एक जीवन दर्शन है ठीक वैसे ही जैसे जलरंग चित्रण में पानी के साथ रंगों के बहने को चित्रकार रोकता नहीं बल्कि उसे दिशा देता है। और हमें सिखाता है कि कैसे जीवन में भी परिस्थितियों के साथ बहते हुए संतुलन बनाए रखना चाहिये उसकी सुन्दरता, सरलता में है कम स्ट्रोक में गहरी अभिव्यक्ति जो कि न्यूनतावाद का संदेश देती है, वे केवल दृश्य चित्र ही नहीं बनाते बल्कि जीवन की लय को महसूस करते थे ठीक वैसे पानी रंग और आत्मा मिलकर सौन्दर्य की रचना करतें हैं।

लखनऊ में अध्ययन करते समय वहाँ के वातावरण में बंगाल शैली का प्रभाव भरपूर था उस समय असित कुमार हाल्दार, मूर्तिकार एच. राय चौधरी पद्म श्री सुधीर खास्तगीर, एच.एल. मेंढ़ जैसे सिद्धहस्त अध्यापकों का आपको सानिध्य प्राप्त हुआ लखनऊ आर्ट कॉलेज के बाद आपके मन में कला अध्यापक बनने की महत्वाकांशा हुई किन्तु आपको 3 वर्षों तक लखनऊ मेडिकल कॉलेज में आर्टिस्ट के पद पर कार्य करना पड़ा उन्हें लगा शिक्षक बनना एक सपना ही रह जायेगा। एक दशक प्रारम्भ का अधिकांश भाग आपका लखनऊ में ही बीता जिसमें वाश शैली, जलरंगीय दृश्य चित्र व पोट्रेट के प्रति आपकी रुचि रही और लखनऊ की नजाकत को आत्मसात कर अपनी काव्यात्मक पक्ष को असीम ऊचाइयां प्रदान की आपकी कला धार्मिकता कला शिक्षण, उम्दा साहित्य रचनाएं, काव्य संग्रह का अभूतपूर्ण अनुपम संगम कला यात्रियों को प्रेरणा के साथ मार्गदर्शन देते रहेंगे।

उसके पश्चात् मेरठ कॉलेज में सर्वप्रथम चित्रकला की शिक्षा स्नातकोत्तर प्रारम्भ हुई जिसमें व्यवस्था में जैसवाल सर का चयन किया तब उनका कला शिक्षक बनने का स्वप्न पूर्ण हुआ।

राजस्थान के सन्दर्भ में वे कहते थे कि जब वे पढ़ते थे उनके कला शिक्षक मदनलाल नागर उन्हें कहा करते थे "क्या तुम कभी राजस्थान गये हो....?"और वे कहते थे "कभी नहीं" तब वे कहते थे कि फिर तुम्हारे चित्रों में राजस्थानी प्रभाव क्यों है। तुम्हें राजस्थान जाना चाहिए वह जो तुम्हारे अवचेतन मन में जो बहुत कुछ है वह परिपक्व होकर अभिव्यक्त होगा।

कालान्तर में वे राजस्थान आए और डॉ. ए. वी. महाविद्यालय अजमेर में चित्रकला विभाग के प्रभागाध्यक्ष पद को सुशोभित किया, अजमेर शहर में आपकी छत्रछाया में युवा कलाकार पले बढ़े, वे हर एक कलाकार से उसके कार्य को लेकर चर्चाएं व संवाद करते आप आकार आर्ट संस्थान की गतिविधियों को देखकर प्रसन्नता व्यक्त करते थे और कहते थे कि इस संस्था में निरन्तरता और उत्साह है वह बनाए रखना गत 2-3 वर्षों से आप आकार समूह के साथ अपने चित्र प्रदर्शित कर उत्साहित व प्रसन्न थे और वे कहते थे कि अगली प्रदर्शनी में नया दृश्य चित्र तैयार कर प्रदर्शित करूंगा। चित्र बनाने का उत्साह जैसवाल सर में हमेशा एक युवा चित्रकार के जैसा रहा। आपका व्यक्तित्व और कृतित्व कलाकारों के लिए हमेंशा प्रेरणा स्त्रोत रहेगें और कला जगत में वे जो कला के प्रति अलख जगाकर गए हैं उसको राजस्थान की नयी पीढ़ी के कलाकार और अधिक ऊर्जावान होकर उस कला परम्परा को भविष्य मे भी निरन्तरता की ओर अग्रसर करेंगे।

सम्पर्क : बीछला रोड, जलटंकी के पास, अजमेर (राजस्थान)।

स्मृतियों के वातायन से

डॉ. भारत भूषण

डॉ. भारत भूषण समकालीन कला-जगत के बहुआयामी रचनाकार हैं, जिन्होंने चित्रकला, साहित्य और रंगमंच के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है।वे दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के ललित कला एवं संगीत विभाग में अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुए तथा संस्कार भारती, गोरक्ष प्रांत के अध्यक्ष भी रहे हैं।चित्रकार के रूप में आपने देश-विदेश में अनेक एकल और समूह प्रदर्शनियों में सहभागिता की है। आपको अखिल भारतीय महादेवी वर्मा पुरस्कार तथा उत्तर प्रदेश राज्य ललित कला अकादमी पुरस्कार सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित किया गया है।देश-विदेश की अनेक कला कार्यशालाओं, शिविरों और विश्वविद्यालयों में आपने चित्रण-प्रदर्शन (डिमॉन्स्ट्रेशन) दिए हैं। आपकी कृतियाँ अनेक सरकारी एवं निजी संग्रहों में संग्रहीत हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख और चित्र प्रकाशित होते रहे हैं।...

माता-पिता और गुरु संस्कारवश एवं स्वभावत: मेरे लिए सदा त्रिदेव के समान रहे हैं। (मेरे लिए चौथे देव की कोटि में भारतीय सेनाएं आती हैं।) यद्यपि मैं इस मायने में भाग्यशाली हूं कि मुझे सदा अच्छे गुरु मिले लेकिन ऐसे गुरु जिनकी विशेष दृष्टि मुझ पर थी, उनमें प्रोफेसर मगन सिंह आर्या सर (प्रख्यात पोर्ट्रेट पेंटर) प्रमुख थे। वह ललित कला विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा में परास्नातक कक्षाओं में पोर्ट्रेट, लाइफ स्टडी और फिलॉसफी ऑफ आर्ट पढ़ाते थे। मुझ पर उनकी विशेष कृपा दृष्टि रहती थी। शायद मुझ में वह अनेक संभावनाएं देखते थे।

बात सन 1980 की है। भीमबैठका प्रागैतिहासिक गुहा चित्रों की खोज करने वाले प्रख्यात पुरातत्ववेत्ता पद्मश्री डॉ. वी. एस. वाकणकर आगरा आए थे। अपने गुरु आर्या सर के साथ मैं भी वाकणकर साहब से मिलने गया था। वहां जाने पर आर्या सर ने मुझसे कहा कि ' भूषण, देखो तो वाकणकर साहब कहां हैं?' तब तक न तो मैं कभी वाकणकर साहब से मिला था और न ही कभी उनका फोटो ही देखा था। बावजूद इसके, मैं गुरु आदेश के पालन के लिए उस बड़े भवन के चारों तरफ पहले धीरे-धीरे, फिर तेजी से चलते हुए और बाद में तो लगभग दौड़ते हुए वाकणकर साहब को यह मानकर खोज रहा था कि वह किसी साहब की तरह सूट- बूट पहने, अच्छी पर्सनालिटी वाले व्यक्ति होंगे। लगभग दौड़ते हुए उस भवन का कई चक्कर लगाने के बाद, थक- हार कर तेज सांसों के साथ अपने गुरु आर्या सर के करीब शर्मसार करने वाली अपनी मानसिकता के साथ थोड़ी दूरी पर हांफते हुए यह बताने के लिए मैं खड़ा हुआ कि सर, वाकणकर साहब नहीं मिले।

उस समय मैंने देखा कि आर्या सर एक निहायत सामान्य व्यक्ति जो साधारण कुर्ता- धोती पहने हुए थे और जो कई दिनों से शेव भी नहीं किए थे, से बात कर रहे थे। मुझे हांफते हुए और शायद मेरी असफल चेष्टा को भांपते हुए आर्या सर ने मुझसे पूछा कि ' भूषण, वाकणकर साहब मिले?' इस पर मैंने उनको बताया कि ' सर वाकणकर साहब को बहुत खोजा लेकिन वह नहीं मिले।' इस बात पर अपने सामने खड़े व्यक्ति को संबोधित करते हुए आर्या सर ने कहा ' सर, यह मेरा बहुत अच्छा स्टूडेंट भारत भूषण है और भूषण यह वाकणकर साहब हैं।' यह घटना मुझे शर्मसार करने के लिए काफी थी क्योंकि साहब शब्द ने मेरे मानस पटल पर कोट, पैंट, टाई पहने एक काल्पनिक पुरुष की छवि गढ़ दी थी। मेरी कल्पना से परे था कि कोई 'साहब' संज्ञाधारी इतने सामान्य और लगभग गंवई लिबास में होगा।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के फैकल्टी इंप्रूवमेंट प्रोग्राम के तहत आगरा कॉलेज के ललित कला विभाग में वाकणकर साहब का विशेष व्याख्यान पूर्व निर्धारित तिथि एवं समय पर हुआ। प्रागैतिहासिक कला,विशेषकर भीमबैठका के शैल चित्रों पर केंद्रित शोधपरक व्याख्यान था वह। वास्तव में भीमबैठका जैसे दुर्गम पहाड़ी और जंगली क्षेत्र में प्रागैतिहासिक शैल चित्रों की खोज डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर साहब ने ही किया था और जिस पर भारत सरकार द्वारा 1975 में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित भी किया गया।

पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर

वाकणकर साहब के व्याख्यान के बाद मेरे मन में

अनेक प्रश्न उठने लगे, इसलिए डरते-डरते मैंने आर्या सर से वाकणकर साहब से प्रश्न पूछने की अनुमति मांगी। जिज्ञासा वाले कई प्रश्नों में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न जो मैंने वाकणकर साहब से पूछा था कि ' सर, आप कह रहे थे कि भीमबैठका क्षेत्र में हिंसक और नरभक्षी पशु भी थे। तो क्या ऐसे हिंसक पशुओं से आपका कभी सामना हुआ? उनसे बचने के लिए क्या आप अपने साथ गन या कोई हथियार ले जाते थे या अपने साथ आर्म्ड गार्ड रखते थे।' इस पर वाकणकर साहब ने बताया कि ' हिंसक पशुओं से कई बार आमना- सामना हुआ ना बाबा। मेरे साथ कंधे पर लटकाने वाला झोला जिसमें पेन, पेंसिल, नोटबुक, स्केच बुक, कैमरा और पेंसिल छीलने के लिए छोटा चाकू रहता था और साथ में एक - दो किलो कच्चा आलू रहता था जिसे भूख लगने पर जंगल में ही भूनकर खा लेता था।'

हिंसक पशुओं से आमना-सामना होने की घटना पर उन्होंने बताया कि 'पहाड़ी जंगल में चलते-चलते कई बार अचानक सामने हिंसक पशु दिख जाते थे। तब मैं अपनी जगह रुक कर पशु को लगातार आंख में आंख डालकर देखता था। थोड़ी देर तक वह पशु भी मुझे देखता था और फिर सामने खड़ा पशु मुड़कर दूसरी तरफ चल चल देता था और मैं अपने रास्ते पर।'

ऐसे में अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि ऐसा कैसे होता है कि मानव या पशु का व्यवहार अचानक या कभी-कभी उसके मूल स्वभाव के विपरीत हो जाता है ? इसके पीछे ठोस कारण यह है कि लौकिक जगत के अतिरिक्त एक अत्यंत विशाल अलौकिक जगत की ऊर्जाओं से जीव जगत सदा घिरा रहता है। ऐसी ही ऊर्जाओं से वह (मानव या पशु जगत) अनजाने और अप्रत्याशित रूप से नियंत्रित और संचालित होता रहता है।

वाकणकर साहब जैसे अत्यंत सरल, सहज और पारदर्शी मन मस्तिष्क वाले व्यक्ति के सामने हिंसक पशु का व्यवहार ऐसी ही अदृश्य एवं अत्यंत प्रभावकारी ऊर्जाओं से नियंत्रित एवं संचालित हो जाता था। ऐसा लगता है कि ऐसी ऊर्जाएं वाकणकर साहब की अदृश्य संगी-साथी रही हों।

मुमुक्षु से उपजी उन्मुक्त हंसी

सन् 2006 में फाईन आर्ट्स विषय में रिफ्रेशर कोर्स करने के लिए मैं नई दिल्ली के जामिया मिल्लिया इस्लामिया (केंद्रीय विश्वविद्यालय) में 3 सप्ताह (18 मई से 7 जून तक) था। उस रिफ्रेशर कोर्स में देश के लगभग सभी प्रदेशों से कला आचार्य भाग लेने आए थे। पी.एन. मागो, शमशाद, कविता नैय्यर, प्रोफेसर नीरेन सेनगुप्ता, ए. रामचंद्रन, कृष्णा आहूजा आदि संदर्भ व्यक्ति (रिसोर्स पर्सन) के रूप में रिफ्रेशर कोर्स में आए थे। उसे कोर्स के बीच में सभी शिक्षकों को एक-एक चित्र बनाना और उसे प्रदर्शित करना अनिवार्य था। सभी सहभागी शिक्षकों ने अपनी- अपनी शैली में एक-एक चित्र बनाया और रिफ्रेशर कोर्स के आखिरी सप्ताह में उन कृतियों को जामिया मिल्लिया इस्लामिया के एक हॉल में प्रदर्शित भी किया।

मैंने मुमुक्षु (मोक्ष की कामना) सिरीज जो बहुत पहले से मेरा प्रिय चित्रण विषय रहा है, पर 'मुमुक्षु' शीर्षक से इंपीरियल साईज में एक तैल चित्र बनाया था। मुमुक्षु सीरीज में मानव को दर्शाने के लिए मैंने स्वयं एक प्रतीक गढ़ा था जो प्रकृति- पुरुष , पृथ्वी-आकाश, नर-नारी को समवेत रूप में दर्शाता था। मानव के उस विशेष प्रतीक में स्त्री- पुरुष के जननांगों का भी अत्यंत सरल रूप में प्रयोग किया गया था!

मुमुक्षु चित्रित करते डॉ .भारत भूषण

प्रदर्शनी के उद्घाटन के लिए मुख्य अभ्यागत (चीफ गेस्ट) के रूप में प्रख्यात कलाकार ए. रामचंद्रन जी आए थे। उद्घाटन के बाद वह सभी कलाकारों के चित्रों का अवलोकन करते हुए उनसे उनके चित्र के बारे में बात भी कर रहे थे। ए. रामचंद्रन साहब जब मेरे चित्र 'मुमुक्षु' के समक्ष आए तो थोड़ी देर वह मुमुक्ष का अवलोकन बड़े ध्यान से करते रहे। फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि 'क्या बनाया है आपने ?' मैंने बताया कि' मुमुक्षु पेंट किया है सर ' और चित्र में प्रयुक्त प्रतीकों को जब मैंने उनको बताया तो वह मेरी बात से आश्वस्त हुए। फिर उनकी सहज टिप्पणी थी कि 'इसी उम्र में मुमुक्षु बना रहे हो आप। अभी तो बहुत उम्र बाकी है आपकी।' इस पर मुस्कुराते हुए मैंने कहा कि ' वैचारिक स्तर पर किसी वस्तु, बिंदु को जानने- समझने या फिर उसमें डूबने में उम्र कभी बाधक नहीं होती है।' इस बात को सुनने पर रामचंद्रन सर स्वीकारोक्ति में सिर हिलाते और मुस्कुराते हुए मेरे कंधे पर थपकी देते हुए आगे बढ़ गए।

बात आई- गई हो गई। लेकिन मेरे उत्तर के बाद ए. रामचंद्रन सर के चेहरे पर खिलती हुई कली के जैसी जो उन्मुक्त मुस्कुराहट आई , वह मेरे मन - मस्तिष्क में चिपक सी गई ।उस समय की उनकी मुस्कुराहट 'ययाति' सिरीज की उनकी कृतियों की प्राकृतिक गंध की याद आज भी दिलाती है मुझे।

मेरी महादेवी

खाली कैनवस मुझे शुरू से ही सम्मोहित करता रहा है। उसे घंटों अपलक निहारना और उस पर आती- जाती, बनती- बिगड़ती अदृश्य (किंतु मानस पटल पर दृश्य होती आकृतियां) आकृतियों को देखना- महसूस करना मुझे अत्यंत प्रिय लगता है। स्पेस को जितना भरा जाता है, उतना ही मुझे एक प्रकार की बेचैनी सी होती है। ऐसा लगता है कि किसी पर अनाधिकृत रूप से कब्जा किया जा रहा हो। वास्तव में सभी आकारों ,वस्तुओं, जीवों सहित अंतराल को भी उचित महत्व मिले, इसका प्रबल पक्षधर हूं मैं। और शायद यही कारण है कि मेरी अधिकांश कृतियों में स्पेस की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। वास्तव में स्पेस के बगैर फॉर्म का कोई वजूद ही नहीं है। चाहे चित्र हो, मूर्ति

हो, नाटक- कहानी हो या काव्य हो, स्पेस बहुत जरूरी अवयव है।

वैसे चित्र और काव्य की चर्चा जब भी एक साथ आती है तो अन्य रचनाकारों से पहले आज भी मुझे महादेवी वर्मा याद आती हैं। महादेवी के निधन के पूर्व उनके बारे में मेरा ज्ञान महज सतही ही था। उनके निधन (11 सितंबर, 1987) के बाद एक चाय की दुकान में फटे अखबार की हेडिंग देखकर मैं अवाक रह गया था। शीर्षक था - ' **उमड़ी कल थी मिट आज चली** - महादेवी वर्मा '। किसी रचनाकार का इससे बढ़िया और ईमानदार आत्म परिचय हो ही नहीं सकता। उस अखबारी हेडिंग ने महादेवी से मेरा परिचय कराना शुरू किया और धीरे-धीरे थोड़ा बहुत पढ़ - जानकर महादेवी को मैं महसूस करने लगा।

मेरी महादेवी, चित्रकार - डॉ .भारत भूषण

हुआ यूं कि 1989 में कानपुर की शिल्पी संस्था द्वारा अखिल भारतीय महादेवी वर्मा चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन घोषित हुआ। मैंने भी उस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहा, इसलिए चित्र बनाने का सोचकर

प्रो. शंखो चौधुरी से अखिल भारतीय महादेवी वर्मा पुरस्कार पाते डॉ. भारत भूषण

अपने स्टूडियो में एक आराम कुर्सी पर पाल्थी मार बैठकर अपने आदत के अनुसार सादे कैनवस को सप्ताह भर से ज्यादा लगभग पूरी की पूरी रात बैठकर निहारता रहता था। सादे कैनवस पर बिम्ब बनते- बिगड़ते और आते-जाते रहते थे परंतु काम शुरू नहीं हो पा रहा था। हालांकि मेरे स्टूडियो के फर्श पर टिके कैनवस के सामने ऑयल कलर्स, ब्रश, लिंसिड और टरपेंटाइन ऑयल, कलर पैलेट, डिपर आदि पेंटिंग के सभी साज-ओ- सामान व्यवस्थित रूप से रखे हुए थे, फिर भी पेंटिंग का काम शुरू नहीं हो पा रहा था।

पेंटिंग सोचते या बनाते समय चाय और पानी पीने की मेरी रफ्तार और दिनों की तुलना में ज्यादा हो जाती थी सो मेरी भावी पत्नी (सुदीप्ता सरकार) इस प्रत्याशा में कि मैं पूरे ध्यान से काम करना शुरू करूंगा, रोज रात को भी कई- कई बार पानी और चाय मुझे मुहैया करा देती थीं परंतु मैं था कि चाय- पानी पीकर फिर खाली कैनवस को घंटों देखता रहता था। खाली कैनवस निहारने का वह काम हफ्ते भर से ज्यादा चला।

फिर एक रात सुदीप्ता जी स्टूडियो में चाय लेकर आईं और मुझे आराम कुर्सी पर बैठा देख अचानक भड़क गईं। बोलीं कि आप हफ्ता दिन से ऊपर हो गया, पूरी-पूरी रात जागते -जगाते हैं और सामने का कैनवस जस का तस, सादा का सादा पड़ा है। उस पर कुछ बनाते क्यों नहीं। उनकी तल्खी भरी बात पर मैं भी नाराज हो गया और यह जानते हुए भी कि वह एक सधी हुई चित्रकार हैं।अखिल भारतीय स्तर पर उनकी कृतियां प्रदर्शित हो चुकी थीं ,मैंने बोला कि यह कोई हलुवा नहीं है कि मुंह में डाला और निगल लिया। यह पेंटिंग है पेंटिंग। और इसके लिए उचित मूड का बनना बहुत जरूरी है। उनका जवाब था कि जब आप कैनवस पर कुछ बनाएंगे तब न अच्छा या बुरा कुछ बनेगा। बनाना शुरू ही नहीं करेंगे तो कैसे बनेगा ? उनके लगभग झगड़ने वाले अंदाज और पेंटिंग बनाने के लिए मेरे हिसाब से अनुचित दबाव डालने पर मुझे भी बहुत गुस्सा आया। मन किया कि किसी का गला दबा दूं। मेरा मूड पूरा अपसेट हो गया था और गुस्सा अपने चरम पर था। उस झगड़े के बाद वह स्टूडियो से चली गईं।

उनके स्टूडियो से जाने के थोड़ी देर बाद अचानक मैं आराम कुर्सी से उठा और गुस्सैल मन:स्थिति में ही अपने क्रोध को कैनवस पर उतारने के लिए ऑयल कलर के कई ट्यूब से डायरेक्ट कैनवस पर कलर निचोड़ा। उस पर लिंसिड ऑयल फेंका और हॉग हेयर ब्रश से कैनवस से लगभग लड़ने-झगड़ने या यूं कहिए कि कैनवस को फाड़ने के अंदाज में ब्रश चलाने लगा। वह आक्रामक स्थित 10-15 मिनटों की थी। उस जद्दोजहद के बीच मैंने देखा कि कैनवस पर मेरी महादेवी आकार लेने लगीं। यह देख कर मेरा गुस्सा धीरे-धीरे शांत होने लगा और मैं रचनात्मक साधना में पूरी तरह डूब गया।

फिर मैंने देखा कि कैनवस पर मेरी महादेवी, चिड़िया के प्रतीकात्मक रूप में पुनः उपजी महादेवी, उनकी रचनात्मक ऊर्जाओं की प्रतीक सतरंगी पट्टियां आदि सब मिलकर मेरी अपनी महादेवी को पूर्ण रूपाकर दे चुकी थीं

।सिर्फ फिनिशिंग का काम रह गया था वह भी धीरे-धीरे तीन-चार दिनों में पूरा हो गया।

महादेवी की उस चित्रकृति पर 20 मई, 1989 को रविंद्र भवन, नई दिल्ली में प्रख्यात मूर्तिकार प्रोफेसर शंखो चौधुरी द्वारा विख्यात कला समीक्षक प्रयाग शुक्ल आदि की उपस्थिति में मुझे 'महादेवी अवार्ड' से नवाजा गया। उस अवसर पर मेरी भावी पत्नी सुदीप्ता सरकार भी मौजूद थीं।

वास्तव में उनसे लड़ाई (रचनात्मक ही सही) ने कैटलिस्ट का काम किया और ऐसा लगा कि किसी दर्द भरे बड़े फोड़े को एक बारीक सूई की नोक से बहने का अवसर मिल गया हो। झगड़े वाली उस उत्प्रेरणा ने आखिरकार मुझे बहुत राहत दिया और उसका परिणाम यह हुआ कि हमारे सामने निखर कर आ गई नई चित्रकृति - 'मेरी महादेवी'।

महामहिम राज्यपाल, उत्तर प्रदेश श्री सूरजभान से अकादमी पुरस्कार प्राप्त करते हुए डॉ. भारत भूषण

स्वाभिमान और आभार ज्ञापन

उत्तर प्रदेश राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ द्वारा सन् 2000 में 22वीं वार्षिक कला प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था जिसमें मैंने भी अपनी कृति 'पृथ्वी, द्यौंस और उत्पत्ति' को प्रतियोगितार्थ भेजा था। कुछ सप्ताह बाद अकादमी से पत्र आया कि मेरी कृति को पुरस्कार हेतु चुना गया है। अतः पुरस्कार ग्रहण करने के लिए आप नियत तिथि को लखनऊ पहुंचने के अपने कार्यक्रम से अकादमी को सूचित करने का कष्ट करें। पत्रोत्तर में मैंने नियत तिथि को सपत्नीक अकादमी पहुंचने की सूचना दे दी थी और पत्र में यह भी लिख दिया था कि तद्नुसार हमारी व्यवस्था की जाए।

हमारी अपेक्षा के अनुसार लखनऊ के वी.वी.आई.पी. गेस्ट हाउस में हम पति-पत्नी और अन्य कलाकारों की ठहरने की व्यवस्था की गई थी। नियत तिथि को अकादमी परिसर में पुरस्कार वितरण कार्यक्रम के पूर्व मुख्य अभ्यागत (चीफ गेस्ट) उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री सूरजभान जी ,अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष प्रोफेसर योगेंद्र नाथ योगी जी , मंत्री - संस्कृति एवं पूर्त धर्मस्व -डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', सचिव संस्कृति श्री शैलेश कृष्ण आदि द्वारा अकादमी वीथिका में प्रदर्शित चित्रों का अवलोकन किया गया। तत्पश्चात अकादमी परिसर में ही चयनित कृतियों के कलाकारों को राज्यपाल महोदय द्वारा पुरस्कृत किया गया।

पुरस्कार वितरण के बाद राज्यपाल महोदय, अकादमी अध्यक्ष, मंत्री - संस्कृति एवं पूर्त धर्मस्व एवं सचिव संस्कृति तथा अन्य अति विशिष्ट अभ्यागतों सहित पुरस्कृत कलाकारों की हाई टी अकादमी भवन के प्रथम तल पर और शेष दर्शकों के जलपान की व्यवस्था भूतल पर की गई थी। तय कार्यक्रम के अनुसार राज्यपाल महोदय सहित अन्य अति विशिष्ट जन एवं पुरस्कृत कलाकार हाई टी के लिए प्रथम तल पर चले गए। मैं अपनी पत्नी डॉ. सुदीप्ता बी.भूषण के साथ नीचे सीढ़ी के पास खड़ा था कि कोई मेरी पत्नी को भी हाई टी के लिए बुलाए। बिना बुलाए न तो वह जातीं और न ही मैं। ऊपर सभी अति विशिष्ट जनों के बीच में हम अनुपस्थित थे। इस बात को सभी ने नोटिस लिया। इसलिए राज्यपाल महोदय का अर्दली रह- रहकर तीन बार मुझे बुलाने के लिए नीचे आया। हर बार मैं यह कह कर उसे वापस भेज देता था कि तुम चलो मैं आ रहा हूं। मेरी पत्नी को भी आमंत्रित करो, अर्दली से यह कहने में मुझे एक मूर्खतापूर्ण संकोच हो रहा था और वास्तव में यह मेरे स्वाभिमान के खिलाफ भी था।

अपनी पत्नी को नीचे छोड़कर मैं राज्यपाल तो क्या, महामहिम श्री राष्ट्रपति का भी हाई टी होता तो मैं नहीं जाता। यह मेरे आत्म सम्मान सहित मेरी पत्नी के भी आत्मसम्मान के खिलाफ था। अकादमी को भेजे पत्रोत्तर में मैंने साफ-साफ लिखा था कि मै सपत्नीक आऊंगा, तद्नुसार व्यवस्था की जाए। फिर भी साथ में खड़ी मेरी पत्नी को अर्दली या आयोजन से जुड़ा कोई भी व्यक्ति भूल वश ही सही, नहीं बुलाया।

सूबे के सबसे बड़े पद धारक राज्यपाल महोदय को मेरे कारण प्रतीक्षा करना पड़ा। अर्दली के तीन बार बुलाने पर भी मैं नहीं गया। यह बहुत बड़ी बात थी और यह बात सचिव संस्कृति श्री शैलेश कृष्ण को नागवार गुजरी। वह बड़ी तेजी में प्रशासनिक रोब और गुस्से में यह बोलते हुए सीढ़ी से नीचे उतरे कि 'व्हाट नॉनसेंस यू आर डूइंग? हिज हाईनेस इस वेटिंग।' इतना सुनते ही मेरा पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। फिर सचिव-संस्कृति से भी तेज आवाज में मैंने उनसे कहा कि ' व्हाट नॉनसेंस यू आर टॉकिंग? माई वाइफ इज हीयर और उनको छोड़कर हिज हाईनेस का हाई टी पीने

पृथ्वी, द्यौंस और उत्पत्ति,
चित्रकार- डॉ. भारत भूषण

मैं जाऊंगा, यह सोच कैसे लिया आपने?' इतना सुनते और व्यवस्थागत गलती को भांपते हुए सचिव संस्कृति श्री शैलेश कृष्ण मेरी पत्नी की ओर मुखातिब हुए और उनसे बार-बार बोलने लगे कि ' भाभी जी, आई एम सॉरी। आई एम रियली सॉरी।' सचिव संस्कृति के परिस्थितिजन्य क्षमा याचना को सुनने पर परिस्थिति को संभालते हुए मेरी पत्नी मुझसे ऊपर चलने के लिए कहने लगीं लेकिन अपने क्रोध के कारण उनको भी मैंने कड़े शब्दों में नकार दिया। श्री शैलेश कृष्ण मुझे छोड़, मेरी कमजोर नस (मेरी पत्नी) को मनाने लगे और कहे कि 'भाभी जी, आई एम एक्सट्रीमली सॉरी। प्लीज, आइये आप लोग। फिर क्या था, मेरी पत्नी मुझे समझाते- बुझाते और मेरी दाहिनी कलाई को पकड़ पूरे जोर से मुझे लगभग खींचते हुए ऊपर प्रतीक्षारत अति विशिष्ट जनों के बीच ले गई।

वहां सबके हाथ में नाश्ते का प्लेट था और सचमुच सब लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। हम दोनों राज्यपाल महोदय के ठीक सामने खाली जगह पर खड़े हुए। हमको भी नाश्ते का प्लेट दिया गया। फिर मैंने सबसे पहले चम्मच से प्लेट में रखे मिठाई का टुकड़ा काट कर अपनी पत्नी डॉक्टर सुदीप्ता बी. भूषण को खिलाया। यह दृश्य देखकर राज्यपाल महोदय, अकादमी के अध्यक्ष और संस्कृति मंत्री सहित अन्य विशिष्ट जन भी मुस्कुरा दिए।

वहां उपस्थित प्रेस के मित्रों ने भी यह दृश्य देखा और हाई टी के बाद हाल से बाहर निकलने पर लपक कर मुझसे प्रश्न किया कि 'सर , आपने सबसे पहले मिठाई मैडम को क्यों खिलाया ? जबकि उनके हाथ में भी नाश्ते का प्लेट था।'मैंने उनको स्पष्ट किया कि अपनी पत्नी को पहले मिठाई खिलाने के पीछे बहुत महत्वपूर्ण नैतिक कारण है। किसी भी घर की मां, बहन, बेटी, पत्नी अगर परिवार की अतिरिक्त जिम्मेदारी उठाते हुए और पुरुष को तनाव मुक्त कर समय न उपलब्ध कराये तो बड़ा से बड़ा कलाकार भी कुछ खास नहीं कर पाएगा। इसलिए कलाकर्म के लिए जो भी उचित माहौल और समय मेरी पत्नी ने मुझे उपलब्ध कराया , उसके प्रति सम्मान और आभार व्यक्त करने का भावरूप ही था अपनी पत्नी डॉक्टर सुदीप्ता को स्वयं से पहले मिठाई खिलाना।

सम्पर्क: 226- यू, गायत्रीपुरम्, नकहा नंबर 1,पोस्ट - बशारतपुर, गोरखपुर- 273004
मोबाइल- 9648866661/9415262686 / ई मेल - artist12bhushan@gmail.com

कला समय

आगामी विशेषांक

आगामी अंक
जून-जुलाई 2026

लोक नाट्य विशेषांक

डॉ. पूरन सहगल
अतिथि संपादक
(लोक साहित्य अध्येता)
मो. 9424041310

अतिथि संपादक- डॉ. पूरन सहगल
(लोक साहित्य अध्येता)

मालवी लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति पर निरंतर शोध कार्य अब तक 109 पुस्तकें प्रकाशित अनेक सम्मानों से पुरस्कृत एवं सम्मानित। दलित चेतना के सतर्क चिंतक, लेखक एवं समाजसेवी, विख्यात कहानीकार, समीक्षक, वार्ताकार, शिक्षाविद् एवं प्रवक्ता।

इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतु: 'लोक नाट्य' विषय पर आपके आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, संस्मरण सादर आमंत्रित हैं। सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 15 जून 2026 है।

- संपादक

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com मो.- 94256 78058

चार चेतनाएं, एक पीड़ा: रचनात्मक संवेदना की यात्रा

डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला

डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला चित्रकार, लेखिका, कवयित्री के रूप में पहचान रखने वाली डॉ अन्नपूर्णा शुक्ला बनस्थली विद्यापीठ के चित्रकला विभाग की पूर्व विभागाध्यक्ष रही हैं। वेकला एवं साहित्य क्षेत्र में निरंतर सक्रिय हैं। आप द्वारा लिखी प्रमुख पुस्तकें हैं – 'वानगो और निराला', 'किशनगढ़ की चित्र शैली', 'जल रंग चित्रण पद्धति' तथा काव्य संग्रह 'फुर्सत से सोचना'।वे गिनीज वर्ल्ड रिकॉर्ड्स 2016 से संबद्ध विश्व-रिकॉर्ड परियोजना की अतिथि कलाकार रहीं हैं तथा वर्ल्ड रिकॉर्ड्स बुक आफ इंडिया में उल्लेखित हैं।आपकी अनेक एकल तथा सामूहिक कला प्रदर्नियों में भागीदारी रही है। विविध संस्थानों से आपको सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया है।

यह कोई निश्चित स्थान नहीं था—न वह भारत था, न यूरोप। न वह अतीत था, न वर्तमान। यह एक ऐसा सार्वभौमिक समय-क्षेत्र था जहाँ रचनाएँ अपने रचनाकारों से अलग होकर समाज की चेतना से संवाद कर रही थीं। यहाँ स्मृतियाँ इतिहास नहीं थीं, बल्कि जीवित अनुभव की तरह उपस्थित थीं। समय जैसे ठहर गया था, ताकि मनुष्य स्वयं को देख सके—बिना तर्क, बिना बचाव, बिना किसी तने-बने के।

सबसे पहले विन्सेंट वान गॉग वहाँ उपस्थित होते हैं। उनके हाथ खाली हैं, पर उँगलियों में रंगों की वही बेचैनी है, जिसने दृश्य को करुणा में बदल दिया। वे लोगों को देखते हैं—चलते, रुकते, काम करते हुए। चेहरे थके हैं, पर आँखों में किसी और की रोशनी है, अपनी नहीं। उन्हें (The Potato Eaters) आलू खाते हुए वे किसान याद आते हैं—जिनके भोजन में स्वाद नहीं, पर श्रम की गरिमा थी। मिट्टी से सने हाथ, कठोर जीवन, और फिर भी साथ बैठकर खाना—वान गॉग के लिए यह दृश्य सामाजिक संरचना नहीं, मानवीय संबंधों का चित्र था।

वे किसानों के (Shoes) जूते को भी याद करते हैं—खाली जूते, जिनमें पैर नहीं हैं, पर पूरा जीवन समाया हुआ है। ये जूते आज के श्रमिक के भी हो सकते हैं—जो दिन भर चलता है, पर कहीं पहुँचता नहीं। वहाँ सौंदर्य बेचारा नहीं है, वह श्रम में समाहितहै।

वान गॉग के लिए अकेलापन अमूर्त नहीं था; वह दृश्य था, ठोस था। (Sunflowers) सूरजमुखी फूलों की तीव्र पीली आभा उन्हें याद दिलाती है कि उन्होंने सौंदर्य को सजावट की तरह नहीं, बल्कि जीवन की जिजीविषा की तरह चित्रित किया था। पर आज वही रंग जैसे थक गए हैं—जीवन की दिशा अस्पष्ट हो गई है।

उनका अनुभव यह है कि उनके समय में गरीबी शरीर को थकाती थी, आज अर्थहीनता आत्मा को थका रही है। (The Bedroom in Arles) आर्ल्स का बेडरूम का असंतुलन अब केवल एक कमरे का नहीं रहा—वह आधुनिक मनुष्य की मानसिक स्थिति बन गया है। लोग घरों में हैं, पर भीतर से बेघर। इन कृतियों में लगे ब्रश स्ट्रोक वेदना और करुणा के सत्य को उजागर करते हुए प्रतीत हो रहे हैं।

इसके बाद फ्रांज काफ्का का प्रवेश होता है शांत, लगभग अदृश्य। वे चारों ओर देखते हैं और तुरंत पहचान लेते हैं कि अदालत अब किसी इमारत में नहीं है। (The Trial) दा ट्रायल का जोसेफ के. आज हर व्यक्ति के भीतर जीवित है—जो बिना अपराध जाने अपराधबोध में जी रहा है। आधुनिक मनुष्य को लगातार स्वयं को प्रमाणित करना पड़ रहा है—योग्य होने का, उपयोगी होने का, स्वीकार्य होने का।

काफ्का को (A Hunger Artist) भूखा कलाकार याद आता है—वह कलाकार, जो भूख को साधना बना लेता है, पर अंततः इसलिए अस्वीकार कर

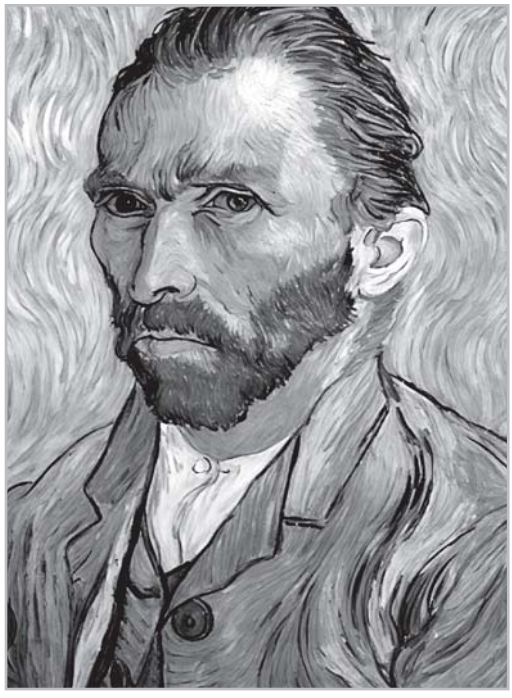

दिया जाता है क्योंकि लोग उसकी पीड़ा को समझना नहीं चाहते। आज भी संवेदनशील व्यक्ति इसी भूखे कलाकार की तरह है—वह उपभोग की दुनिया में संयम की बात करता है, शोर के बीच से मौन साधता है, और फिर अप्रासंगिक, अनुपयोगी घोषित कर दिया जाता है।

काफ्का के लिए भय सबसे खतरनाक तब होता है, जब वह सामान्य से सामान्य हो जाए—जब मनुष्य उसे प्रश्न करने के बजाय स्वीकार करने लगे। अपने अस्तित्व को ही नकारने लगे।

(The Metamorphosis) द मेटामॉर्फोसिस का ग्रेगर साम्सा उन्हें याद आता है—जो एक सुबह कीट बन जाता है। आज के समय मनुष्य रोज़ थोड़ा-थोड़ा कीट बनता है—नियमों के भीतर, अपेक्षाओं के दबाव में। कोई चमत्कार नहीं, कोई विस्फोट नहीं—बस धीरे-धीरे आत्मा का संकुचन।

फिर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आते हैं। उनके साथ भारतीय समाज की मिट्टी, श्रम और करुणा चली आती है। वे एक स्त्री को देखते हैं—काम से थकी हुई, पर आँखों में प्रतिरोध की ज्वाला दबाए हुए। 'वह तोड़ती पत्थर' उनके सामने केवल कविता नहीं रहती—वह श्रम की अनवरत परंपरा बन जाती है। निराला समझते हैं कि समय बदला है, पर श्रम का अपमान नहीं बदला।

वे 'भिक्षुक' के दर्द को भी देखते हैं और सरोज स्मृति में वर्णित करुणा भाव को और भी विस्तृत रूप से अनुभव करते हुए कहते हैं—

"दु:ख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ आज जो नहीं कही।"

यह पंक्ति आज भी उतनी ही जीवित है।

आज का भिक्षुक सड़क पर ही नहीं—अस्थायी नौकरियों में, अनुबंधों में, डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों पर खड़ा है। उसके पास काम है, पर सुरक्षा नहीं। उसकी भूख आँकड़ों में छुपा दी गई है। उसकी ऊर्जा को बेवजह सृजन से कोसों दूर कर दिया गया है।

निराला के लिए कविता करुणा से जन्म लेती है, और करुणा दर्द से भरे अपमान को देखे बिना संभव नहीं। वे महसूस करते हैं कि समाज ने औज़ार बदल लिए हैं, पर दृष्टि नहीं। उनकी कविता आज भी इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि वह सौंदर्य नहीं, संवेदना का आग्रह करती है। *

अंत में गजानन माधव मुक्तिबोध* आते हैं। उनके साथ विचारों का बोझ उतर आता है। उनकी आँखें बाहर कम, भीतर अधिक देखती हैं। इसलिए उनके कैनवस शब्दों से प्रक्षालित होकर अंतस की दीर्घाओं में संयोजित हैं। तभी उन्हें 'ब्रह्मराक्षस' याद आता है—ज्ञान से भरा हुआ, पर तृप्त नहीं। आज भी ज्ञान बहुत है, सूचनाएँ अनंत हैं, पर विवेक दुर्लभ है। मुक्तिबोध के लिए यह केवल बौद्धिक समस्या नहीं—यह नैतिक संकट है।

'अँधेरे में' की यात्रा उनके लिए आज और गहरी हो गई है। सत्ता अब केवल बाहर नहीं, भीतर बैठी है। कवि, विचारक, और संवेदनशील मनुष्य आज भी उसी अँधेरे में रास्ता टटोल रहा है—जहाँ प्रश्न पूछना जोखिम बन गया है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' जैसी रचनाएँ उन्हें याद दिलाती हैं कि विकृति केवल व्यवस्था में नहीं, दृष्टि में भी होती है।

चारों कुछ देर चुप रहते हैं। उस मौन में सदियों की थकान है। फिर यह स्पष्ट होता है कि उनके माध्यम अलग हैं—चित्र, कथा, कविता, वैचारिक कविता—पर स्रोत एक ही है।

वान गॉग का थका किसान,
काफ्का का भूख कलाकार,
निराला का भिक्षुक,

और मुक्तिबोध का ब्रह्मराक्षस —ये सभी आज के मनुष्य के ही विभिन्न रूप हैं।

उन्हें समझ में आ गया था कि कालजयी रचना वह नहीं होती जो अपने समय की शोभा बने, बल्कि वह जो हर समय का प्रश्न बन जाए। जो करुणा से निकले, संवेदना में तपे, और मनुष्य को मनुष्य से जोड़ दे। इस लिए यह रचनात्मक यात्रा किसी एक युग की नहीं—मनुष्य की साझा चेतना की यात्रा है,साझा संवेदना की यात्रा है।

सम्पर्क: फ्लैट /नं. 301,आयोजनवंदना-333,
पशुपतिनाथ नगर, प्रताप नगर, जयपुर - 302033
मो.- 9351636365, 9414440030

कला लेख

ओरिएण्टलिज़्म, भारतीय कला परंपरा और औपनिवेशिक व्याख्या

सुमन कुमार सिंह

सुमन कुमार सिंह समकालीन भारतीय कला के सक्रिय लेखक, समीक्षक और कला-चिंतक के रूप में परिचित हैं। वे मुख्यतः आधुनिक और समकालीन भारतीय चित्रकला, मूर्तिकला तथा कला-विमर्श पर लेखन करते रहे हैं।उनकी लेखन शैली विश्लेषणात्मक होने के साथ-साथ सांस्कृतिक संदर्भों से समृद्ध मानी जाती है। वे कलाकार की कृति को केवल दृश्य अनुभव के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक-ऐतिहासिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर बल देते हैं।विभिन्न कला-पत्रिकाओं, प्रदर्शनी-कैटलॉगों और संगोष्ठियों में उनके लेख और वक्तव्य प्रकाशित/प्रस्तुत होते रहे हैं। भारतीय समकालीन कला में उभरते कलाकारों पर लिखते समय वे परंपरा और आधुनिकता के संवाद को विशेष महत्व देते हैं।

एडवर्ड डब्ल्यू. सईद के निष्कर्षों की भारतीय कला-इतिहास के सन्दर्भ में पुनर्व्याख्या

एडवर्ड वादी सईद (1935–2003) फिलिस्तीनी-अमेरिकी साहित्य सिद्धांतकार, सांस्कृतिक आलोचक और राजनीतिक चिंतक थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक ओरिएंटलिज्म (1978) ने मानविकी और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में एक बुनियादी विमर्श को जन्म दिया। सईद ने यह प्रतिपादित किया कि 'पूरब' को लेकर पश्चिमी ज्ञान-परंपरा केवल निष्पक्ष अध्ययन नहीं थी, बल्कि वह सत्ता, उपनिवेशवाद और वर्चस्व से गहरे जुड़ी हुई थी। उनके अनुसार, ओरिएण्टलिज़्म एक ऐसी ज्ञान-प्रणाली है जो पूर्व को रहस्यमय, जड़, पिछड़ा और अपरिवर्तनशील दिखाकर पश्चिम की श्रेष्ठता को वैध ठहराती है।

ओरिएण्टलिज़्म की अवधारणा : मूल तर्क

सईद के अनुसार ओरिएण्टलिज़्म तीन स्तरों पर कार्य करता है—अकादमिक अनुशासन के रूप में, विचारधारा के रूप में (पूरब-पश्चिम का द्वैत) तथा सत्ता के उपकरण के रूप में (उपनिवेशी शासन को वैध ठहराने हेतु)

यहाँ सईद का मुख्य आरोप यह है कि पश्चिमी विद्वानों द्वारा रचित 'पूर्व' की छवि वास्तविक पूर्व नहीं, बल्कि एक निर्मित सांस्कृतिक कल्पना है।

भारतीय कला-इतिहास और सईद के प्रश्न :

भारतीय सन्दर्भ में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या औपनिवेशिक काल में भारतीय कला पर किया गया समस्त पश्चिमी अध्ययन केवल ओरिएण्टलिस्ट पूर्वाग्रहों से प्रेरित था? या क्या उस दौर में कुछ ऐसे विद्वान भी थे जिन्होंने भारतीय कला परंपरा को समझने और प्रतिष्ठित करने का ईमानदार प्रयास किया? यहीं से सईद के निष्कर्षों पर आंशिक पुनर्विचार की आवश्यकता महसूस होती है।

ई.बी. हैवेल और भारतीय कला का पुनर्मूल्यांकन :

ई.बी. हैवेल उन विरले औपनिवेशिक विद्वानों में से थे जिन्होंने भारतीय कला को पश्चिमी अकादमिक ढाँचों से बाहर निकालकर उसके आंतरिक सौंदर्यशास्त्र के आधार पर समझने का प्रयास किया।

उनकी पुस्तक "इंडियन स्कल्पचर एंड पेंटिंग (1908) भारतीय कला को 'नकलची' या 'अधूरा क्लासिसिज़्म' मानने की औपनिवेशिक धारणा का स्पष्ट खंडन करती है।

हैवेल ने—भारतीय कला में आध्यात्मिक दृष्टि को केंद्रीय माना,यूरोपीय यथार्थवाद को कला का सार्वभौमिक मानदंड मानने से इंकार किया साथ ही कला को उसके सांस्कृतिक-दार्शनिक संदर्भ में पढ़ने पर ज़ोर दिया। इस दृष्टि से हैवेल को सईद के ओरिएण्टलिज़्म मॉडल में एक अपवाद के रूप में देखा जा सकता है।

लॉकवुड किपलिंग और भारतीय शिल्प परंपरा :

लॉकवुड किपलिंग (रुडयार्ड किपलिंग के पिता) ने भारतीय शिल्प और हस्तकला परंपराओं को गंभीरता से दर्ज किया। लाहौर म्यूज़ियम और मेयो स्कूल ऑफ आर्ट से उनका जुड़ाव भारतीय शिल्प को 'निम्न कला' मानने की औपनिवेशिक मानसिकता के विरुद्ध जाता है।

हालाँकि, यह भी सत्य है कि किपलिंग की दृष्टि में भारतीय कला को अक्सर 'एथ्नोग्राफ़िक ऑब्जेक्ट' के रूप में देखा गया, न कि समकालीन सृजनशील अभ्यास के रूप में। ऐसे में यहाँ सईद की आलोचना आंशिक रूप से लागू होती है।

अलेक्ज़ेंडर कनिंघम और पुरातत्व :

अलेक्ज़ेंडर कनिंघम, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संस्थापक, भारतीय इतिहास और स्थापत्य के पुनरुद्धार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सारनाथ, साँची, बोधगया जैसे स्थलों की पहचान और संरक्षण उनके प्रयासों से ही संभव हुआ।

परंतु सईद की दृष्टि से देखें तो—यह ज्ञान भी औपनिवेशिक प्रशासन के अधीन था, यहाँ भारतीय

अतीत को 'मृत गौरव' के रूप में प्रस्तुत किया गया तथा समकालीन भारतीय समाज को उससे काट दिया गया I इस प्रकार, कनिंघम का योगदान दोहरा है, यानी संरक्षण भी, और नियंत्रण भी।

सईद से सहमत विद्वान :

सईद के निष्कर्षों से सहमत कई उत्तर-औपनिवेशिक विद्वान भी हैं, जिनमें प्रमुख हैं होमी. के. भाभा, गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक, रोनाल्ड इंडन और पार्थ चटर्जी I आईये जानते हैं इन विद्वानों की राय -

होमी के. भाभा : होमी के. भाभा समकालीन उत्तर–औपनिवेशिक सिद्धांत के सबसे प्रभावशाली विचारकों में माने जाते हैं। 1949 में मुंबई में जन्मे भाभा वर्तमान में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में मानविकी विषयों के प्रोफेसर हैं। उनका लेखन संस्कृति, सत्ता, पहचान और औपनिवेशिक इतिहास के जटिल अंतर्संबंधों की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

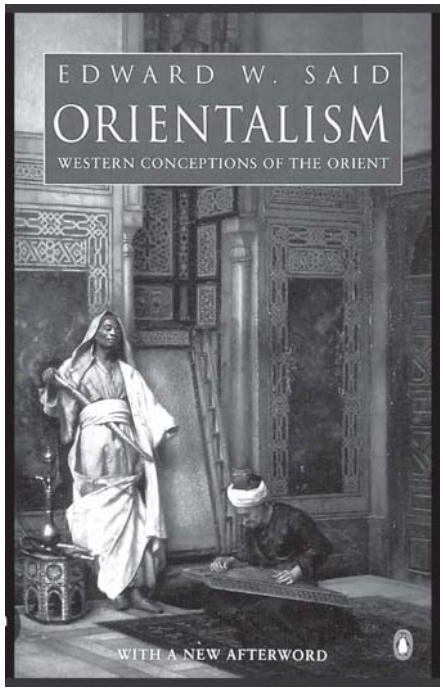

भाभा की चर्चित पुस्तक "द लोकेशन ऑफ़ कल्चर" (1994) ने उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श को एक नई दिशा दी। उन्होंने औपनिवेशिक सत्ता को एक स्थिर और एकतरफा संरचना के रूप में देखने के बजाय उसे अस्थिर, संवादात्मक और अंतर्विरोधों से भरी प्रक्रिया के रूप में समझा। उनके प्रमुख सिद्धांत—हाइब्रिडिटी यानि संकरता, अनुकरण और 'थर्ड स्पेस'—यह दर्शाते हैं कि उपनिवेशित समाज केवल शोषित या मौन नहीं रहते, बल्कि सांस्कृतिक स्तर पर सत्ता को चुनौती भी देते हैं।

भारतीय संदर्भ में भाभा का चिंतन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह भारतीय आधुनिकता और कला को पश्चिमी प्रभावों की साधारण नकल के बजाय एक मिश्रित, बहुस्तरीय और रचनात्मक प्रक्रिया के रूप में देखने का आग्रह करता है। इस दृष्टि से उनका लेखन कला, साहित्य और सांस्कृतिक आलोचना के लिए एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान करता है।

गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक के तर्क और विचार :

गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक समकालीन उत्तर–औपनिवेशिक चिंतन की सबसे प्रभावशाली विदुषियों में से एक हैं। वे साहित्य सिद्धांतकार, दार्शनिक और नारीवादी चिंतक के रूप में जानी जाती हैं। उनका सबसे चर्चित निबंध "कैन द सबाल्टर्न स्पीक ?" (1988) है, जिसमें वे यह प्रश्न उठाती हैं कि क्या हाशिए पर स्थित वर्ग—विशेषकर औपनिवेशिक समाज की स्त्रियाँ—वास्तव में अपनी आवाज़ स्वयं व्यक्त कर पाते हैं, या उनकी बात हमेशा सत्ता, ज्ञान और प्रतिनिधित्व की संरचनाओं द्वारा दबा दी जाती है।

स्पिवाक का मुख्य तर्क यह है कि औपनिवेशिक और उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श अक्सर 'सबऑल्टर्न' (अधीन/हाशियाकृत) के नाम पर बोलता है, लेकिन वास्तव में उसकी वास्तविक आवाज़ को सुनने में असफल रहता है। वे पश्चिमी अकादमिक ज्ञान, मानवतावाद और उदारवाद की भी आलोचना करती हैं, क्योंकि ये अक्सर अपने भीतर औपनिवेशिक वर्चस्व को छिपाए रहते हैं।

भारतीय संदर्भ में स्पिवाक का विचार स्त्री, जाति, वर्ग और आदिवासी प्रश्नों को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उनका लेखन हमें यह सावधान करता है कि प्रतिनिधित्व के नाम पर बोलना भी सत्ता का एक रूप हो सकता है, और इसलिए बौद्धिक जिम्मेदारी अत्यंत आवश्यक है।

रोनाल्ड इंडन के तर्क और विचार :

रोनाल्ड इंडन (Ronald Inden) उत्तर–औपनिवेशिक इतिहासलेखन और भारतीय अध्ययन के महत्वपूर्ण विद्वान माने जाते हैं। उनकी सबसे प्रभावशाली कृति Imagining India (1990) है, जिसमें वे पश्चिमी—विशेषकर औपनिवेशिक—विद्वानों द्वारा निर्मित 'भारत की कल्पना' की तीखी आलोचना करते हैं। इंडन का मुख्य तर्क यह है कि औपनिवेशिक और ओरिएण्टलिस्ट लेखन ने भारत को एक स्थिर, रहस्यवादी, अवैज्ञानिक और अपरिवर्तनशील सभ्यता के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे भारतीय समाज की ऐतिहासिक गतिशीलता और बौद्धिक जटिलता ओझल हो गई।

इंडन के अनुसार, भारत को अक्सर 'कमी' या कमजोरी के रूप में समझा गया—और यहाँ तर्क, इतिहासबोध और राजनीतिक चेतना का अभाव माना गया। वे इस दृष्टि को सत्ता-समर्थित ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया बताते हैं, जो औपनिवेशिक शासन को वैध ठहराने में सहायक रही। इंडन भारतीय समाज को कर्मशील, ऐतिहासिक और आत्मनिर्माण की क्षमता से युक्त मानते हैं।

भारतीय संदर्भ में इंडन का योगदान इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वे इतिहास, धर्म, राजनीति और संस्कृति को बाहरी सिद्धांतों से नहीं, बल्कि भारतीय अनुभवों और आंतरिक तर्कों के आधार पर समझने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हैं। उनका चिंतन एडवर्ड सईद के ओरिएण्टलिज़्म विमर्श का एक सशक्त विस्तार माना जाता है।

राष्ट्रवाद और उपनिवेशी ज्ञान पर पार्थ चटर्जी के विचार

पार्थ चटर्जी समकालीन भारतीय सामाजिक सिद्धांत और उपनिवेशोत्तर अध्ययन के प्रमुख चिंतकों में हैं। वे "सबाल्टर्न स्टडीज" समूह

से जुड़े रहे हैं और उनके लेखन का केंद्रीय सरोकार राष्ट्रवाद, आधुनिकता और उपनिवेशी ज्ञान-निर्माण की आलोचना रहा है। उनकी चर्चित कृति "नेशनलिस्ट थॉट एंड द कोलोनिएल वर्ल्ड (1986)" भारतीय राष्ट्रवाद को समझने की एक वैकल्पिक रूपरेखा प्रस्तुत करती है।

चटर्जी का मुख्य तर्क यह है कि उपनिवेशित समाजों का राष्ट्रवाद यूरोपीय राष्ट्रवाद की मात्र नकल नहीं है, बल्कि वह एक विशिष्ट ऐतिहासिक और वैचारिक प्रक्रिया से जन्मा है। वे बताते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद ने औपनिवेशिक सत्ता को 'भौतिक क्षेत्र' में स्वीकार किया—जैसे प्रशासन, विज्ञान, तकनीक और शासन-प्रणाली—लेकिन 'आध्यात्मिक/सांस्कृतिक क्षेत्र' को अपनी स्वायत्तता का आधार बनाया। भाषा, धर्म, परिवार, नैतिकता और संस्कृति को राष्ट्र की आत्मा के रूप में गढ़ा गया।

उपनिवेशी ज्ञान पर चटर्जी की आलोचना यह दिखाती है कि औपनिवेशिक सत्ता केवल सैन्य या आर्थिक प्रभुत्व से नहीं, बल्कि ज्ञान, इतिहासलेखन और समाज-विज्ञान के माध्यम से भी कार्य करती थी। औपनिवेशिक ज्ञान ने भारतीय समाज को परंपरावादी, अविकसित और आत्मनिर्णय में अक्षम सिद्ध करने की कोशिश की। राष्ट्रवादी चिंतकों ने इसी ज्ञान-ढांचे के भीतर रहते हुए अपनी वैचारिक जगह बनाई, जिससे राष्ट्रवाद एक साथ प्रतिरोधी भी रहा और सीमित भी।

चटर्जी के अनुसार, उपनिवेशोत्तर भारत में भी राष्ट्रवाद पूरी तरह मुक्त नहीं हो सका है; वह अक्सर औपनिवेशिक श्रेणियों—जैसे राज्य, नागरिकता और विकास—के भीतर ही संचालित होता है। इसीलिए वे आधुनिक भारतीय राष्ट्र-राज्य की आलोचनात्मक पुनर्व्याख्या की आवश्यकता पर बल देते हैं। पार्थ चटर्जी का चिंतन राष्ट्रवाद को महज़ राजनीतिक आंदोलन नहीं, बल्कि ज्ञान, संस्कृति और सत्ता की जटिल संरचना के रूप में समझने में सहायक है।स्पष्ट है कि इन सभी विद्वानों का मानना है कि भारतीय कला और संस्कृति को लेकर पश्चिमी विमर्श अक्सर सत्ता-संरचित रहा है।

समकालीन सन्दर्भ और आज का ओरिएण्टलिज़्म :

आज के वैश्विक कला बाज़ार, बिएनाले और म्यूज़ियम में भी ओरिएण्टलिज़्म के नए रूप दिखाई देते हैं—मसलन भारतीय कला को 'एक्सॉटिक', 'स्पिरिचुअल', 'क्राफ्ट-बेस्ड' टैग में बाँधना, लोक और आदिवासी कलाओं को 'अनाम' बनाकर प्रस्तुत करना, ऐसे में समकालीन भारतीय कलाकारों से 'पहचान की राजनीति' की अपेक्षा; इस स्थिति में सईद के तर्कों को आज भी प्रासंगिक बनाती है।

एडवर्ड डब्ल्यू. सईद की "ओरिएण्टलिज्म" भारतीय कला-इतिहास को देखने का एक अत्यंत सशक्त आलोचनात्मक औज़ार है, परंतु भारतीय सन्दर्भ में इसे पूर्णतः सर्वग्राही सत्य के रूप में नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण विवेचना के साथ अपनाने की आवश्यकता है।

क्योंकि सच तो यह है कि औपनिवेशिक काल में जहाँ एक ओर भारतीय कला को किंचित हेय दृष्टि से देखा गया, वहीं दूसरी ओर कुछ विद्वानों ने उसे वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठित भी किया। अतः कहा जा सकता है कि भारतीय कला-इतिहास का न्यायपूर्ण लेखन तभी संभव है जब हम इन दोनों धाराओं को साथ-साथ समझें।

सम्पर्क: जी-4, प्लॉट न. 868, सेक्टर -5, वैशाली गाजियाबाद, उ.प्र. - 201010
मो. 9811910293

कला समय: बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

कला समय के इस रचनात्मक अनुष्ठान में आपका बहुमूल्य आर्थिक सहयोग पत्रिका के लिए जीवनदायी संजीवनी होगी।

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है। साथ ही समीक्षा दो पृष्ठों से अधिक की नहीं होना चाहिए।

- संपादक

अवकाश की धुरी से उपजा संसार

राजेश एकनाथ पाटिल

राजेश एकनाथ पाटिल भारतीय समकालीन कलाकार हैं, जो पुणे में रहकर सृजन करते हैं। एक स्वतंत्र कलाकार के रूप में वे देश-विदेश की कला गतिविधियों में सक्रिय रहे हैं।उनकी दिल्ली में , चेन्नई , बनारस, जयपुर, भोपाल और इंदौर में एकल प्रदर्शनियाँ आयोजित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त डुएट प्रदर्शनियाँ तथा भारत भर में अनेक समूह प्रदर्शनियों में उनकी भागीदारी रही है। वे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय कला आयोजनों में भी सहभागी रहे हैं।वर्ष 2002 में वॉशिंगटन डी.सी. (USA) में आयोजित सिल्क रूट फेस्टिवल में उन्होंने एशियन हेरिटेज फाउंडेशन के लिए डिजाइन कार्य किया। 2010 में विश्व बैंक से संबद्ध परियोजना में उनका योगदान रहा लोकसभा चैनल के लिए उनके कार्य पर एक लघु फिल्म भी निर्मित हुई।वे दिल्ली में तीन प्रदर्शनियों के क्यूरेटर रहे हैं तथा केनेरी आर्ट फाउंडेशन के लिए पांच प्रदर्शनियों का संयोजन कर चुके हैं। उनकी कलाकृतियाँ भारत और विदेशों के निजी तथा संस्थागत संग्रहों में सुरक्षित हैं।

"हर रंग हर रूप की अपनी एक जगह है, अपनी एक सांस है सबमें एक अवकाश समाया है, जो अपने अस्तित्व के साथ शांत होकर बैठा है। बात करने पर जोर दो तो वे स्मृति के प्रभाव से उपजे रूपांतरण की कथा कहते है।"

यशवंत देशमुख चित्र में 'अवकाश' की अपनी यात्रा को लगातार खंगालते रहते हैं। यह आत्म-खोज- एक दृष्टि की खोज है।जहाँ देखना, होना बन जाता है और चित्र जीवन के उस सूक्ष्म क्षण को पकड़ लेते हैं, जहाँ रूप और अरूप के बीच की सीमा मिट जाती है।यह यात्रा कहीं पहुँचने की नहीं, बल्कि निरंतर ढूँढने की है एक ऐसे अवकाश की खोज, जहाँ देखना स्वयं में अनुभव बन जाए।

यशवंत देशमुख के लिए चित्र बनाना देखे हुए को समय के भीतर पकने देना है। वे जो देखते हैं, वही दिखाते हैं पर वैसा नहीं जैसा वह उस क्षण में दिखाई देता है, बल्कि वैसा जैसा वह स्मृति, संवेदना और अंतराल से होकर रूपांतरित हो चुका होता है। इस अर्थ में उनके चित्र एक प्रकार का साक्षात्कार हैं भारतीय सामाजिक चेतना की समाज समूह में रहने की हमारी आदत वजह से, और उस चीज या व्यक्ति के जुड़ाव से जो व्यक्ति को अकेला नहीं रहने देता।

इसीलिए उनके चित्रों को केवल शब्दों में समेट पाना संभव नहीं। यहाँ कोई कोरी बौद्धिकता नहीं है, कोई वैचारिक प्रदर्शन नहीं। उनके चित्र उन सभी स्तरों पर बोलते हैं जिनसे होकर मनुष्य रोज़मर्रा के जीवन में गुजरता है। समय बीत जाने के बाद, देखा हुआ और घटा हुआ, उनके भीतर किसी स्वप्निल ब्रह्म की तरह पुनः रचता है जहाँ सरलता किसी अलौकिक व्यवस्था का रूप ले लेती है। वे आकृति को उसके पहले रूप से उठाकर उस बिंदु तक ले आते हैं, जहाँ रूप अरूप की तरह बोलने लगता है।

पहली नजर में देखने में ये आकार जाने-पहचाने प्रतीत होते हैं जैसे उनसे हमारा कोई पुराना संबंध रहा हो। पर धीरे-धीरे वही संज्ञाएँ, जिनसे हम उन्हें नाम देते हैं, अपने नाम खोने लगती हैं। नाम के भीतर अनाम का उदय होता है। यह प्रक्रिया हमें एक ऐसे भाव-लोक में ले जाती है जहाँ अनुभव गाढ़ा हो जाता है इतना गाढ़ा कि देखना, मानो दृश्य के भीतर धँस जाने जैसा हो। यहाँ अवकाश अनुभूति का घनत्व है।

जैसे-जैसे दर्शक चित्र के भीतर प्रवेश करता है, दृश्य की सपाट सतह आँखों पर दबाव डालने लगती है। ऑप्टिकल इल्यूजन सक्रिय होता है और दृष्टि को अपनी खड़ी होने की जगह बदलनी पड़ती है। यह दृश्य का हस्तक्षेप है। जैसे जीवन में, वैसे ही यहाँ भी जैसे ही हम अपनी जगह से विस्थापित होते हैं, सामने की वस्तु अपना स्वरूप बदल लेती है। सामने से देखने पर जो दृश्य है, वही तिरछी दृष्टि से देखने पर रहस्य बन जाता है। सपाट सतह इतनी सघन हो जाती है कि वह बाहर की ओर दृश्य को उछाल देती है।

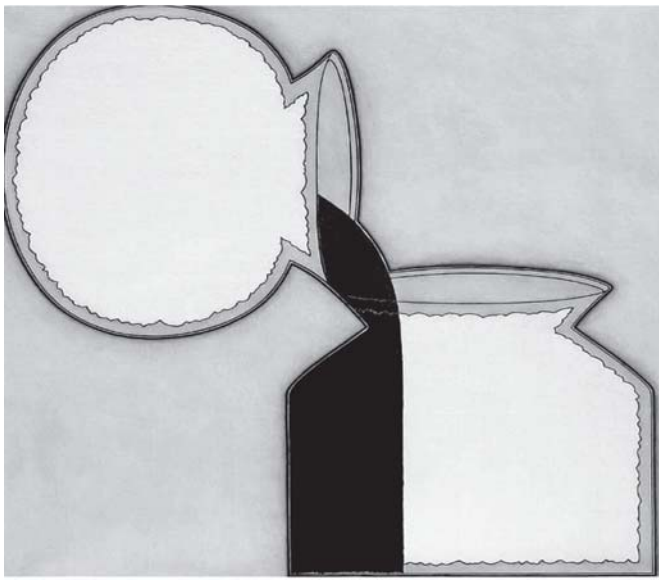

यह सब किसी पूर्व-नियोजित योजना से नहीं होता। यशवंत देशमुख लगातार रेखाचित्र बनाते रहते हैं बहुत सारे।ड्राइंग की प्रक्रिया लोप होने के गुण की प्रक्रिया है, अवकाश में ग़ायब होने का अभ्यास।

"प्रत्येक क्षण वेगळा असतो"

प्रक्रिया के भीतर के अवकाश को घटते देखते जाते है। इस निरंतरता में उनका भावनीक मनोभाव आकार लेता है। वे अवकाश को मानवीय गुण देते हैं उसे भावनात्मक बनाते हैं। किसी एक भाव पर इतना केंद्रित हो जाना कि वही चित्र का प्राण बन जाए।

मसलन, मृदंग की श्रृंखला। वहाँ प्रश्न यह नहीं कि मृदंग कैसा दिखता है, बल्कि यह कि चमड़े के तनाव से उपजी ध्वनि क्या चित्र में पैदा हो सकती है? क्या चमड़े का तनाव चित्र में दिखाई देगा!! या वह ध्वनि दिखाई दे सकती है? यह प्रश्न स्वयं में अमूर्त है और यही अमूर्तता चित्र को उसके आध्यात्मिक आयाम की ओर ले जाती है। यहाँ रूप, मंत्र की तरह हो जाता है कहने का साधन नहीं, बल्कि अनुभूति का द्वार।

इसी तरह पानी की श्रृंखला बहना, रुकना, छोड़ना, आयतन लेना। जल के व्यवहार को चित्र में कैसे उतारा जाए? यह केवल दृश्य समस्या नहीं, बल्कि दार्शनिक जिज्ञासा है। भारतीय दर्शन यहाँ गहरे से उपस्थित है कि जहाँ भावना दी जाती है, वहीं प्राण प्रकट होते हैं। चित्र में प्राण को देखना, चित्र में प्रवेश का एक नया मार्ग खोलता है।

द्रव्य कैसे रूप लेता है? हवा दिखती नहीं, पर उसका होना उसका अवकाश पतंगों की श्रृंखला में स्पष्ट हो उठता है। हवा का तत्व वहाँ प्रत्यक्ष नहीं, पर अनुभव में सघन है।

इसी तरह राशि और आयतन की श्रृंखला रेत का ढेर, गेहूँ का ढेर, खलिहान, नमक का ढेर। 2008 में मुंबई आर्ट गैलरी में प्रदर्शित एकल प्रदर्शनी "प्रकाश के पर्वत के चारों ओर घूमना" शीर्षक श्रृंखला इस प्रश्न से जन्मी कि एक दाना अपने आयतन में कैसे काम करता है और उसका ढेर किस तरह। इस तरह देखना एक तरह की परिक्रमा है।

गेहूँ के ढेर पर रखा एक दीया

और पूरे चित्र में केवल दीये के तल में अलौकिक रोशनी का बोलना उसकी आभा का प्रकट होना अचंभित करता है। बाकी सब कुछ अवकाश यूं विलीन है जैसे किसी चित्र का सिनेमा में बदल जाना है जहाँ नाट्य तत्व मौन से पैदा होता है।

जैसे कि एक कहावत है

'दीया तले अंधेरा'

यहां चित्रकार आपकी बनी बनाई पूर्व धारणा को तोड़ता है। तो पेंटिंग यहां किसी दृश्य को दर्ज करने की क्रिया नहीं है, बल्कि एक ऐसी जगह का निर्माण है जो बाहर कहीं मौजूद नहीं होती। यह जगह मन के भीतर धीरे-धीरे आकार लेती है , एक ऐसा स्पेस जिसे देखा नहीं जा सकता, सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है। जैसे किसी अंधेरी गुहा में मध्यम सुनाई देती ध्वनि समय के साथ घुलकर ख़ामोशी में बदल जाती है, या जैसे पानी में उठी लहरें फैलते-फैलते स्वयं पानी में विलीन हो जाती हैं। यह स्पेस उपस्थिति का नहीं, लोप का अनुभव है जहाँ स्पर्श की स्मृति भी धुँधली हो जाती है।

इसका कैटलॉग रंजीत होसकोटे जी,प्रसिद्ध कलासमीक्षक, कवि ने २००८ में लिखा था..उससे एक अंश

"यशवंत देशमुख की चित्रकृतियों को सजीव करने वाला प्रकाश बादलों के बीच से छनकर आता है, छाया से रंगा हुआ। वस्तुओं के चारों ओर जो हल्का अर्द्धछाया-वृत्त (पेनुम्ब्रा) बनता है, वह उन्हें कोमल करने के बजाय उनके प्रकट होने की आकस्मिकता और अपरिहार्यता को और तीव्र कर देता है। और यद्यपि उनकी चित्रकृतियाँ इन वस्तुओं के जीवन और उत्तरजीवन को समर्पित चिंतनशील प्रयोगों की तरह प्रतीत होती हैं जो स्थानों में, वस्तुपरक भ्रांतियों के रूप में, प्रतिध्वनित होती हैं उनकी गहरी आकांक्षा परिदृश्य की सांत्वनाओं के लिए है।"

2008 में जहांगीर में Regarding the cone'. शीर्षक से' एकल प्रदर्शनी जिसका कैटलॉग क्यूरेटर राधिका देसाई ने लिखा था। उनकी कोण (शंकु) वाली श्रृंखला अत्यंत विचारोत्तेजक है। काले-सफेद के गुण और मात्रा-भेद को जिस सटीकता से यह श्रृंखला उद्घाटित करती है, वह इन चित्रों में साफ़ देखा जा सकता है। यहाँ रंग अपने पूरे स्वरूप में व्यक्त होते हैं संयमित, लेकिन पूरी तरह मुखर।

कोण (शंकु) अपने चुने हुए रूप को ही अपने दार्शनिक, काव्यात्मक और भौतिक अन्वेषणों की पूर्ण अवस्था मानता है। यह वह रूप है जहाँ प्रयोग और उसका निष्कर्ष अलग-अलग नहीं रहते, बल्कि प्रत्येक प्रस्तुति में साथ-साथ, एक ही समय में घटित होते हैं।

विशेष रूप से उनकी एक इंस्टॉलेशन कोण आधारित-कृति मुझे

अत्यंत महत्वपूर्ण लगती है। इसे उन्होंने चारकोल जैसा इफेक्ट दिया था यह कृति इस प्रश्न को सामने रखती है कि किसी रचना को हम किस स्थान पर स्थापित करते हैं, और वह स्थान स्वयं उस कृति के प्रभाव से कैसे रूपांतरित हो जाता है। उसके स्थापन से पूरी गैलरी में आयामों का एक ऐसा ऑप्टिकल इल्यूज़न निर्मित होता है, जो दृष्टि को संगीत के आरोह-अवरोह जैसा अनुभव कराता है।

इस रचना में कोण का एक कोना दर्शक को भीतर की ओर खींचता है, जबकि दूसरा कोना बाहर की ओर धकेलता है मानो दृष्टि स्वयं एक गतिशील प्रक्रिया बन जाए। इस कृति को देखते हुए मुझे NGMA, दिल्ली में देखी अनीश कपूर की कृतियाँ स्मरण हो आती हैं।

अनीश कपूर के कार्यों का मेरा निजी अनुभव यह रहा है कि जिस तरह वे पिगमेंट के रंग-आभामंडल को भारतीय आध्यात्मिक संवेदना के भीतर समकालीन आकार और रंग के साथ विस्तारित करते हैं, उनकी कृतियाँ दर्शक और उसकी दृष्टि दोनों को एक ओर से जकड़ लेती हैं। ऐसा लगता है मानो रंग चारों ओर फैल गया हो, और आप उसके भीतर बँध गए हों।

इसके विपरीत, यशवंत देशमुख जी की कृतियाँ स्वयं को खोलती हैं, उघाड़ती हैं। वे तत्वों के शुद्ध रूपों के साथ खुले में देखने का आमंत्रण देती हैं बांधती नहीं। यहाँ कृति मोह की वह सहज डोर है जो आपको मुक्त करती है देखने की प्रक्रिया को एक संवाद में बदल देती है।

अवकाश के संदर्भ अंधकार से ज़्यादा देशमुख जी के चित्र प्रकाश में टिके हैं। प्रकाश यहाँ, स्पष्टता की नैतिकता है। आकार प्रकाश में अपने होने को लेकर किसी भी तरह के संदेह से मुक्त है। शेप और ऑब्जेक्ट दोनों एक-दूसरे में विलीन होकर स्पेस को स्थिर करते हैं, इतने कि देखने की सारी हड़बड़ हलचल थम जाती है।

"स्थिरता ने गति-- गोपी कुकड़े (प्रसिद्ध विज्ञापन निर्माता)

जब आकार के ज़रिए अवकाश को समझने की कोशिश हो तो अवकाश के प्रति जागरूकता अनिवार्य हो जाती है। ड्राइंग में रेखाऐं सिर्फ़ संकेत भर हैं वे पूरी बात नहीं कहतीं, केवल सोच का एक धुँधला नक़्शा बनाती हैं। उन्हें मन में हल्के से लिया जाता है, जैसे कोई अस्थायी पदचाप नोट जो रेखाचित्रों में लगातार दर्ज होते रहते है। लेकिन जब टेक्सचर और रंग आते हैं, तब वही अवकाश दोबारा परिभाषित होता है रंगों के ज़रिए। चित्रकार क्या चाहता है !!

हल्का या भारी, भीतर से चमकता हुआ या पूरी तरह बेजान, गहराई लिए हुए या महज़ एक सपाट सतह। यही वजह है कि देशमुख के चित्रों में रंग अक्सर ग्रे के शेड्स की ओर झुकते दिखाई देते हैं। ये शेड्स दर्शक को निरपेक्ष दृष्टि भाव देते है जो धीरे-धीरे भीतर खींच लेते हैं।

"तस्वीर का आरंभ या अंत अक्सर काले या सफ़ेद में होता है कभी दोनों एक साथ। यह कोई गणितीय संरचना नहीं है, फिर भी वे वहाँ मौजूद रहते हैं, जैसे मौन में छिपा हुआ कोई नियम।"

कभी-कभी गुलाबी रंग प्रवेश करता है बहुत सीमित, बहुत निजी। इस रंग से जो अवकाश में भेद पैदा होता है, वह बाहरी नहीं लगता; वह किसी आंतरिक स्मृति जैसा है। नीला रंग भी ऐसा ही है। जैसे काले रंग में जो रिक्तता होती है, वह एक विशेष प्रकार की होती है, वैसे ही नीले रंग का नीलापन भी गंभीर और आत्मीय होता है। दोनों की जाति एक-सी है गहराई और ख़ालीपन के बोध की लेकिन उनका स्वभाव अलग-अलग है। एक चुप्पी है, दूसरा गहराई।

दीवार पर कंदील चित्र प्रक्रिया के दौरान पहले चित्र में आए प्रभाव कों वे दूसरे चित्र में चित्रित करना चाहते थे जो संभव नहीं हुआ तो " हर एक क्षण अलग है every moment is different ." अनुभव हुआ जो उन्होंने काम करते करते हुए जाना, उन्होंने यह तीन चित्र 5X6 फिट के बनाए।

बिना युद्ध की तलवार — अरुण खोपकर जी, प्रसिद्ध समीक्षक, लेखक (प्रदर्शनी के बाद यशवंत जी ने अरुणजी को इमेजेस भेजी थी । तब उन्होंने यह प्रतिक्रिया मेल के उत्तर में लिखी थी ।(2012)

गैलरी स्पास में मिक्स मीडिया के कुछ कार्यों की एक प्रदर्शनी में यशवंत देशमुख की तलवार आधारित छह कृतियाँ प्रदर्शित हुई थीं। यशवंत देशमुख के चित्रों की तरह यहाँ भी वस्तु को केवल रूप या प्रतीक के रूप के बजाय उसके संज्ञा-भाव में समझने का आग्रह दिखाई देता है। तलवार का मूल कार्य काटना है और इसी कार्य-धर्म के माध्यम से वह अवकाश को कैसे विभाजित करती है, यही इन कृतियों का केंद्रीय भाव बन जाता है।

हर संज्ञा अपने भीतर एक दार्शनिक बोध लेकर आती है; इस स्तर पर वस्तु केवल वस्तु नहीं रह जाती, वह अनुभव और विचार की वाहक बन जाती है। भारतीय कला में इस प्रकार वस्तु के कार्य-स्वभाव से दर्शन की रचना करते हुए काम बहुत कम देखने को मिलता है।

इन कृतियों को देखते हुए बचपन की स्मृतियाँ अनायास उभर आती हैं दशहरे के समय लकड़ी या मिट्टी की तलवारों से खेलना, जहाँ हिंसा नहीं

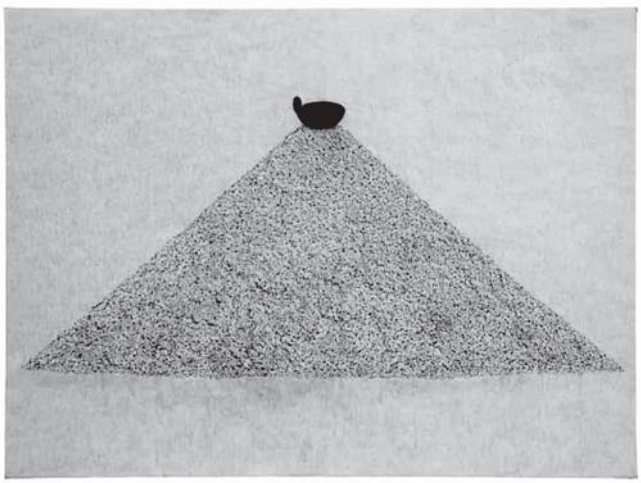

थी, केवल अनुकरण और उत्सव था। जब यशवंत देशमुख ने Fragile शीर्षक के अंतर्गत कटी हुई फसल के ढेर पर एक गुलाबी तलवार रखी, तो यह मासूम स्मृति व्यापक अर्थों में प्रकट हो उठी। फसल काटने की पूरी प्रक्रिया, श्रम और जीवन-चक्र से जुड़ा अनुभव, यहाँ किसी आक्रामक संकेत के बजाय एक कोमल, लगभग बालसुलभ भाव के साथ सामने आता है।

यह एक ऐसा रूप है जो ठोसपन और क्षणभंगुरता दोनों को, ब्रह्मांड की स्थायित्व और प्रवाहशीलता दोनों को संप्रेषित करता है: यह एक साथ होने (being-there) और होते रहने की प्रक्रिया (being-in-process) का रूप है।

यह उस कृषक जीवन की स्मृति है जिसे देशमुख ने अकोला विदर्भ में अपने बचपन में जाना शिरपुर , (वासिम, जिला) था महाराष्ट्र के गर्म प्रदेश, झुलसते आंतरिक क्षेत्रों में।

वर्तमान समय में यशवंत देशमुख के कामों पर बात करना इसलिए और भी अधिक आवश्यक व प्रासंगिक हो जाता है, कि क्योंकि उनका और पूर्व के सभी प्रसिद्ध और प्रेरणादायी कलाकारो की कला-यात्रा- प्रामाणिक होने से जुडी है कि एक छोटे शहर या गाँव से आया कलाकार अपने मूल को बचाए रखते हुए उसे किस तरह धीरे-धीरे समृद्ध करता है। देशमुख की कलायात्रा उदाहरण है कि अपनी जड़ों से जुड़े रहते हुए देखने की दृष्टि और विचार-प्रक्रिया को निरंतर कैसे विकसित किया जा सकता है।

उनकी कला हर कला छात्र खासकर छोटे शहर गांव से आने वाले कला छात्रों के लिए एक सीख की तरह है कि यदि कोई अपने 'होने' को बचाए रखता है, तो समय के साथ उसकी अपनी जगह स्वतः बनती है अगर पूरी निष्ठा सें काम किया जाये। समकालीन कला में 'समकालीन' दिखने की होड़ में हम अक्सर वही करने लगते हैं जो कला-बाज़ार में प्रचलित होता है। इस प्रक्रिया में अनेक युवा कलाकार भटक जाते है धीरे-धीरे अपनी पहचान खो बैठते हैं।वे अपना मूल स्वभाव अपना होना भूल जाते हैं कि वे क्या थे, और उसकी जगह वैसा बनने लगते हैं जैसा उनसे अपेक्षित है।

इस संदर्भ में यशवंत देशमुख की रचनाएं प्रमाणिक होने के साथ ही समकालीन है अपने अनुभव, स्थान और स्मृति के साथ वे ईमानदार बने रहते है। जैसे उनके चित्र है सरल और सादे वैसा ही उनका व्यक्तिव भी है मुस्कुराते हुए सरल और सादगी लिए हुए, वे इतनी आत्मीयता से मिलते है कि लगता नहीं कि किसी से पहली बार मिले रहे हो, चित्रकार होने का कोई दंभ भी नहीं दिखाई देता उनमें। उसका वर्तमान स्टूडियो पुणे, मुंबई के पास है।

सम्पर्क: स्टूडियो, पुणे
मेल: rajesharttext@gmail.com
मोबाइल: 8982384434

विनम्र श्रद्धांजलि

**पिछले दिनों भोपाल शहर की तीन महान शख्सियत जो अपने-अपने क्षेत्र में विशेष थीं,
जिसमें न्याय, कला, इतिहास के क्षेत्र में अपूरणीय क्षति हुई है!**

'कला समय' परिवार एवं 'हॉबी समूह' की ओर से विनम्र नमन...

पूर्व प्रधान जिला न्यायाधीश
श्री योगेश कुमार गुप्ता

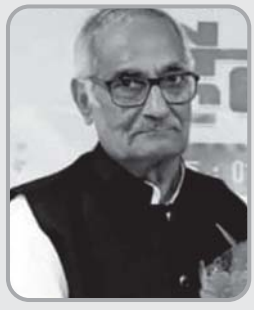

सुप्रतिष्ठित वरिष्ठ चित्रकार
डॉ. लक्ष्मीनारायण भावसार

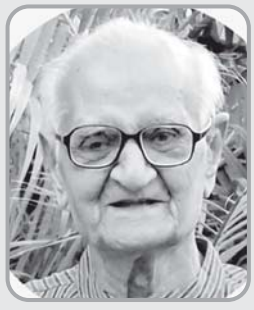

इतिहासविद्
श्री शंभुदयाल गुरु

कला लेख

दृश्यकला में चित्रावण कला की रूपांकन छवियाँ

डॉ. पूरन सहगल

मालवी लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति पर निरंतर शोध कार्य। विभिन्न राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में सतत् लेखन। अब तक अपराध पेशा एवं देह व्यवसाय में लिप्त जातियों पर समाज शास्त्रीय अध्ययन एवं लेखन। यायावर जाति वामनिया बंजारा कालबेलिया गाडोलिया सांटिया एवं अन्य जातियों पर अध्ययनरत् । दशपुर जनपद के संतों, सेनानियों पर लेखन। मालवी की नारी कवयित्रियों कृष्ण भक्त चन्द्रसखी नवनिधि कुँवर गवरीबाई, श्रृंगार की प्रसिद्धि कवयित्री सुन्दर एवं रूपमति आदि के साहित्य का संकलन संपादन एवं ग्रंथ प्रकाशन। अब तक 109 पुस्तकें प्रकाशित। दलित चेतना के सतर्क चिंतक, लेखक एवं समाजसेवी, विख्यात कहानीकार, आलेख लेखक, समीक्षक, वार्ताकार, शिक्षाविद् एवं प्रवक्ता।
आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर प्रसारित वक्तव्य एवं काव्य पाठ।

दृश्यकला एक विस्तृत विधा है। दृश्य का सीधा अर्थ है जो हमें दृष्टिगोचर हो रहा हो। इसमें नाट्य विधा पुतली खेल राजस्थान की जनजातीय समुदायों का गवरी (मुखौटा कला), माच, भुवाई, ख्याल, भाडावरी आदि नट कर्तब, सिनेमा, चित्रकला, मांडना, पिठौरा चित्रावन अर्थात धरा श्रृंगार, भीति श्रृंगार, छत श्रृंगार, केनवास चित्रावण, गोदना कला आदि सब कलाएँ दृश्यकला के दायरे में समाहित मानी जानी चाहिए है।

चित्रपट में भी तो "चित्र" जुड़ा है। हम देखते हैं किस प्रकार अपनी कला प्रवीणता से एक कुशल अभिनेता अपने पात्र को जीवेत कर देता है। उसकी उस कला को देखते-देखते हम यह भूल जाते हैं कि, हम केवल नाटक देख रहे है या चित्रपट (सिनेमा) देख रहे हैं। हमें लगता है मानो हम उस पात्र को नहीं अपितु वास्तविक इतिहास पात्र को देख रहे हैं। जब हम देखते हैं अकबर सेना से युद्ध करते-करते महाराणा प्रताप बुरी तरह घायल हो गये हैं तब हम व्याकुल हो उठते हैं। यह उस अभिनता की कला प्रवीणता है। ऐसे अनेक दृश्य हमें प्रभावित कर देते हैं। करूणा, दया, शौर्य, वीरता, त्याग, बलिदान, हर्ष, मिलन, वियोग आदि के दृश्य दृश्यकला का ही कमाल होता है।

यदि मैंने सभी दृश्यकलाओं का वर्णन करना शुरु किया तब निश्चित रूप से एक अच्छी पुस्तक बन जायेगी। अतः मैं केवल रेखांकन दृश्यकलाओं पर ही अपनी लेखनी केन्द्रित करना उचित जान कर इसी पक्ष पर यह लेख सृजित कर रहा हूँ।

कला किसी रुपांकन मात्र का नाम नहीं है। वह तो मन की भावाभिव्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण है। भाव बोध और कला बोध जीवन के ऐसे दो पहलू हैं जो मनुष्य को प्राणी जगत में सर्वोच्च निरुपित कर देते हैं। इनकी युति से सौंदर्यबोध हमें आनंद की अनुभूति करवाता है। कला सौंदर्य को जीवन के धरातल से ऊपर उठाकर लोक लुभावन बनाती है। वही सौंदर्य के बिना कला निष्प्राण हो जाती है। कला का सौंदर्यबोध ही उसे देशकाल और परिस्थितियों से ऊपर उठाकर सार्वभौमिक बना देता है। यदि जीवन में भाव बोध व्यक्तिगत होता है तब वह कला में सार्वभौमिक न होकर व्यष्टिगत होता है।

आदिमानव के पास जब वाणी नहीं थी तब अभिव्यक्ति का माध्यम केवल संकेत था। उन्हीं संकेतों को उसने शैलाश्रयों में टेढी-मेढी लकीरों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। उसकी संघर्षमय दिनचर्या कोतूहल आमोद, भय, स्नेह, योग संयोग, संघर्ष आदि को पहले वह संकेतों द्वारा अभिव्यक्त करता रहा। फिर उसने भीतिकाओं पर खड़िया से कोयले से, गेरू से या जो भी साधन उसे उपलब्ध हुआ टेढ़ी-मेढ़ी किन्तु बोधक लकीरों से रेखांकित किया। यदि कहा जाए कि सृष्टि पर वह प्रथम चित्रांकन था। एक ही फलक पर अनेक चित्रांकन कर पाने की क्षमता उस आदिमानव ने कैसे सीखी होंगे यह अद्भुत लगता है?

हिरन, सांभर, चीता, छिपकलियाँ, मयूर, साँप, गेंडा शिकार के सामूहिक दृश्य, नारी अपहरण, समूह नर्तक, आलावों के इर्द-गिर्द नृत्य शिकार को ढोकर लाने का चित्रांकन, भागता हुआ हिरन, झपटता हुआ बाघ, शिकार के पीछे बाँस का नुकीला भाला थामें दौड़ता आदि मानव। आकाश में घुमड़ते बादल, बरसता मेह, डरकर एक कोने में दुबके आदिमानव (स्त्री-पुरुष), बड़े-बड़े सीगों वाले वन भैंसे। उसने तो मैथुन तक के भाव चित्रों को भी शैलाश्रयों की भीतिकाओं पर उकेरा है। आदिमानव के उस रेखांकन से ही हम वर्तमान कला चित्रों का विकास मान सकते हैं।

चित्रों के पूरक, अर्द्धपूरक रेखाएँ तथा रेखांकन के माध्यम से जिस प्रकार भाव चित्रांकन किया गया है उससे उस आदिमानव के संघर्षों, आल्हादों, आनंद के क्षणों, अलावों के इर्द-गिर्द नृत्यों तथा शिकार को मार लेने की विजय के भावों का विशेष रूप से प्रस्फुटन एवं लय का भाव परिलक्षित होता है। इनमें एक उल्लेखनीय चिन्त्र दीर्घकाल वृषभ का है जो पूरक शैली में विनिर्मित है। मुख सींग संलग्न है तथा ग्रीवा भाग का सर्वथा अभाव है। पृच्छ विषाण की पतली नुकीली आकृत्ति, अंगविन्यास, समाविष्ट

कोणमयता इस चित्र के मुख्य आधार है। मूल चित्र की लम्बाई लगभग 1.50 मीटर है।

चीबरनाला से प्राप्त शैलचित्रों में विभिन्न प्रकार की मानवाकृतियों जो रेखाओं द्वारा अलंकृत शिरोभूषा, हाथों में लिए परशु और दण्ड, बगल में भागता श्वान, बैल के सींग खींचता परशुधारी मानव, गाड़ी खींचते दो बैल तथा धनुर्धारी मानव का सजीव चित्रण का अंकन किया गया है। संभवतः धनुर्धारी दस्यु है, पास में खड़ा व्यक्ति दोनों हाथों को ऊपर किए है तथा अन्य भय के कारण तेजी से भाग रहे हैं।

समूह नर्तन मोड़ी शैलाय में अंकित किया गया है। निचले भाग में 28 व्यक्ति सह नृत्य कर रहे हैं तथा ऊपरी भाग में दूसरा नृत्य समूह केवल छः व्यक्तियों का है। उपर्युक्त चित्र में मुखिया विशेष भूषा से सज्जित है। एक हाथ में धनुष-बाण तथा अन्य समीपस्थ व्यक्ति पकड़े हुए हैं। दोनों नृत्य समूहों के ऊपरी भाग में पांच पशु हैं, जिन्हें पीछे से एक व्यक्ति लाठी से भगा रहा है। पशुओं के भागने के दृश्य में सहज-सजीवता ताड़ के पत्तों का मोर जैसा लगता है। इस प्रकार के नृत्य आदिवासी क्षेत्रों में आज भी प्रचलित है।

सुजानपुरा एवं काँवला के शैलाश्रयों में सारस, मयूर, कुकुम युक्त बैल, हिरण तथा अश्व आदि विचित्र प्रकार के पशुओं एवं पक्षियों का सजीव आलेखन मिलता है। सीत्ताखड़ी में कत्थई रंग में निर्मित गभीर्णी गाय का चित्र है। इसमें पेट के अन्दर दिखलाया है। चित्रों में सींगों अथवा कानों का द्योतन रेखाओं से किया जाता है।

यदि रेखांकन जनजातीय समुदायों की चित्रांकन कला के प्रेरणा स्रोत बने और इन्हीं रेखांकनों का परिष्कार लोक चित्रावण है। ऐसा कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि आदिवासी लोक चित्रावण ही लोक चित्रावण का मूल बीज स्वरूप है। यह कह सकते हैं कि आज जो लोक चित्रावण हम आंगनों, भीतों या अन्यन्त्र देखते हैं वे सभी आदिम मानव की शैल रेखाकृतियों का ही विकसित स्वरूप है। विवाह आदि अवसरों पर हम जो किसी समय चित्र छवियाँ देखते थे। यथा घट्टी पीसते ब्याईजी और चाबुक फटकारती ब्याणजी, भोर, मुर्गा, तोता, देरानी जेठानी, बारात, चौबदार, बैंडबाजे, झाड़ू लगाती महिला, फर्राश, गाय-बैल, रिद्धि-सिद्धि, हाथी सवारी, बग्धी, घोड़ा आदि चित्रावण आदिवासी चित्रावण का क्रमिक विकास ही तो है। आदिवासी ग्रामांचलों की यह भींत चित्रांकन आदिवासी चित्र छवियों से बल पाकर नगरों की सोच समझ और काल समय का विकासमय स्वरूप है।

आदिवासी समुदायों में चित्राकन रेखामय है। सुराती, जरोती, माया जैसे रेखा धारित रेखांकन रेखान उसी आदिमानव द्वारा प्रेरित शैल रेखाकनों का ही स्वरूप है। उसी परंपरा में, अनेक भित्ति चित्र, मांडने, रंगोली, अल्पना, एपन, चौक पूरना, मेंहदी गोदना, वस्त्र छपाई एवं पर्व-उत्सवों पर चित्रांकित विभिन्न आकृतियों आदि के छविमय रेखांकन उसी आदिमानव द्वारा चित्रांकनों का ही प्रेरक स्वरूप है।

हरियाली अमावस्या पर चित्राई गई रेखाओं की ज्यामितिक परंपरा जिरोती, जिराती का रंग विधान भी अत्यंत सहज एवं सरल होता है। गेरू, हल्दी, नील, काजल, खड़िया, पत्तियों का हरा रस ही इसे रंगायित करने के रंग होते हैं। यह सब सहज उपलब्ध रंग है। लगभग इन्हीं रंगों का उपयोग आदिमानव ने किया था। आदिवासी समुदाय उस परंपरा का निर्वाह आज भी कर रहे है। यह बात भिन्न है कि नगरीय वातावरण में जिरोती का श्रृंगार रंग-बिरंगी पन्नियों से किया जाने लगा है।

जिरोती से पांचवे दिन नागपंचमी के अवसर पर द्वारों के दोनों ओर काले रंग से नाग मांडा जाता है। नाग पूजा आदिवासी समुदायों में सर्वत्र होती है। लगभग सभी आदिवासी गाँवों में नाग देवरे पाए जाते हैं। वनांचल में रहने के कारण नागभय सदा बना रहता है। इसी कारण नागपूजा कर उसे प्रसन्न करने का यह का यह प्रावधान सर्वत्र आदिवासी समुदायों में पाया जाता है।

संझा के सोलह श्रृंगार- संझा मालवा निमाड़, राजस्थान की तरह किशोरियों का सर्वप्रिय त्योहार है साथ ही लोक का श्रेष्ठ समायोजन सावन के सुहावने मौंसम की बहार छा जाने के बाद ही यह त्योहार अपनी पूरी रंगीनियाँ बिखरता आता है। बाग बगीचों, खेत-खलिहानों में तरह-तरह के फूल खिल जाते हैं। नदियों का जल निर्मल हो जाता है तब किशोरियों का यह उमंग भरा त्योहार आ जाता है।

ग्राम बालाएँ, गोबर की पतली-पतली रेखाओं से आकृतियाँ उकेरती है और उन पर फूलों की पंखुड़ियाँ चिपकाती हैं। पूरी दीवार एक कला वीथिका हो जाती है। कुवार माह के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से प्रारंभ होकर अमावस्या तक संझा का त्योहार मनाया जाता है। गोबर में रंग-बिरंगी पंखुडियों के माध्यम से सुन्दर संयोजन नन्हीं नन्हीं बालिकाओं की ही विशेषता है गोबर में कलात्मक अभिव्यक्ति का ऐसा सुन्दर समायोजन और कहाँ मिल सकता है? प्रतिदिन अगल-अलग कृति बनाने से ऐसा लगता है मानो सांझी, कला की पाठशाला है, रोज ही नई-नई आकृतियाँ उकेरी जाती हैं। सोलह दिन तक चलने वाले इस आयोजन को संझा के सोलह श्रृंगार ही कहे जा सकते हैं। इनमें से छाबडी, लाडू, घेवर, चौपड़, दिवाली, आणों, गणपति बप्पा की दुकान, बाजूट और किल्लाकोट प्रमुख हैं। बालाएँ प्रति संध्या संझा की आरती करती हैं। मोहल्ले में प्रत्येक घर वहाँ संझा मांडी जाती है। गीत गाती हैं और प्रसाद पाती है। सोलहवें दिन संझा को बेटी की तरह आदर-सत्कार के साथ विदा दी जाती है और फिर साल भर संझा के आने की प्रतीक्षा करती रहती हैं।

आदिवासी समुदायों में गोर्धन पूजन दीवावली के दूसरे दिन किया जाता है। उसके प्रतीक स्वरूप गोधन की दो युग्म आकृतियाँ बनाई जाती है। आसपास और भी कई महिलाओं को पूजन करते हुए दिखाया जाता है। इसके पास गोलाई में एक देवी का चित्र बनाते हैं जो श्रावण मास की भुजरिया की प्रतीक है। दो आकृतियों के अतिरिक्त कहीं-कही एक छोटी आकृतियाँ मांडी जाती है। यही परपरा मालवा और राजस्थान में प्रचलित हुई।

बुंदेलखण्ड में 'मामुलिया किशोरियों के व्रत हैं। बारीक बारीक गोबर की रेखाओं की सुन्दर आकृतियाँ बनाकर उस पर फूल-पत्तियाँ लगाकर पूजा

करती है। गीत गाती और आरती करती हैं। बड़ी श्रद्धा के साथ मामूलिया को विदाई देती है। मालवा निमाड़ की तरह इसका समय भी श्राद्ध पक्ष ही होता है। मामुलिया किशोरियों का चित्रकर्म के प्रति लगाव का ही परिणाम है कि आज तक उसी उत्साह उमंग से बनाया जाता है। बालिकाएँ चित्रकारिता की और ऐसे आयोजन से ही उन्मुख होती हैं। इसके अलावा बुन्देलखण्ड में कुलदेवी का चित्रण, नई बहू के आने पर 'काहेबर' का चित्रण प्रमुख रूप से प्रचलित है।

छत्तीसगढ़ अंचल में लोक चित्र अवश्य बनाए जाते हैं आज तक इस दिशा में कोई प्रामाणिक कार्य नहीं हो पाया है। इसलिए निश्चित रूप से कहना मुश्किल है कि छत्तीसगढ़ में कौन-कौन से लोक चित्र प्रचलित हैं। पिछले वर्ष छत्तीसगढ़ के सर्वेक्षण में मुझे ग्रामवासियों की दीवारों पर बने कुछ रेखांकन दिखाई दिए। जानकारी प्राप्त करने पर पत्ता लगा कि यह 'सवनाही' चित्र हैं। 'सवनाही हरियाली अमावस्या को बनाई जाती है। सावन की आगवानी स्वरूप यह सवनाही है वैसे इसके बारे में छत्तीसगढ़ी लोगों में मान्यता प्रचलित है। सवनाही के बनाने से घर में किसी प्रकार 'खट विकार या बाधाएँ नहीं आती हैं। सवनाही एक बंधन है।

सवनाही गोबर से बनाई जाती है हरियाली अमावस्या की सुबह घरों की किशोरियों या महिलाएँ नहा धोकर घर की बाहरी दीवारों पर हाथ की अंगुलियों से सवनाही का अंकन करती है, घर की चारों दीवारों को गोबर की दोहरी रेखाओं से घेर देती हैं फिर मुख्य द्वार के पास वाली दीवार पर इसी रेखा के ऊपर कुछ मनुष्य आकृतियों, शेर तथा अन्य पशु, फूल आदि की आकृतियों उकेरती चलती हैं। आकृतियाँ प्रारंभिक शैल चित्रों से मिलती-जुलती होती हैं। इन आकृतियों में प्रागेतिहासिक चित्रों का साम्य भी मिलता है।

गाँव की महिलाएँ दीवारों पर सजावट के लिए मिट्टी से चित्रांकन करती हैं, जो कई वर्षों तक घर की शोभा बनी रहती है। कुछ महिलाएँ गीली दीवार पर रस्सी को दीवार पर चिपका देती है। मिट्टी सूख जाने पर रस्सी निकाल ली जाती है, आकृति में रस्सी के चित्र साफ दिखाई देते हैं, समग्र रूप से ये आकृतियाँ सौदर्यपूरक हैं। रेखांकन दृश्यकला भले ही मुँह से नी बोली हो किंतु मुँह से बुलवाती अवश्य है।

छत्तीसगढ़ में भी कई चित्र हो सकते है इस दिशा में अभी शोध और खोज की आवश्यकता है। बघेलखण्ड में अपनी लोक चित्र परम्परा है। श्री मार्तण्ड प्रसाद मिश्र ने बघेली लोक चित्रण पर काम किया

जनजातीय समुदायों की गोबर कला में कुल देवता, गोवर्धन थापना, पिड़िया, संझा, नागदेवता, इन्द्र देवता तथा गोबर के भाँति-भाँति के अलंकरण पक्षी, खिलौने आदि बनाना भी आदिवासी लोक कला का एक विचित्र कलापक्ष है। इसी प्रकार जब अपने घरों को भीतों व तल आंगन को गोबर मिट्टी से लीपकर उसकी दीवारों चौखटों पर खड़िया से रेखांकन कर बारीक बारीक बुदकियों से कई आकृतियाँ बनाकर गृह सज्जा करना, मोर, तोता, कबूतर आदि पक्षी बनाकर अपना पक्षी प्रेम प्रकट करना आदिवासी समुदायों के रेखांकन को ऐसी सुन्दर छवि देता है मानो कोई पर्व-त्योहार आने वाला हो। अपने कच्चे घरों को इतना सुन्दर बनाना आदिवासी जन का सौंदर्यबोध प्रकट करता है। उन्हें निहार कर मन प्रफुल्ल हो उठता है। दृष्टि चमत्कृत।

कला को मुख्यतः तीन वर्गों में बाँटा है 1. संस्कार से संबंधित चित्र। 2. विशेष अवसरों पर बनाए जाने वाले चित्र। 3. मदिरों और मकानों में बनाए जाने वाले चित्र। बघेलखण्ड में विभिन्न अवसरों पर बनाए जाने वाले चित्रों में दुआरी चित्र, तेलबाती चित्र और दूल्हादेव के चित्र प्रमुख है।

दुआरी चित्र- दुआरी चित्र का अर्थ दरवाजे पर बनाए जाने वाले चित्रों से है, इसमें द्वार के दोनों पार्श्व की दीवारों पर एक-एक मनुष्याकृति बनाई जाती है। रेखाओं पर क्रास देकर आदमी की सरल आकृतियाँ बना दी जाती है, शैल चित्रों में जिस तरह की मनुष्याकृति बनाई पाती है ठीक उसी तरह इसलिए इसे देखने में आदिम मानव की कला का आभास होता है। आकृतियों गेरू से बनाई जाती है। इनकी कलाकार घर की महिलाएँ होती है, पूर्ण पवित्रता से ये चित्र बना कर इसकी पूजा की जाती है, दुआरी चित्र विवाह के समय दोनों पक्षों के यहाँ बनाए जाते हैं। दुआरी चित्र विभिन्न देवी देताओं के आह्वान के लिए बनाया जाता है। पूजा के पश्चात चित्र को 'कास' की एक अटिया से ढक दिया जाता है। कहीं-कहीं गेरू के साथ अन्य देहाती रंगों का प्रयोग भी किया जाता है। एक प्रकार से ये चित्र मंगल कार्य के सूचक भी है।

कोहबर या तेलवाली चित्र - कोहबर वर-वधू के मिलने का प्रथम मिलन स्थल है। जहाँ नव-वधू अपने हाथ से कुछ चित्र बनाते है। कोहबर घर का कोई कमरा होता है। जहाँ पर परिवार की बड़ी महिलाएँ पहले से 'कोहबर' का चित्र बना देती हैं। इसी के पास में नव वधू को कुछ चित्र बनाने होते हैं। जिसकी वर और वधू जोड़े से पूजा करते हैं। चित्रों पर घी या तेल की धार छोड़ते हैं। घी या तेल स्नेह का प्रतीक है। उसी समय वर चित्र पर चढ़े हुए एक दीपक की दोनों बत्तियों को एक करता है। जिसे बाती मिलाना कहते हैं। इस क्रिया के पूर्व वर को 'नेग' दिया जाता है। कोहबर के मुख्य रूप से मंगल कलश एक चौखट में बनाया जाता है। एक ओर पुरुष आकृति और दूसरी ओर स्त्री की आकृति बनाई जाती है। कोहबर के ऊपर अक्सर पढ़े-लिखे लोगों के घरों में ये पंक्तियों लिख दी जाती हैं-

"अमर रहे यह अहिवात तुम्हारा,
जब लगि-गंग-जमुन की जल धारा।"

कोहबर नव वधू के लिए चित्रकला की पाठशाला है। वहीं वह भविष्य में होने वाले विवाह में कोहबर का चित्र नव वधू को सिखलाती है।

दूल्हा देव के चित्र - विवाह के अवसर पर ही दुल्हादेव की पूजा की जाती है, देल्हादेव का चित्र कोहबर के समीप उकेरा जाता है। कहीं-कहीं इस चित्र में चार हाथ भी बनाए जाते हैं। दूल्हादेव का चित्र गेरू और अन्य रंगों से बनाया जाता है।

नाग पंचमी के चित्र - नागपंचमी का त्योहार लगभग पूरे देश में मनाया जाता है। प्राचीनकाल से हमारे यहाँ नाग पूजा का प्रचलन है। बघेलखण्ड निमाड़, मालवा की तरह नाग पंचमी के दिनमान का रेखांकन

किया जाकर नाग पूजा का प्रचलन है। बघेलखण्ड में नौ नागों की पूजा की जाती है। मुख्य द्वार के दोनों तरफ नाग के चित्र गोबर से बनाए जाते हैं। नाग भी घर की महिलाएँ बनाती हैं। कहीं-कहीं कागज के केनवास पर काले तथा अन्य रंगों से नाग बनाकर पूजा की जाती है। नागों की पूजा दूध, बिनौला और बतासे आदि से की जाती है। नागों के समीप कटोरे में दूध पिलाती हुई स्त्री का रेखांकन किया जाता है। द्वार के दोनों ओर भीतों पर सरवन (श्रवण) चित्र प्रायः राजस्थान, मालवा तक चित्राया जाता है।

आदिवासी संस्कृति मुख्य रूप से बस्तर, झाबुआ तथा सरगुजा, होशंगाबाद, छिंदवाड़ा के सुन्दर वन प्रांतों में फैली हुई है। म.प्र. के आदिवासियों की चित्रकला बहुत समृद्ध है। जो दृष्यकला का मोरम रूप है।

झाबुआ के पेमा फत्या के पिथौरा, बस्तर के बेलगूर के आदिवासी चित्र इस बात के प्रमाण है कि आदिवासी लोगों की चित्र परंपरा अत्यधिक समृद्ध है, आदिवासियों में गुदने का प्रचलन सर्वाधिक है। सभी आदिवासी महिलाएँ तथा पुरुष गुदना प्रिय होते हैं। यह चित्रांवन तो चलचित्रों की लुभावनी कला है।

कोरकू चित्र कला- कोरकू आदिवासी कई भित्ति चित्र बनाते हैं विशेषकर ये लोग कार्तिक माह में दीपावली के अवसर पर चित्र बनाते हैं। कार्तिक सुदी एकम् को मवेशियों को सोलह श्रृंगार करने के बाद शेष बचे हुए रंगों से कोरकू घरों की दीवारों पर गोदनी (गूदनी) भित्ति चित्र तथा महुआ की शराब देने का प्रचलन है। कोरकू चित्रों के मुख्य रंग हिरमची, सफेद खड़ी, गेरू, कोयला आदि होते हैं।

छत्तीसगढ़ और बघेलखण्ड के जन-जीवन में लोक चित्रों का कम महत्व नहीं है। सांझी के चित्र न केवल छत्तीसगढ़ और बघेलखण्ड में बनाये जाते हैं परंतु यह तो महाराष्ट्र में भुलाबाई, गुजराती सांझी, राजस्थान, मालवा में संझा के नाम से जानी जाती है। इसी प्रकार नाग पूजन की प्रथा संपूर्ण भारत में है। कुलदेवी का भित्ति चित्र संपूर्ण भारत में विवाहोपलक्ष में बनाकर पूजा जाता है। दीवावली के मांडने हर क्षेत्र में उकेरे जाते हैं।

ये आदिवासी चित्र विचित्र छवियाँ भीतों पर आँगनों में, गुदनों के रूप में युवतियों के कोमल-सौष्टिव अंगों पर, युवाओं की बाहों, ठुड्डियों, कनपटियों पर तथा और भी देहागों पर हम आदिवासी चित्रावण को देख सकते हैं। चित्रावण केवल पढ़कर आनंद विभोर होने की ही कला नहीं है। यह साक्षात देखकर आनंद प्राप्त करने का उत्सवीय आनंद है। इन चित्रांकनों को देखकर वाह! वाह !! कह देने की जो उमंगित अभिव्यक्ति है उसे तो शब्दों में कैसे कहा जा सकता है? हमारी दृष्टि और दृष्यकला का ऐसा छायांकन और कहाँ?

इसके लिए एक बार केवल एक बार ही सही आदिवासी ग्रामांचल में जाकर इन चित्र-विचित्र छवियों को देखना-बूझना और अर्थाना होगा। यह जानना होगा कि इन आड़ी-टेढ़ी और ज्यामेतिक रेखाओं के समायोजन से कितने भाव प्रकट करने की और कैसे भाव प्रकट करने की अपार एवं अनोखी क्षमता है।

एक प्रश्न बार-बार उठता है कि, सृष्टि में सबसे पहला चित्र किसने बनाया होगा। मैं एक सांस लिए कहता हूँ पहला चित्र किसी आदिम मानव ने अपनी गुफा की दीवार पर गेरू खड़िया या कोयले से उकेरा होगा।

अपनी मादा से जोड़ा बनाने की आनंदानुभूति को उसने स्मृति में रखने के बजाए गेरू आदि का टुकडा लेकर एक भाव रेखाचित्र बना दिया होगा। ऐसे ही किसी मादा ने भी किया होगा तो भी क्या आश्चर्य हो सकता ? किसी गर्भिणी स्त्री ने अपनी प्रसव पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए अपनी ही उस दशा को लेकर उसे स्तनपान करने का सुखद अनुभव को उसने शैल भित्ति पर जीवत कर दिया हो। हो सकता है शिकार के पीछे दौड़ने के श्रम को अथवा श्रम की विजय का प्रदर्शित करने के लिए शिकार को कंधे पर लाद लाने का दृश्य उसने शैल भीतों पर स्थाई कर दिया हो। कारण जो भी रहा हो। प्रथम चित्र तो उस आदिमजन ने ही उकेरा था। इसमें कोई भी संशय नहीं है।

दृश्यकला के ये रूपांकन छवियाँ हमें एक मनोरम सौंदर्य के साथ-साथ हमें अपने सास्कृतिक वैभव से भी परिचित करवा देती है।

सम्पर्क: निदेशक- मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान
मनासा जि. नीमच (म.प्र)
मो. 9424041310

कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल (म.प्र.)

गौरवशाली 13वाँ वर्ष

कलाकारों के उत्थान, प्रोत्साहन और सम्मानजनक मंच उपलब्ध कराने हेतु
कलाओं और कलाकारों को समर्पित संस्था 'कला समय'

0755-2562294, 9425678058 kalasamay1@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

कला लेख

लोक संस्कृति और लोक चित्र की परम्परा

डॉ. सुमन चौरे

डॉ. सुमन चौरे साहित्यिक, सांस्कृतिक और लोकोत्सवी परिवेश द्वारा माँ के गर्भ से ही संस्कारित एवं दीक्षित हैं। औपचारिक शिक्षा ग्राम कालमुखी, खण्डवा और भोपाल, म.प्र. में। एम.ए., पीएच.डी. शोध का विषय : निमाड़ी लोकगीतों में निहित सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का अनुशीलन संप्रति : लोक संस्कृति कर्मी, निमाड़ी लोक साहित्य पर शोधात्मक कार्य, लेखन, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी प्रसारण : दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से लोक संस्कृति, कविताओं, एवं बालकथाओं का प्रसारण सम्मान : मध्यप्रदेश लेखक संघ, मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति एवं हिन्दी भवन सहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित...

जड़ें जितनी अधिक गहराई से भूमि को पकड़े रहती हैं, वृक्ष उतना ही विशाल और अडिग रहता है। ऐसे ही जो समाज जितनी अधिक परम्पराएँ-रीतियाँ लेकर चलता है वह उतना समुन्नत होता है। परम्पराएँ लोक संस्कृति और समाज का दर्शन कराती हैं। पर्व-त्योहार-व्रत, लोककथा-वार्ता, लोकगीत, लोकगाथा, लोकचित्र, कव्हाड़ा, कैणात आदि में लोक परम्पराओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। लोकसंस्कृति और परम्पराओं के मूल घटकों के महत्त्व को जानने और उनकी सारगर्भिता को समझने के लिए हमें छह-सात दशकों पहले की यात्रा करनी होगी।

मध्यप्रदेश के पश्चिम-दक्षिण हिस्से में निमाड़ का विशिष्ट सांस्कृतिक क्षेत्र है। यहाँ की बोली 'निमाड़ी' है। निमाड़ की सांस्कृतिक परम्पराओं और संस्कारों को पूर्ण करने वाली रीतियों के प्रमुख अवयव हैं लोक चित्र।

जीवन चक्र में व्यक्ति जीविकोपार्जन से जुड़े दैनिक कार्यों के साथ ही विविध सृजन कार्य भी करता है। इससे उनकी सोच-विचार की क्षमता का विस्तार होता है। उनका परिवेश सौंदर्य से भर जाता है। लोक नृत्य, लोक गाथा आदि के साथ लोक चित्र ऐसी कला है जो व्यक्ति के जीवन को सुन्दरता से जोड़ती है और एक नया रचनात्मक आयाम देती है। यहाँ निमाड़ की समृद्ध लोकचित्र परम्परा की रूपरेखा संक्षेप में प्रस्तुत है।

निमाड़ की परम्पराएँ लोकगीतों, लोककथाओं, पर्वों-वार्ताओं आदि में रंजी बसी हैं, ऐसे ही लोक चित्र हैं। जो द्वार से ही निमाड़ की समृद्ध परम्पराओं के साक्षात दर्शन करा देते हैं। साधारण से साधारण दिखने वाले घर के कवळों (द्वार के दोनों ओर की दीवाल) पर कुंकुम की पाँच टिपकी, सात्या (स्वस्तिक), सोगिटा (मिट्ठू) आदि बनाया जाता है। ये केवल बिन्दु या चित्र ही नहीं हैं अपितु मंगल की कामना के परिचायक हैं।

निमाड़ में लोक चित्र बनाने कला बालिकाओं और फिर महिलाओं के हाथों में ही रही हैं। चित्र बनाकर पूजना नारी की अपनी ही कला को पूजित करना है, जैसे गीतों के विषय में कैणात है- **'जो हीद मंS वो गीद मंS'** अर्थात् जो हृदय में है वह कण्ठ से फूट पड़ता है ऐसे ही कला के विषय में भी एक कैणात है **'जो चित मंS ओ भीतS मंS'** यानी जो विचार या चित्त में है वह दीवाल पर चित्रित होता है। निमाड़ में बनाए जाने वाली लोकचित्र

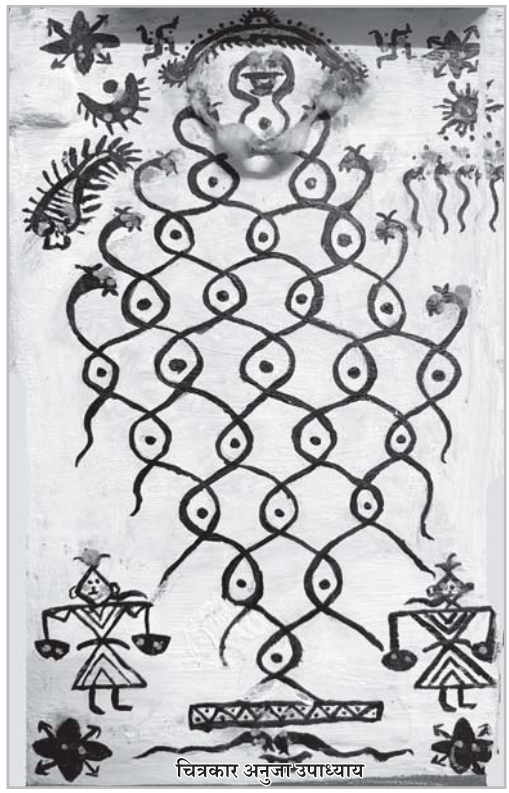

चित्रकार अनुजा उपाध्याय

कला को गर वर्गीकृत करें तो ये कवळों पर, आँगन में और द्वार के बाहर और गोठान के द्वार पर बनाए जाते हैं।

निमाड़ में बनाए जाने वाले लोक चित्रों को समझने की दृष्टि से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। एक भीत पर बनाए गए चित्र 'भित्ति चित्र' और दूसरा भूमि पर बनाए गए चित्र 'भू चित्र'। भीत पर जो चित्र बनाए जाते हैं, उनमें मुख्य हैं- जिरोती, नाग, गणपति, कुळदेवी, हाथा, अम्बा, होरया,

सरवण, चाँद-सूरज-सितारा, साँझा फूली। मुख्य भू चित्र हैं- कळश, नरवत, दशहरा, गोवर्धन, भाई बीज आदि।

पाँच टिपका –

निमाड़ में पाँच टिपका को बड़ा ही शुभ माना गया है। यह सबसे सरल भीति और भू अलंकरण है। इसके लिए हथेली पर कुंकुम रखते हैं, उसपर पानी की बूँदें डालकर कुछ गीला कर लेते हैं। इस गीले कुंकुम को सीधे हाथ की अंगुली से पाँच टिपकियाँ लगाई जाती हैं। एक बीच में और उसके चारों कोनों पर एक-एक। घर की जमीन लीपी हो, पुताई हो, घर धोया हो या पूजा-पाठ हो, इन जगहों को कोरा नहीं छोड़ते हैं, उस जगह पर पाँच टिपकियाँ लगाई जाती हैं। यहाँ तक की नए सामान जैसे सूपड़ा, छाबड़ी (टोकनी), खटिया, बैलगाड़ी आदि पर भी पाँच टिपकी दी जाती है। मन्दिर में में भी पूजा करने जाते हैं तो वहाँ की दीवाल पर भी पाँच टिपकी दी जाती है, तभी पूजा का विधान पूरा होता है।

अम्बा -

विवाह के अवसर के भित्ति चित्रों में आम्र वृक्ष का विशेष स्थान है। मण्डप की बेळई अर्थात् खम्ब को गेरु से पोता जाता है। मण्डप में चार बेळई होते हैं। इसपर पीसे गए चोखे (चावल) को पानी में मिलाकर तैयार किए गए घोल से अम्बा (आम्रवृक्ष) बनाते हैं। इसमें वृक्ष के तने पर चार या छह पत्ते ऊपर की ओर बढ़ते हुए बनाते हैं, और एक पत्ता शीर्ष पर ऊँचा उठा हुआ बनाते हैं, जिस पर एक चिड़िया बनाते हैं। चारों बेळई पर अम्बा बनाते हैं। विवाह में मण्डप प्रतिष्ठा के दिन मण्डप छाने की लोक रीति होती है, तब ही घर की बहन बेटियाँ घर के कवळों पर गेरु से आम्रवृक्ष बनाती हैं। इसमें पाँच या सात पत्ती बनाते हैं। आम्रवृक्ष पर कोयल और सुग्गा (तोता) बनाए जाते हैं। मण्डप में आम्रवृक्ष की डाल और पत्ते भी छाये जाते हैं फिर भी अम्बा का चित्र बनाया जाता है। विदाई की वेला में 'अम्बा छीछणू' की रीति लोकगीत के साथ मण्डप उस एक बेळई के चित्र के चारों ओर होती है, जिसपर ताम्बे या पीतल के पाँच चरवे एक के ऊपर एक रखे जाते हैं। सबसे बड़ा चरवा सबसे नीचे और सबसे छोटा सबसे ऊपर रहता है। ये चरवे खाली रहते हैं। सबसे बड़े वाले चरवे पर कुंकुम में पानी की बूँदे मिलाकर अम्बा का चित्र बनाते हैं। यह अम्बा के चित्र की महत्ता दर्शाता है।

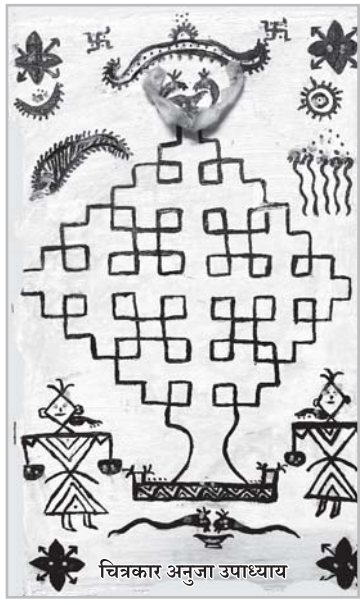
चित्रकार अनुजा उपाध्याय

सात्या –

निमाड़ में स्वस्तिक या सातिया को ही सात्या कहते हैं। सात्या किसी भी शुभ कार्य का सम्पादन करने के लिए दीवाल या भूमि पर सात्या बनाया जाता है। यह शुभ मंगल का प्रतीक है अत: कभी-कभी गणेश रूप में भी इसे पूजते हैं। बहुधा कुंकुम में अल्प मात्रा में जल मिलाकर तैयार किए गए गाढ़े घोल में सीधे हाथ की अंगुली का अग्रभाग डुबोकर भूमि या दीवाल पर सात्या बनाते हैं। यह गणित को जोड़ के निशान की तरह होता है। एक एक काड़ी को बढ़ाकर उनका मुख दाहिनी दिशा की ओर मोड़ दिया जाता है। इसे 'सीधा सात्या' कहते हैं, कभी-कभी लोग अपनी कामना पूर्ति के लिए गणेशजी के या देवीजी सम्मुख 'उल्टा सात्या' अर्थात् जोड़ के निशान पर एक एक काड़ी को बाँयी ओर मोड़कर सात्या बनाते हैं। अपनी मनोकामना पूरी होने पर उस उल्टे सात्या को दाहिनी ओर मोड़ कर प्रार्थना करते हुए देवी-देवता का आभार मानते हैं। धरती या दीवाल पर जल छिड़ककर उस स्थान का शुद्धिकरण किया जाता है। फिर सात्या बनाया जाता है।

दोहरा सात्या –

यह आठ रेखाओं से बनाया गया सात्या होता है। चार रेखाओं वाला सात्या 'इकहरा सात्या' या ' तार सात्या' कहलाता है, जबकि आठ रेखाओं वाले सात्या को 'दोयरा सात्या' कहलाता है। दोहरा सात्या भी दीवाल और भूमि पर बनाया जाता है। इसे सफ़ेद खड़ी, गेरु या कुंकुम से बनाया जाता है। यह पूजा में कलश रखने और विवाह में कलश-पाट रखने के लिए बनाते हैं। इसे कहीं-कहीं 'चौक पाट' भी कहते हैं।

सूरज, चाँद और तारा -

निमाड़ के माँडणों में ऊपर की ओर दाहिने हिस्से पर सूरज माँडा (चित्र बनाना) जाता है, ऊपर ही बाँयी ओर अर्धचन्द्र बनाते हैं। इस अर्धचन्द्र पर षटकोण आकार के तारे बनाए जाते हैं। तारामण्डल के बिना कई माँडणे अधूरे माने जाते हैं।

कलश-

जब भी कोई मंगल कार्य होता है तब कळश बनाया जाता है। जुवार के आटे से अष्ट (आठ) खड़ी और अष्ट आड़ी रेखाओं से कळश की सुन्दर आकृति माँडी जाती है। इन रेखाओं से चार कळश और मध्य में जलाशय निर्मित होता है और चार मन्दिर के मण्डल बनते हैं। कलश अगर किसी विशेष अवसर के लिए बनाया जाता है, तो उस कार्य के पूर्ण होने के उपरान्त उसे दोनों हाथों से समेट लिया जाता है, ताकि वह उसपर किसी के पैर न पड़ें।

जिरोती -

जिरोती एक अनुपम भित्तिचित्र है। हरियाली अम्मोस यानी श्रावण मास की अमावस्या को मनाया जाने वाला जिरोती त्योहार निमाड़ के महत्त्वपूर्ण त्योहारों में से एक है। इसे जिरोती अम्मोस भी कहते हैं। इस अवसर पर घर के अन्दर के कवळो पर जिरोती बनाई जाती है। इसे घर के भीतरी कक्ष जैसे देवगृह, चौका (रसोईघर), भण्डारगृह आदि कक्षों के कवळों पर लाल माटी या गेरू पोतकर चित्र बनाने के लिए वर्गाकार पट तैयार करते हैं। इस पट

पर परिवार की रीति के अनुसार तय रंगों से चित्र बनाए जाते हैं। चन्दन या हल्दी-चावल के घोल से चित्र माँडे जाते हैं।

परकोटे के मध्य में एक सुन्दर-सा बाजूट (पालना या आसन) बनाते हैं। इसके ऊपर एक लूमदार छत्र भी बनाते हैं। पालने पर पुतलियाँ यानी जिरोती माता की बनाई जाती हैं। परिवार की परम्परानुसार तीन या पाँच या फिर सात पुतलियाँ बनाते हैं। इनके साथ इनकी संतानों की भी एक-एक पुतलियाँ बनाई जाती हैं।

नाग -

जिरोती अम्मोस के पाँच दिन बाद पंचमी पर भित्ति पर नाग बनाए और पूजे जाते हैं। इस पंचमी को 'नाग पाँचव' या नाग पंचमी कहते हैं। जिरोती के गेरुवे कवळे के ऊपर सफ़ेद खड़िया से जिरोती के आकार का पट तैयार किया जाता है। इसे 'नाग का कवळा' भी कहते हैं। नारियल की नट्टी (सूखे नारियल का खोल) को जलाकर, उससे बने कोयले को गाय के कांचे दूध (ताजा कच्चा दूध) में पत्थर पर घिसकर काला रंग तैयार कर लिया जाता है।

दोनों कवळों पर जिरोती एक समान होना चाहिए लेकिन नाग अलग-अलग बनाए जा सकते हैं। नाग चित्र विविध प्रकार के होते हैं और इनके नाम भी अलग-अलग होते हैं। बिनका (बिन्दू) का नाग, जोड़ी का नाग, फण का नाग, चौकड़ी का नाग, दोयरा फळ का नाग, दस फण का नाग, कुण्डळई का नाग, कट्टस पेटी का नाग, सरफण का नाग आदि नामों से नाग के चित्र बनाए जाते हैं।

साँझा फूली -

'साँझा फूली' गोबर से भीत पर बनाई जाने वाली निमाड़ की प्रसिद्ध लोक कला है। कई अन्य क्षेत्रों में भी यह बनाई जाती है। नाम में अंतर आ जाता है। यह क्वारी कन्याओं द्वारा क्वार मास के कृष्ण पक्ष की पड़वा (प्रतिपदा) से अम्मोस तक पन्द्रह दिनों तक भीत पर प्रतिदिन बनाई जाती है। गोबर से घर की दीवाल पर बड़ा सा परकोटा बना लिया जाता है। इस विशाल परकोटा में चौदह दिनों तक रोज एक-एक नया परकोटा बनाकर उसमें साँझा फूली बनाते जाते हैं। बड़े और छोटे सभी परकोटा में दाहिनी ओर सूर्य और बायीं ओर अर्धचन्द्र और तारा बनाते हैं। कलाकृतियों में फूलों से भरी छाबड़ी (डलिया), कुआँ-बावड़ी, तालाब, जल से भरा घड़ा, पीपल पान (पीपल के पत्ते या वृक्ष), सात्या, मोर, मिट्ठू, गाय, घोड़ा, मांजरी, दूर्वा, आम, तुलसा क्यारा, पंखा, पाँच हाथे, बैलगाड़ी झूले पर झूलते हुए भाई-बहन आदि शामिल हैं। पन्द्रहवें दिन या सोहलवें संजा होने के पूर्व परकोटा सहित साँझाफूली को दीवाल से निकालकर जलाशय में इनका विसर्जन किया जाता है। जिस दीवाल पर साँझा फूली निकालते हैं, उसे खाली नहीं छोड़ते हैं। चौदह दिनों तक बनाई जाने वाली साँझा फूली को निकालने के तुरन्त बाद उस दीवाल पर गणेशजी बना देते हैं। गणेशजी बनाने के बाद दीवाल से निकाली गई साँझा फूली का विसर्जन करने जाते हैं। साँझा फूली बनाने के बाद रोज ही बालिकाएँ अपने परिवार के सुख और समृद्धि की कामना करती हैं।

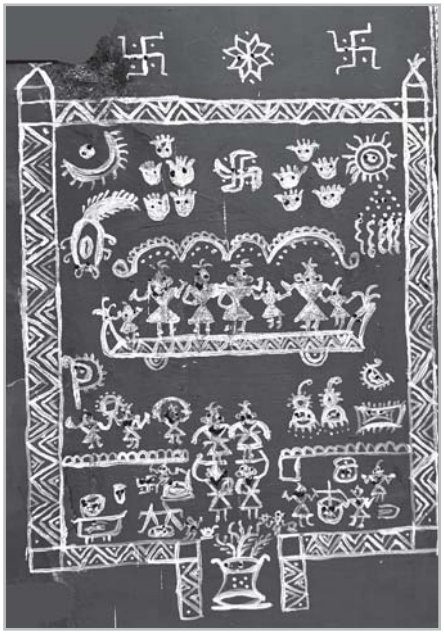

जिरोती चित्रकार अनुजा उपाध्याय

दसरायो (दशहरा) –

दशहरा त्योहार के दिन बनाए जाने वाले भूचित्र को निमाड़ी में 'दसरायो माण्डणों' कहते हैं। यह घर के आँगन में माँडा जाता है। पानी में सफ़ेद माटी या खड़ी को घोलकर बहुत गाढ़ा घोल बना लिया जाता है। कूची को खड़ी के घोल में डुबो-डुबोकर गेरुवे पट पर दसराया बनाया जाता है।

सबसे पहले दोहरी समान्तर रेखाओं से एक परकोटा बनाया जाता है। परकोटे के मध्य में तीन घोड़े बनाए जाते हैं। प्रथम घोड़े पर बैठे हुए रामचन्द्रजी, मध्य के घोड़े पर बैठी हुई सीता माता और पीछे चल रहे घोड़े पर बैठे हुए लक्ष्मणजी बनाते हैं।

दशहरे के परकोटे के ऊपर की रोखाओं पर क्वारी गाय के गोबर के दस थपोली बनाकर रखी जाती है, जो चक्राकृति होती है। घर के पुरुष लोग दसराया से पास दीप लगाकर, दसराया पर कुंकुम, हल्दी और गिलकी के फूल चढ़ाकर पूजा करते हैं। गिलकी को बारिक टुकड़ों में काटकर इसमें मिश्री मिलाकर प्रसाद लगाते हैं। आरती उतारी जाती है।

गोवर्धन –

निमाड़ में दीपावली-पर्व-समूह का मुख्य पर्व होता है 'गोधन पड़वा' या 'गावेर्धन पड़वा'। इस दिन भोर से ही पशुओं का शृँगार किया जाता है। मुख्य प्रवेश द्वार पर गोबर से गोवर्धन बनाये जाते हैं। लोग गोबर का पहाड़ बनाकर उसको मानव आकृति प्रदान करने के लिए उसमें आँख, नाक और कान बनाते हैं। इसे गोवर्धन पर्वत कहते हैं। कई लोग गोबर के तीन बड़े-बड़े पुतले बनाते हैं।

निमाड़ की लोकसंस्कृति ओज और उत्साह से परिपूर्ण है। इसमें अपने परिवेश के प्रति कृतज्ञता का भाव है। अपने अनुभवों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने की ललक भी विभिन्न परम्पराओं और लोक चित्र सहित विविध कलाओं के माध्यम से स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। यह प्रवाहमान लोक संस्कृति है जो कि समय की गति के साथ सार तत्त्वों को अपने में सम्मिलित करती चलती है। समाज को पोषित करती रहती है और स्वयं समृद्धतर होती रहती है।

सम्पर्क: 13, सर्मथ परिसर ई-8, एक्सटेंशन, बावड़िया कला,
पोस्ट ऑफिस त्रिलंगा, भोपाल- 462039 मो. 09424440377

समकालीन दृश्य कला कें परिप्रेक्ष्य में छायांकन कला की भाव भूमि और उसका योगदान

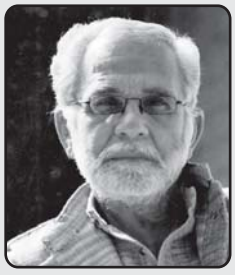

मनोहर काजल

जन्म- अगस्त 1946 दमोह (मध्यप्रदेश) शिक्षा- एम.ए.हिन्दी, समाज शास्त्र प्रथम कहानी 'बेड़नी' धर्मयुग के दीपावली विशेषांक 70 में प्रकाशित चर्चित और उसके साथ साहित्य और कला यात्रा की शुरुआत.. धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कहानी, साक्षात्कार, सारिका, मधुमती, सरिता, मुक्ता, कहानीकार और मनस्वी जैसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अब तक 100 के लगभग कथा रचनाओं का प्रकाशन साहित्य के साथ-साथ चित्राकन एवं छायांकन में गहरी अभिरुचि वर्ष 2000 में कोडक एशिया के सेलिब्रेशन ऑफ मिलेनियम प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार... 2003 में इंटरनेशनल फोटोग्राफी अवार्ड का IPA अवार्ड (लॉस एंजिल्स)...भारतीय ग्राम्य जीवन से सम्बंधित अनेक कलात्मक चित्र यूनिसेफ यूनेस्को, द्वारा चयनित... पुरस्कृत तथा टाइम, लाइफ जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित... भारतीय वायुसेना में पंद्रह वर्षों तक विशिष्ट तकनीशियन... अब सेवा निवृत्त है।

आधुनिक युग में छायांकन एक सशक्त कला विद्या के रूप में उभरी है... कैमरे के अविष्कार के कारण पश्चिमी जगत के यथार्थवादी कलाकारों को अपनी शैली बदलने के लिए मजबूर होना पड़ा... और आधुनिक अमूर्त कला का जन्म हुआ... वहीं इस छायांकन कला के विकास के साथ सर्जनाशील कलाकारों को अपनी अभिव्यक्ति को एक सशक्त माध्यम भी मिला और उसने आज एक अपनी अलग पहचान भी बनाली है...

इसमें कोई दो मत नहीं है। आज विश्व की बड़ी-बड़ी आर्ट गैलरियों के साथ भारतीय कला-जगत में छायांकन को भी एक स्वतंत्र कला विधा का स्थान मिल गया है। और जहाँगीर जैसी आर्ट गैलरियाँ छायांकन की प्रदर्शनी आयोजित करने लगी है। देश में छायाकारों को भी पद्मश्री और पद्म विभूषण जैसे राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित किया जाने लगा है। मध्य प्रदेश में भी वामन ठाकरे और भालू मोंढे को पद्मश्री से सम्मानित किया गया है जो इस क्षेत्र की बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है।

वैसे अभी भी कुछ लोग छायांकन को कला मानने के विरूद्ध भी है। लेकिन किस बिन्दु पर पहुँचकर छायाकार और चित्रकार की रचना एक सी हो जाती है। या उसमें एक दूसरे का प्रभाव झलकने लगता है। यह वहीं महसूस कर सकता है। जो सृजन प्रक्रिया से वाकिफ है। कैमरा चलाना और शटर दबाना कठिन नहीं है। और आज मोबाइल के जमाने में हर कोई फोटो ग्राफर बन गया है और अपने को कलाकार फोटो ग्राफर मानने लगा है। पर सच तो यह है कि छायांकन को एक खूबसूरत कलाकृति में डालना और उसे किसी कविता में मर्म तक ले जाना सभी को नहीं आता। इसमें वही छायाकार सफल होता है। जिसके भीतर संवेदना का धनत्व अनुभव और कल्पना की क्षमता पल प्रतिपल बदलते रुपाकारों के प्रति सजगता और इस सबके संयोजन की क्षमता होती है और सच बात तो यह है कि जो कलाकार कल्पना करना नहीं जानता वह कलाकार नहीं कारीगर है।तथा कारीगर और कलाकार में बहुत फर्क होता है।

वैसे आजकल बहुत से लोग छायांकन को पेंटिंग से जोड़कर देखने लगे हैं। क्योंकि दोनों का दृश्य प्रभाव लगभग एक ही होता है पर यदि सृजन के चिंतन की दृष्टि से देखा जाए तो दोनों की सृजन प्रक्रिया एकदम अलग है। इस संबंध में मैं छाया जगत के एक ख्याति नाम फोटोग्राफर श्री मिंतर बेदी की टिप्पणी का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूंगा जो उन्होंने मुंबई के सर जे.जे. स्कूल के कला सेमिनार में एक पत्रकार के प्रश्न पर की थी। प्रश्न था क्या आप छायांकन को भी चित्रकला की तरह ललित कला मानते हैं? सृजन प्रक्रिया की दृष्टि से तो उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से कहा था यदि तुलना करना चाहे तो आप छायांकन की तुलना कविता से कर सकते हैं लेकिन मेहरबानी करके चित्रकला से कदापि मत कीजिए। फिर उन्होंने अपनी बात को अपने ढंग से समझने की कोशिश भी की थी।

कला की दुनिया के परिचित सभी माध्यमों में छायांकन ही एक ऐसी कला है जिसमें प्रेरणा के क्षण से अभिव्यक्ति तक सबसे कम समय लगता है।Franction of second में छायाचित्र अपनी अभिव्यक्ति को संपूर्णता से प्राप्त कर लेता है इसीलिए वह पूर्ण अश्वस्ति के साथ कहता भी है।Time is Formed कविता और संगीत की सर्जना का भी लगभग ऐसा ही क्षण होता है।उसकी तुलना में एक चित्रकार का कार्य अधिक विस्तृत परिश्रम साध्य

तथा गंभीर होता है। किसी कृति के सृजन के पहले चित्रकार को निरीक्षण कल्पना और चिंतन करके उसे सूत्रबद्ध करना होता है। कार्य प्रारंभ करने के पहले अपने सामने की भौतिक दुनिया के साथ-साथ आध्यात्मिक जगत के प्रति भी जागरूक होना पड़ता है। दोनों को मिलाकर और उसके संपर्क में आकर ही वह अपना संदेश प्रोषित करने के लिए पूर्णरूपेण समर्थ हो पर है और तुलना के इसी बिंदु पर पहुंचकर चित्रकार गीतिमयता और सहजता में छाया का से पिछड़ जाता है जहां तक छायाकार का प्रश्न है वह प्रेरणात्मक क्षण से अभिव्यक्ति के क्षण तक बहुत कम समय में अपनी कल्पना दृष्टि की सादगी और विश्वसनियता को बनाए रख सकता है और अपने अनुभव को विशुद्ध रूप में प्रस्तुत कर सकता है।

इस माध्यम का यही गुण छायाकार को ज्यादा विश्वसनीय और संवेदनशील और सामने के समय के प्रति ज्यादा जागरूक और क्रियाशील बनता है। क्षण आया और गया और वह कृति कैमरे की तीसरी आंख के माध्यम से एक कालांकित कालजयी का रूप ले लेती है। बड़े-बड़े छायाकारो का Work आप देखें तो आपको भी यह एहसास होगा कि उन्होंने सामने के समय को पूर्ण सजग और जागरूक रहकर ही क्षण को पकड़ा है। और अपने छायाचित्रों के माध्यम से समकालीन कला जगत में अपनी एक पहचान बनाई है। विश्व स्तरीय और भारत के महान छायाकारों का काम यदि आप सहज गंभीरता से देखे तो अपने आप ही आपको उन चरणों की कल्पना और कालकथा का अनुभव हो जाएगा। उन चित्रों में कलाकार की सोच, अभिव्यक्ति प्रेरणा और कंपोजिशन्स की समझ अपने आप ही छायाचित्र को एक कालजयी कृति में बदल देती है।

अपने देश के कुछ महान छायाकारों का उल्लेख भी करना चाहूंगा जिन्होंने विश्व स्तरीय छायांकन जगत में अपनी जगह बनायी है और देश का नाम ऊंचा किया है। श्री ए.एल सैयद, सी राजागोपाल, श्री बेनुसेन दत्ताखोपकर, श्री ओ.पी. शर्मा, एल.आर. कोठारी, श्री वामन ठाकरे, श्री रघुराय, श्री एस पाल आदि ज्यादातर छायाकार पत्रकार और चित्रकार ही रहे हैं।

वैसे पेंटिंग जहां कलाकार का इंट्रोवर्ट बनती है। वही फोटोग्राफी उसे एक्सट्रोवर्ट कलाकार का अंतर्मुखी होने से कार्य चल सकता है लेकिन छायाकार का नहीं उसका बाह्य मुखी होना जरूरी है। इसके लिए कैमरे के साथ-साथ जिंदगी की गतिशीलता को समझना जरूरी होता है। अपने को समेट कर नहीं बिखेर कर जीना और भटककर बहार तलाशना होता है। तभी कुछ ऐसा रचपाना संभव होगा। जो दूसरों को बेचैन कर सके इसलिए इस क्षेत्र में पत्रकार ज्यादा सफल रहे। पर इससे छायांकन कला का महत्व कम नहीं हो जाता कला की अपनी शास्त्रीय कसौटियां होती है। संपूर्ण कसौटियों में कसकर कोई कृति कालजयी कृति का स्थान प्राप्त करती है। फोटोग्राफी के भी अपने भापदण्ड है। उन पर उतर कर ही कोई फोटोग्राफ एक कलाकृति का स्थान ग्रहण करता है।

छायांकन कला की दुनिया में इस प्रकार की फोटोग्राफी को एक नया नाम दिया गया है।(Pictorial Photography) जिसमें उसके अपने अलग शास्त्रीय सिद्धांत है जो इस कला को अधिक विश्वसनीय और संप्रेषणीय बनाते हैं। इनको मैं अंग्रेजी भाषा में ही अद्भुत करना ज्यादा उचित समझूंगा।

(1) Selectivity
(2) Simplicity
(3) Mood
(4) Composition
(5) Lighting in the picture
(6) Harmony
(7) The emotional Content
(8) Technical Excellence

इन सब गुणों की अर्थवत्ता अपनी अभिव्यक्ति में समेट कर ही कोई छायाचित्र एक कलाकृति बनता है और कला जगत में अपनी पहचान बनाता है। यह सब लिखने का प्रमुख महत्व यही है कि समकालीन दृश्यकलाओं में छायांकन कला भी एक मानसिक और आत्मिक स्तर पर एक अपना दृश्यानुभव है जो हमारे आत्मानंद कीतुष्टि करता है और हमें जीवन की सहजता और सरलता से जोड़कर मानवीय जीवन की गरिमा उत्कृष्टता और उन्मुक्तता से भरकर आल्हादित करता है और 'सत्यम शिवम सुंदरम' की अवधारणा से अनुप्राणित भी करता है। कला सृजन का यही अन्तिम सत्य है।

संपर्क : काजल कला वीथिका, पाठक कॉलोनी, कृति फर्नीचर के बगल में,
किल्लाई नाका, दमोह, मध्य प्रदेश-470661
मो. 8989964897

■

यक्षिणी

विनय कुमार

विनय कुमार प्रतिष्ठित मनोचिकित्सक तथा संवेदनशील कवि हैं। उन्होंने पटना मेडिकल कॉलेज, पटना से एमबीबीएस और एमडी (साइकियाट्री) की शिक्षा प्राप्त की। वर्तमान में वे मनोचिकित्सक के रूप में मनोवेद माइंड हॉस्पिटल, पटना में कार्यरत हैं। कविता के क्षेत्र में भी उनकी सक्रिय उपस्थिति है। उनके प्रमुख कविता-संग्रहों में "क़र्ज एक तहज़ीब एक दुनिया है" (ग़ज़ल, 2004, 2024), "आम्रपाली और अन्य कविताएँ" (2014), "मॉल में कबूतर" (2015) तथा "पानी जैसा देस" (2022) उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त "यक्षिणी" (2019) तथा "श्रेयसी" (2025) जैसी काव्य-श्रृंखलाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने "आत्मज" नामक काव्य-नाटक तथा "एक मनोचिकित्सक के नोट्स" और "मनोचिकित्सा संवाद" जैसे गद्य-ग्रंथ भी लिखे हैं।

संपादन के क्षेत्र में भी उनका योगदान उल्लेखनीय है।

यक्षिणी के प्रथम संस्करण की भूमिका से

स्मरण नहीं कि दीदारगंज की यक्षी को पहली बार कब देखा और न यही कि शहर के इकलौते संग्रहालय में आते-जाते कितनी बार। संग्रहालय-भवन के प्रवेश द्वार से घुसो तो बायीं तरफ़ बने पहले ही हॉल के द्वार पर खड़ी महाशया हर आगंतुक को अपनी ट्रेडमार्क पॉलिश की आभा से सम्मोहित कर लेती थीं। यह लिखते हुए अपना मुड़-मुड़ कर देखना याद करता हूँ और साथ में यह भी कि बिना बाएँ मुड़े भी कई बार वहाँ से आगे गया। गरज यह कि वह मेरे लिए एक जानी-पहचानी सुंदर मूर्ति-भर रह गयी थी। किंतु जब नगर को एक नए संग्रहालय का उपहार मिला और उसके वहाँ से स्थानांतरित होने का समाचार छपा तो हॉल नम्बर - १ के अग्रभाग के सूनेपन की कल्पना से मन सिहर उठा और एक कविता सम्भव हुई। कथा सम्भवत: यहीं ठहर जाती अगर कुछ दिनों बाद नवनिर्मित बिहार संग्रहालय में जाने का अवसर न मिलता। वहाँ पहुँचा तो देखा - महाशया नये संग्रहालय के विमल प्रकाश में किसी साम्राज्ञी की तरह शोभायमान हैं। उन्हें देखकर गति की अनुभूति हुई। लगा, सामने से चली आ रही हैं। मैंने कहना चाहा कि इन्हें देखना अपने आप में एक उत्सव है जिसे उन्होंने मानो सुन लिया।

मौर्यकालीन चौरी-वाहिनी यक्षिणी

.....मूर्ति वहीं रह गयी किंतु उसकी चेतना की ऊष्मा और अरुणिमा मेरे अचेतन को तरल और रक्ताभ करती हुई मेरे साथ चल पड़ी। मगर यह बात तब कहाँ पता थी। अब पलटकर देखता हूँ तो याद आता है कि कैसे एक के बाद एक कविताएँ लिखता चला गया - जैसे मेरे भीतर ग़ालिब के नाड़े की गाँठें खुल रही हों या एनोडाइन खाकर सोए कॉलरिज के मानस में छटपटाता कुब्ला ख़ान ज़ैनडू में बर्फ़ीली गुफ़ाओं वाले आनंद के धूप-स्नात गुंबद की तामीर करवा रहा हो। कुछ भी सायास नहीं। डेढ़ महीने में लगभग सत्तर प्रतिशत। इसी बीच अंतिम अंश कथांतर भी, जो सिर्फ़ ढाई घंटे में। क्लीनिक के काम और इंडियन साइकायट्रिक सोसाइटी के प्रकाशनों के सम्पादन-कार्य के बीच, दुनियादारी के सारे ऊबड़-खाबड़ के बीच और मेरे अपने अज्ञान और आंतरिक अवरोधों के पर्वतों के बीच - पानी और हवा की तरह। मुझसे, मगर मेरे नियंत्रण में भी नहीं। दो-चार को छोड़कर सब की यूँ झलकीं जैसे कोई आभा अन्धकार की सांद्रता में निश्चिन्त रात की बंद पलकों के द्वार पर दस्तक दे। इस रचना-यात्रा के लिए मैं प्रेरणा और पाथेय रही इस अहेतुक आभा का आभारी हूँ।

मैं युद्धों और मानवीय गरिमा की सदी से चलता हुआ वस्तुओं और वासनाओं की सदी में आया हूँ और यहीं अस्त भी होना है मुझे, मगर समय और मनुष्यता की यात्रा तो अनगिनत क्षितिजों के पार तक होनी है। इस चेतन मंच पर सजग खड़ा रहने के बावजूद रचनात्मक पृच्छा का यह आयोजन शायद इसीलिए हो पाया कि **'आधुनिक गुफ़ाओं की आग से झुलसी जिज्ञासा दुआर पर खड़ी चँवरधारिणी के साथ सृष्टि के सबसे पुराने सतघरवा की ठंडक के रहस्य' जानना चाहती थी।**

यक्षिणी से कुछ कविताएँ

1.

जिस जगह तुम पायी गई
वह दीदारगंज है
अलकापुरी नहीं
ढूँढो तो भारत के नक़्शे पर
अलकापुरी कहीं नहीं है
न वो प्रजाति जिसे कहते हैं यक्ष

अब तो वे शिल्पी भी नहीं न वो कला
यह सूचना भी नहीं चिरयौवने
कि मगध के किस ग्राम में मायका तुम्हारा
और चौबीस सौ बरस पहले का समय
तो समय का सर्जक भी नहीं ला सकता

मगर तुम हो
जैसे दीदारगंज है
जैसे चुनार है उसके सैकत पत्थर हैं
और मेरी आँखें हैं तुझे निहारतीं
और मेरी भाषा का पानी
जिसमें तुम्हारी परछाइयाँ हैं !

2.

तुम उन दिनों की रचना हो सुभगे
जब ऋतुयें अनुकूल होंगी
और गगन से गिरता जल
इतना निर्मल इतना मीठा
कि पर्वतों ने भी पिया होगा छककर
और इतनी मुलायम हो गई होगी
पाहन की प्राकृत काया
कि पौरुष के संस्कृत हाथों ने गढ़ी होगी
मन के आँगन में काँधे पर चँवर धरे
खड़ी मादकता की मोहक प्रतिमूर्ति
हट्ट रे हथौड़े
छेनियों की तराश तो क़तई नहीं यह !

दिलीप शर्मा का रेखाचित्र

प्रमोद सिंह का रेखाचित्र

3.

मुमकिन है वो बिलकुल ऐसी ही होगी
जैसी यह मूर्ति
सोचता है हर देखनेवाला
और एक बीती हुई घाटी में छलाँग मरता है
समझता तो है
कि वह अब राख और मिट्टी में भी नहीं
दो हज़ार साल से ज़्यादा बीत गए
इतने सालों तक कोई भी देह बच नहीं सकती
मगर मन नहीं मानता
सबको यही लगता है
कि उसमें चुटकी-भर जान अब भी बाक़ी है

कैसे होंगे वे हाथ और वे उँगलियाँ
जिनकी चुटकियाँ पकड़ सकती थीं प्राण
और युगों से निष्प्राण पत्थरों में
प्रवाहित भी कर सकती थीं

इसे देखना सिर्फ़ देखना नहीं
देखा जाना भी है
इतने संक्रामक हैं इसके पुरातन प्राण
कि एक दृष्टि और सृष्टि के सबसे पुराने अंधकार में
दिखने लगते हैं अंग, आकार और आकृतियाँ
सुनाई पड़ती हैं वे आवाज़ें जिन्हें कभी सुनना चाहा होगा
उम्र और रास्तों के मोड़ों पर
किसी से दूर किसी के साथ!

4.

किसी भी पत्थर से नहीं फूट जाती कोई नदी
पहाड़ से हिलगाए और तराशे पत्थरों से तो क़तई नहीं
मगर कुछ तो है कि तुम्हें देखते ही
कानों में नदी का उद्गम बज उठता है

जानता हूँ कि तुम्हारे भीतर कोई मौसम नहीं
समय भी नहीं कि घूमे पहिया

और आकाश भी नहीं कि घिर आएँ साँवले सलोने मेघ
मगर कुछ तो है कि तुम्हें देखते ही
हृदय के भीतर बारिश होने लग जाती है

इतना भी कवि नहीं मैं कि तुझमें ढूँढूँ
अपनी प्रागैतिहासिक प्रेमिकाएँ
न इतना अंधविश्वासी कि बाँधू तुझे
किसी पिछले जन्म के उड़ते उत्तरीय से
मगर कुछ तो है कि स्वयं को
देह और इतिहास के बाहर देखने लग जाता हूँ!

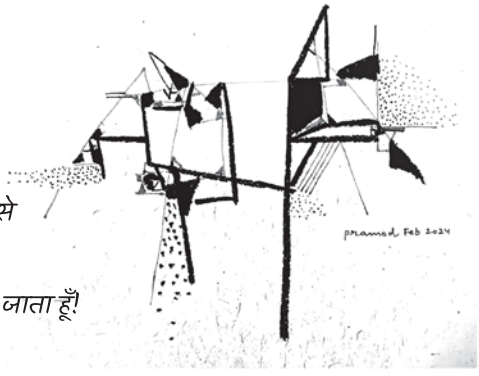

प्रमोद सिंह का रेखाचित्र

5.
माना कि तुम पत्थर की हो
मगर पत्थर नहीं
तुम्हारे मुख से फूटती प्रसन्नता पत्थर नहीं
न वह छाया ही
जो शिल्पी के मानस से नसों तक आई
और पत्थर पर प्रकाश की लिपि में बस गई
और मैं भी तो पत्थर नहीं

मेरी जीवित आँखें मेरा मोद-विह्वल मन
और तुम्हारी चेतन कौंध
और शिल्पी की मनस्तरंगें सब एक हैं
आज यहाँ अभी !

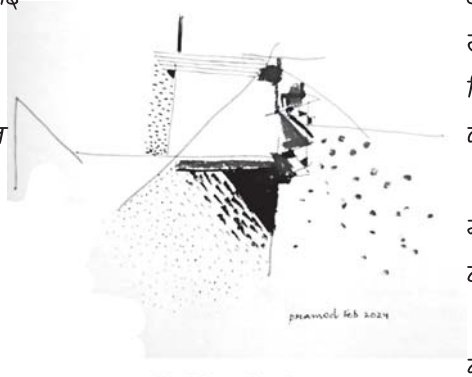

प्रमोद सिंह का रेखाचित्र

6.
अगर मैं भी लिख दूँ
कि दीदारगंज वाले तुम्हारी पीठ पर कपड़े धोते थे
पटक-पटक कर साबुन और सोडा देकर मिचकारते हुए
तो सहानुभूति की नरम और गीली आवाज़ें
अतीत की हज़ारों साल गहरी गुफा के
गर्भगृह में भी सुनाई देंगी
और किसी रात शिल्पी अवश्य आएगा
और मेरी नींद के द्वार पर
कारण बताओ नोटिस चिपका जाएगा

कि अबे ओ नागर कवि
क्या समझते हो तुम गाँववालों को
किसने तुम्हें समझा दिया
कि वे इतने मूर्ख होते हैं
कि पाट और पीठ का अंतर नहीं समझते
और फिर वे स्त्रियाँ जिनकी उम्र ही बीती
बच्चों और जच्चों की पीठ की मालिश करते
क्या अंधी थीं सबकी सब
किस धोबी-पाट में इतना पुष्ट जूड़ा
और ऐसा लहराता गजनौटा होता है भाई ?

7.
अगर तुम्हारे होंठों से फूटती मीठी उजास
कैसी भी कला की ऊँचाई है
तो मैं गिरना चाहूँगा
तुम्हारी सम्भावित हँसी के झरने के साथ
कला और जीवन के किनारों के बीच बहना चाहूँगा
और अगर बहते-बहते मिल गया मौर्य-घाट
तो शिल्पी से पूछना चाहूँगा
कि इस शीतल मुस्कान को
वसंती ठहाके में बदलने का क्या लोगे मेरे भाई

मैं पुराविद् नहीं कि
दीदारगंज को पकड़कर बैठ जाऊँ

कवि हूँ
किसी भी शिशिर के वसंत
और किसी भी मुस्कान के ठहाके के लिए
कहीं भी जा सकती है मेरी भाषा !

8.
अजायबघरों के धूसर गलियारों में खीझ उठने वाले
मैडम टुशाड्स और मॉल के मुरीद भी
तुम्हारी चमक देख रीझ जाते हैं
कंधे उचकाकर कहते हैं: गुड मेंटेनेन्स
और आगे बढ़ जाते हैं
उन्हें इस बात से क्या लेना

पॉलिश नयी है कि पुरानी
उन्हें पुरातत्त्वविदों के ज्ञान से क्या मतलब
कि यह पॉलिश दो हज़ार साल पहले की है
और उनके सपने में शिल्पी क्यों जाए
यह समझाने कि यह उन हाथों की पॉलिश है
जिनमें कई पीढ़ियों का वास रहा
उन हथेलियों की पॉलिश है
जिनके रंध्रो से पेट का प्यासा अम्ल रिसता रहा
उस असंतोष की पॉलिश है
जो अपनी संतान को सँवारते पिता में होती है
और उस गँवई संतोष की भी
जिसे लालच के किसी भी नगर का रास्ता नहीं मालूम

तुझे जब भी देखता हूँ विचित्रे
पॉलिश की चमक और मुखर
उसका रहस्य और गहरा
मगर इस बात से उन्हें क्या लेना
जो तुम्हारे उद्गम के कुहरे में भी अशर्फ़ियाँ छिपाते हैं !

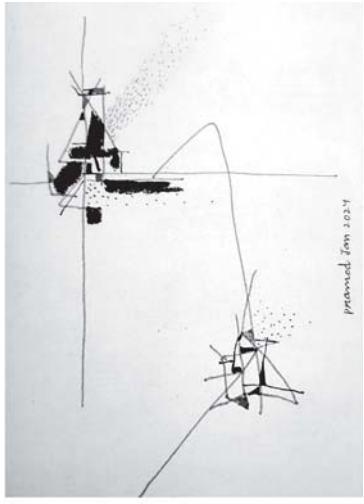

प्रमोद सिंह का रेखाचित्र

९.
लिखते-लिखते एक दिन अचानक ख़याल आता है
कि गठन जिसकी ऐसी ग्रीवा ऐसी सुडौल
कैसे बोलती होगी वह
कैसी होगी उसकी आवाज़
सुरीली तो अवश्य
पर पता नहीं
वीणा कि रबाब
सारंगी कि सितार
कि मन के मृदंग की गहरी धमक
कि सृष्टि की नाभि से उठती हुई
तबले के दाएँ की पुकार
कि वक्ष की आँधियों से आह्लादित
बाएँ का बम-बम

कैसी होगी उसकी आवाज़
सोचता हूँ दो कविताओं के बीच
और एक दिन चेतना की गोधूलि से पुकारता हूँ

उत्तर स्वप्न में मिलता है
मदिर आवेग से उच्छल एक मीठी आवाज़
जैसे रबाब की साँसों में तबले की धड़कनें
उलझ सी गई हों !

सम्पर्क: एन.सी.116, एस.बी.आई. ऑफ़िसर्स कॉलोनी
कंकड़बाग, पटना-800020
ई-मेल: dr.vinaykr@gmail.com
मो. न.: 9631144236, 9431011775

मध्यप्रदेश की चार विभूतियों को 'पद्मश्री' सम्मान

'कला समय' परिवार एवं 'हॉबी समूह' की ओर से
हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ

श्री मोहन नागर जी (सामाजिक कार्य) | श्री भगवान दास रैकवार जी (खेल) | श्री कैलाश चंद्र पंत जी (साहित्य एवं शिक्षा) | डॉ. नारायण व्यास जी (पुरातत्व)

नुमाईश और गमला

डॉ. चन्द्रशेखर काले

डॉ. चन्द्रशेखर काले समकालीन भारतीय कला जगत के प्रतिष्ठित चित्रकार, कला-संगठक एवं सांस्कृतिक कार्यकर्ता हैं। आपने एम.ए., पी-एच.डी. तथा राष्ट्रीय शिक्षा से संबंधित उच्च अध्ययन किया तथा देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर से डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की है तथा श्रद्धैय वाकणकर जी के प्रिय शिष्यों में से एक रहे हैं। देश-विदेश में 45 से अधिक समूह एवं एकल प्रदर्शनियों में सहभागिता करते हुए आपने यू.एस.ए., थाईलैण्ड, नागालैण्ड सहित अनेक स्थानों पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। आपको चार राष्ट्रीय एवं तीन राज्य स्तरीय सम्मानों सहित अनेक संस्थागत पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। अंतरराष्ट्रीय कला शिविरों और उत्सवों में सक्रिय भागीदारी के साथ आपकी कला पर प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित हुए हैं।

डॉ चंद्रशेखर काले की कलाकृति

साफ़-सुथरे
मधुमालती और कचनारों के
चित्रों से सजी
नई टिकी के कमरे में रख
वह गमले-सा गमला
चौड़ी हरी पत्तियों के
घुँघराले से हँसता
चौकीदार-सा तना
सफ़ेद फूलों से भरा
चार दिन पहले कैसे
हँस रहा था।

नुमाइश की शुरुआत पर
किशोर होकर
दबे-दिन,
इक्का-दुक्का
समझदारों-सी दिखती
भीगी-सी आँखों से
वह भी बतियाता रहा।

तीसरे दिन
नुमाइश में दो चित्रों की तरह
पानी को तरसता रहा,
न माली आया न ही दर्शक।

नुमाइश के चौथे दिन
पूरी तरह सूनी पड़ी
रविवार की कला दीर्घा में
जब मैंने उसकी ओर देखा
दीर्घा में लगे चित्रों से भी अधिक
उदास पाया।
उसकी उत्साही हँसी
छप्पर हो चुकी थी,
तनी हुई शाखा एक ओर
झुक गई थी।
उसकी बची-खुची पत्तियाँ
दर्द भरी मुस्कान
बिखेर रही थीं।

डॉ चंद्रशेखर काले की कलाकृति

वैशाली और ग्वेर्निका

महावीर वर्मा

समकालीन कलाकार महावीर वर्माविगत 20 वर्षों से चित्रण कार्य में संलग्न हैं।आपकी अनेक एकल प्रदर्शनियां आयोजित हुई है तथा समूह प्रदर्शनों में सक्रिय भागीदारी रही है। राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कारों से समादृत होने के साथ आपके चित्रों कादेश की कई साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं एवं पुस्तकों पर आवरणों पर चित्र के रूप में प्रकाशन हुआ है।समकालीन कला एवं कलाकारों की कला पर लिखने के प्रयास के साथ कई राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर के कला शिविरों में सक्रिय सहभागिता की है।देश और विदेश के संग्रहों में आपके चित्रों का संग्रह हुआ है।वर्तमान में कला अध्यापक के रूप में बच्चों के बीच सक्रिय रूप से कार्यरत हैं।

वैशाली : एक विचार
वैशाली कोई शहर नहीं था,
वह एक प्रयोग था—
मनुष्य द्वारा मनुष्य पर
विश्वास का।
चोल वंश में,
जब सत्ता
मिट्टी के पात्रों में ढलती थी,
और निर्णय,
हाथों से नहीं,
समूह की चेतना से होते थे।
मौर्य धम्म बोलता था
भीड़ के भीतर,
अशोक तलवार छोड़कर
मनुष्य बनता था,
अकबर युद्ध से नहीं
सुलह- ए -कुल से राज चलाता था।
इतिहास फिर भी,
खून की भाषा सीखता रहा।
हज़ारों साल बीते,
पर वैशाली
बना रहा एक अपवाद
जिसे दुनिया दोहरा न सकी।
पश्चिम ने भी चाहा था।
वैशाली होना,
पर साम्राज्यवाद के जहाज़
लोकतंत्र से भारी निकले।
ग्वेर्निका
एक शहर नहीं रहा,
एक चीख बन गया।
पिकासो ने रंग नहीं लगाए,

पाब्लो पिकासो की प्रसिद्ध पेंटिंग 'ग्वेर्निका'

उसने घाव रख दिए कैनवास पर।
घोड़ा भाग नहीं रहा,
वह इतिहास से बचने की कोशिश
कर रहा है।
साँड़ शक्ति नहीं,
अहंकार का अवतार है।
टूटी भुजाएँ,
क्रंदन करती माँ,
क्रांति की असफल प्रार्थनाएँ हैं।
मानवता वहाँ
किसी चित्र में नहीं,
हमारी आँखों में लटकी है।
फिर भी विचार
मरता नहीं वैशाली का,
राख से निकलता है,
हर बार,
किसी संविधान में,
किसी आंदोलन में,
किसी बच्चे के सवाल में—
"क्यों?"
बमबारी से बने ,
काले बादलों के नीचे भी
अंकुरित होता है,
लहू से सींचा गया
लोकतंत्र।
ग्वेर्निका आज भी
फ्रांसिस्को फ्रेंको को नहीं,
हर तानाशाह को डराता है।
कहता है—
तुम शहर उजाड़ सकते हो,
पर विचार नहीं।
वैशाली कोई भूगोल नहीं,
यह चेतना की आदत है—
बार-बार उग आने की।
घास की तरह ।
दुनिया की मुक्ति का
पहला खाका था वह,
और आज भी
हर संघर्ष का
अदृश्य हस्ताक्षर है —
वैशाली का विचार।

स्थाई पता:31, सुरभि परिसर, रतलाम (मध्य प्रदेश) 457001,
मोबाइल : +91 9424020476 ई-मेल: mpverma.2009@gmail.com

सदाशिव कौतुक की कविताएं

सदाशिव कौतुक

सदाशिव कौतुक हिंदी साहित्य के सक्रिय एवं स्वतंत्र लेखक हैं। उन्होंने विभिन्न साहित्यिक विधाओं में लगभग 79 कृतियों का सृजन किया है। उनकी रचनात्मकता को देश की प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर 46 सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।उनकी प्रमुख कृतियों में इंदौर के ग्यारह कवि, निमाड़ की माटी, मालवा की छांव, उबाल तथा चार अंगुल (कविता) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनकी रचनाओं में लोकजीवन, संवेदना और सामाजिक सरोकारों की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है।उनकी पर्यावरण विषयक कविता "मत काटो मेरे हाथ" वर्ष 2007 से महाराष्ट्र के कक्षा 10वीं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है। वर्ष 2019 में मॉरीशस में उन्हें अंतरराष्ट्रीय हिंदी गौरव सम्मान से सम्मानित किया गया। ...

गरीबों के बच्चे हैं हम

जमीन पर कहीं भी सो जाते
हालातों के सग हो जाते
रहने को छोटी सी कुटिया
घर में नहीं पानी की लुटिया
खुशी नदारद गम ही गम.....
गरीबों के बच्चे हैं हम।

2

बासी-ठडी-रूखी-सूखी
छप्पन भोग समझ खा लेते
पेट की आग बुझाने खातिर
जो मिल जाए पचा लेते
किसी दिन खाना नहीं मिलता
आँखें हो जाती हैं नम
गरीबों के बच्चे हैं हम।

3

पैदा होते गरीबी आई झोली में
गिड़गिड़ाना समाहित है बोली में
लाचारी दिखाना आदत में आ गया
अपमानित होना रक्त में समा गया
पता नहीं कब छट पाएगा
हमारी राह में फैला तम.
गरीबों के बच्चे हैं हम।

4

मौसम की मार से लाचार
जब हम बीमार हो जाते हैं
अदरक-कालीमिर्च के काढ़े से
अपने आप ठीक हो जाते हैं
बड़े हुए कि कचरे का बोरा
कन्धों पर लाद लेते हम
गरीबों के बच्चे हैं हम।

5

धूल-मिट्टी में रहकर
हम बड़े हो जाते हैं
मिल जाती जगह जहाँ भी
वहीं निडर सो जाते हैं
शीत हो ग्रीष्म हो
या बरखा झमाझम
गरीबों के बच्चे हैं हम।

6

गरीबी कर हमें लाचार देती है
सपने हमारे मार देती है
मीठा नहीं हो सकता समुद्र खारा
से मर नहीं सकता कभी भी
गरीबी मिटाने का नारा
बेरहमी से मार करता
हमारे तन पर मौसम
गरीबों के बच्चे हैं हम।

7

घायल महंगाई की मार से
जख्म किसे हम दिखलाएँ
कोई नहीं सुनता हमारी
हम रपट किसे लिखवाएँ
राम राज आएगा पाल रखा भ्रम
गरीबों के बच्चे हैं हम।

8

छोटी दुनिया सीमित जरूरत
जीवन में कहीं ठौर नहीं
जीना है जी लेते कैसे भी
दिखाई देता छोर नहीं
पेट खातिर करते कठोर श्रम
गरीबों के बच्चे हैं हम।

9

जब कभी आ जाते त्यौहार
मन में उमंग भर जाते हैं
कुछ अच्छा मिल जाएगा
अपना मन समझाते हैं
घर-घर दस्तक देकर
ढोल बजाते ढम-ढमा-ढम
गरीबों के बच्चे हैं हम।

बहादुर बेटियाँ

बेटियाँ बहादुर होती हैं
होती हैं फूलों की क्यारियाँ
गूँजती आँगन की किलकारियाँ
निडर हो लड़ती हैं मौत से
मौत के खेल से डरती नहीं बेटियाँ
बेबस निहत्थी होकर भी
हरा देती हैं मौत को बेटियाँ
बेटियाँ दुनिया का अंकुर होती हैं
बेटियाँ बहादुर होती हैं।

बार-बार पतझड़ साजिश रचते हैं
निहत्थी बहारों पर वार करते हैं
हरियाली को वीरान शमशान करते हैं
पतझड़ से झरने के बाद भी
कोपलें बन फूटती हैं बेटियाँ
धरती को फिर हरा-भरा कर
हवा में खुशबू भर देती हैं बेटियाँ
बेटियाँ सन्नाटे में बजते नुपूर होती हैं
बेटियाँ बहादुर होती हैं।

कई-कई लोक बसते हैं
बेटियों की इन आँखों में

सद्दियाँ खेलना चाहती हैं
बेटियों की इन बाँहों में
सूरज गोद में खिलाना चाहता है
इसलिए सुबह से शाम तक
पृथ्वी की परिक्रमा लगाता है
बेटियों की देहरी तक किरणें पहुँचाता है
रागिनियाँ बेटियों पर प्रेमातुर होती हैं
बेटियाँ बहादुर होती हैं।

बेटियों की कराह से
धरा करवट बदल सकती है
अन्यायियों को निगलने हेतु
धरती फट सकती है
हवा और मौसम तूफान में
तब्दिल हो सकते हैं
पर्वत भरभरा कर
समुद्र सुनामी बनकर
अन्यायी को निगल सकते हैं
बेटियाँ दुनियाँ का सुर होती हैं
बेटियाँ बहादुर होती हैं।

बेटियों सिर्फ बालाएँ नहीं मलालाएं होती हैं
शीतल चाँद की चौदह कलाएं होती हैं
झाँसी की रानी-मदर टेरेसाएं होती हैं
इन्हें कमजोर न समझो ये ज्वालाएं होती हैं
हिमालय सा गौरव लिए पर्वत मालाएँ होती हैं
ये सिर्फ बेटियां नहीं राष्ट्र की पताकाएँ होती हैं
इनमें रची-बसी सच्ची भारतीय आत्माएँ होती हैं
ये प्रार्थनाओं की अमिट ऋचाएं होती हैं
ये बेटियाँ माँ भारती के गले की मालाएं होती हैं।
किन शब्दों में करें पीड़ा का बखान
बेटियाँ जब हमसे दूर होती हैं
बेटियाँ बहादुर होती हैं
बेटियाँ बहादुर होती हैं।

सम्पर्क: 'श्रमफल', 1520, सुदामा नगर, इंदौर-9
मो.: 98930-34149

आचार्य शंकर न्यास द्वारा बसंत पंचमी पर 'रसो वै सः नृत्यारंभ' का हुआ शुभारंभ

आनंद की परम अनुभूति ही नृत्य है : डॉ. पद्मजा सुरेश
कलाकार नवरस के माध्यम से दर्शकों को 'ब्रह्मानंद सहोदर' तक ले जाता है : शुभदा वराडकर
ब्रह्म स्वयं ही आनंद स्वरुप है,उसी कारण सम्पूर्ण जगत आनंदित हो रहा : स्वामिनी सद्विद्यानंद सरस्वती

भोपाल, आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास, मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग द्वारा 'एकात्म धाम' में बसंत पंचमी के पावन अवसर पर आदि शंकराचार्य विरचित स्तोत्र पर केंद्रित 'रसो वै सः : नृत्यारंभ' का शुभारंभ स्वामिनी सद्विद्यानंद सरस्वती, सुप्रसिद्ध भरतनाट्यम नृत्यांगना डॉ. पद्मजा सुरेश, सुप्रसिद्ध ओडिसी नृत्यांगना शुभदा वराडकर एवं नृत्य गुरु डॉ. लता सिंह मुंशी, साँची विश्वविद्यालय के कुलाधिपति प्रो. यज्ञेश्वर शास्त्री एवं संस्कृति विभाग के अपर मुख्य सचिव शिवशेखर शुक्ला की गरिमामय उपस्थिति में दीप-प्रज्वलन के साथ हुआ। कार्यक्रम की शुरुआत आचार्य शंकर विरचित शारदा भुजंग स्तोत्र **'भजे शारदाम्बामजस्रं मदम्बाम्'** के गान एवं मेधासुक्त के साथ हुई। इस अवसर पर स्वामिनी सद्विद्यानंद सरस्वती ने कहा कि ब्रह्म स्वयं ही आनंद स्वरूप है, उसी कारण सम्पूर्ण जगत आनंदित हो रहा है। भारतीय वाङ्मय के तैत्तिरीय उपनिषद् का उद्घोष 'रसो वै सः' केवल एक दार्शनिक सूत्र नहीं, बल्कि जीवन जीने की उस परम कला का आधार है जो मनुष्य को भौतिकता से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक आनंद से जोड़ता है। यह हमें सिखाता है कि प्रसन्नता बाहरी नहीं, बल्कि हमारे भीतर स्थित उस चेतन तत्व में है जो सदैव आनंदित है। तैत्तिरीय उपनिषद का यह दर्शन हमें **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** से जोड़ता है। यह जगत उस परम आनंद की ही अभिव्यक्ति है। कला, साहित्य, संगीत और प्रकृति में हम जिस सौंदर्य का अनुभव करते हैं, वह उसी **'रसो वै सः'** का एक परिपूर्ण अभिव्यक्ति है। विदुषी शुभदा वराडकर ने कहा कि भारतीय परंपरा में नृत्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि 'साधना' है। 'रसो वै सः' का अर्थ है कि वह परम तत्व आनंदस्वरूप है, और नृत्य उसी आनंद की दृश्य अभिव्यक्ति है। जब एक नर्तक मंच पर थिरकता है, तो वह केवल शरीर का संचालन नहीं करता, बल्कि नवरस के माध्यम से दर्शकों को उस 'ब्रह्मानंद सहोदर तक ले जाता है। डॉ. पद्मजा सुरेश ने बताया नृत्य की मुद्रा, लय, ताल आदि के माध्यम से नर्तक एक ऐसी अवस्था तक पहुंचता है जहाँ केवल मौन विद्यमान है। यही आनंद की उच्चतम अवस्था है। इस अवस्था में नर्तक अपने समक्ष साक्षात् ईश्वर का दर्शन करता है। प्रो. कल्याण मुथुराजन ने शिव के ज्ञानस्वरूप भगवान दक्षिणामूर्ति के रूप व उसमें निहित सांकेतिक ज्ञान को प्रकट किया। उन्होंने बताया कि दक्षिणामूर्ति भगवान सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश आदि सभी को धारण किए हुए है। उन्होंने ज्ञानमुद्रा धारण की हुई है जो जीव और ब्रह्म के ऐक्य का प्रतीक है। डॉ.लता मुंशी ने कहा कि कलाएँ मनुष्य को संस्कारित एवं परिष्कृत करती हैं, उन्होंने कहा कि सात्विक अविनय के लिए चित्त की शुद्धि आवश्यक है। प्रो. यज्ञेश्वर शास्त्री ने आदि शंकराचार्य विरचित स्तोत्र सौन्दर्य लहरी के बारे में अपने विचार व्यक्त किए। अंत में अपर मुख्य सचिव शिव शेखर शुक्ला ने कहा कि आचार्य शंकर सांस्कृतिक एकता न्यास द्वारा भारतीय संस्कृति और वेदांत के मूल्यों को कला के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास सार्थक है। ज्ञात हो कि न्यास द्वारा चयनित प्रतिभागी, विश्व-प्रसिद्ध नृत्यांगना पद्म विभूषण डॉ. पद्मा सुब्रह्मण्यम के मुख्य मार्गदर्शन में तथा नृत्य गुरु डॉ. लता मुंशी से आचार्य शंकराचार्य द्वारा रचित सौन्दर्य लहरी और दक्षिणामूर्ति स्तोत्र पर आधारित भरतनाट्यम् का तीन माह का प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे।

- रपट : शुभम चौहान

समाज के परिवर्तन और समृद्धि के लिये स्व-चेतना आवश्यक

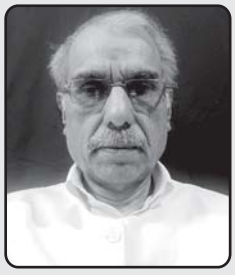

रमेश शर्मा

समय की गति और चुनौतियाँ व्यक्ति, परिवार और समाज जीवन को विसंगतियों से भर देतीं हैं। यदि स्व चेतना जागृत है तो विषमताएँ और अंधकार के बीच भी व्यक्ति और समाज अपनी विशिष्टता बनाए रखता है । यदि किसी विवशता में कुछ समयावधि के लिये कुछ परिवर्तन आया भी तो भी समय के साथ यह स्व चेतना से पुनः जीवन्त होकर अपनी विशिष्टता की ओर लौट आता है।

स्व संस्कृत भाषा में एक धातु है। स्वयं, स्वत्व, स्वाभिमान, स्वावलंबन, स्वभाव, स्वाधीन, स्वदेश जैसे शब्द इसी धातु से बनते है। "स्व" धातु इन शब्दों में उपसर्ग के रूप में प्रयुक्त होती है। इससे जो शब्द बने हैं उन सबका अर्थ तो अलग अलग है उन सब शब्दों का मूल और आशय विशिष्टता लिये हुये है जो "स्वत्व" का ही बोध कराती हैं। "स्व" धातु से बनने वाले शब्द में निजीत्व की विशिष्टता के मानक का संदेश होता हैं। जैसा कि स्वत्व, स्वभाव आदि शब्दों से स्पष्ट हो रहा है। यदि कोई व्यक्ति कोई समाज विशिष्ट है तो वह उसके अपने स्व की चेतना से। प्रत्येक समाज और व्यक्ति समाज में दो व्यक्तित्व होते है। एक दृश्यमान स्वरूप और दूसरा अदृश्यमान चेतना। किसी व्यक्ति को हम देखकर, आवाज सुनकर अथवा स्पर्श आदि से समझ लेते हैं वह उसका दृश्यमान व्यक्तित्व होता है। लेकिन मन, विचार, वृत्ति स्वभाव आदि आकार में नहीं होता। यही उसका स्वत्व है जो निराकार है जो उसके समस्त क्रियाकलाप को संचालित करता हैं। यह "स्व" प्रत्येक दृश्यमान व्यक्ति, वस्तु, प्राणी और प्रकृति की केन्द्रीभूत चेतना होती है। विपरीत समय अथवा परिस्थिति की विवशता से जीवन में आने वाली विसंगतियों के बीच स्व चेतना ही व्यक्ति अथवा समाज को सुरक्षित रखती है। परिस्थियाँ कितनी ही विपरीत हों, दासता का अंधकार कितना ही सघन हों, यदि स्व चेतना जाग्रत है तो व्यक्ति अथवा समाज अपने मूल को सुरक्षित रखने में सफल हो जाता है। लेकिन स्व चेतना कमजोर होने पर दासत्व प्रबल हो जाता है और वह स्वाभिमान से समझौता करने लगता है। व्यक्ति का आचरण, व्यवहार सब स्व पर ही निर्भर करता है। प्रत्येक व्यक्ति का चेहरा, रक्त विशिष्टता (डीएनए), स्वर या रुचि अरुचि विशिष्टता सब अदृश्यमान "स्व" के कारण होती है। स्व की चेतना से ही व्यक्ति अपने परिवार, समाज का निर्माण और विस्तार करता है। परिवार या समाज का निर्माण तो मनुष्य करता है लेकिन स्व का निर्माण प्रकृति करती है।अदृश्यमान स्व में प्रकृति के विविध आयाम होते हैं। इसी से व्यक्ति की प्रतिभा, दक्षता, मेधा और क्षमता विशिष्ट होती है। इसी के अनुरूप समाज और राष्ट्र का विशिष्ट स्वरूप उभरता है। इसे समाज समूहों और संसार की विधिधता से समझा जा सकता है। व्यक्ति जिस परिवार में जन्मा है, उस परिवार का भी स्व होता है। परिवार जिस समाज से संबंधित है उस समाज का भी स्व है। इसी प्रकार क्षेत्र विशेष और राष्ट्र का भी अपना विशिष्ट स्व होता है। यह प्रकृति का निर्धारण है कि कहाँ अच्छे चावल हों और कहाँ अच्छा ज्वार बाजरा। या कहाँ अच्छे आम, अच्छे अंगूर या संतरा। प्रकृति की यह विविधता और क्षेत्र की ये विशिष्टताएँ व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व में भी समाहित होते हैं। स्व की इसी विशिष्टता से भारत संसार में अति विशिष्ट रहा है। भारत आर्थिक सामाजिक और बौद्धिक उच्चता के जिस स्तर पर पहुँच गया था वहाँ आज तक कोई नहीं पहुँचा। इसकी झलक हजारों वर्ष पूर्व की रचना ऋग्वेद में मिलती है। धरती से लेकर अंतरिक्ष तक ऐसा कोई विषय नहीं जिसका संकेत ऋग्वेद में न मिलता हो। संसार ने यह रहस्य वेद से ही समझा कि धरती गोल है। दुनिया के विशेषज्ञों ने शल्य क्रिया भारत से ही सीखी और एन्जिन की शक्ति मापने का पैमाना "हार्स पॉवर" यनि अश्व शक्ति ऋग्वेद के "कीर्ति अश्व" से लिया गया। भारत में सामाजिक समरसता, सामाजिक आत्म निर्भरता और जिस कुटुम्ब परंपरा का विकास किया उस पर आज पूरा विश्व अनुसंधान कर रहा है। तभी तो भारत को विश्व गुरु माना गया और सोने की चिड़िया कहा गया है। भारतीय समाज जीवन में ज्ञान विज्ञान और प्रकृति के स्वभावानुरूप जीवन शैली का विकास ही भारत का स्वत्व है।

स्व की चेतना से ही समाज की सकारात्मक प्रगति

स्व चेतना जागृत हो या विलुप्त। जीवन तो गतिमान रहता ही है। समय की यह गति कई बार समाज जीवन को विषमताओं से भर देती है। लेकिन यदि स्वत्व जाग्रत है तो समय के साथ समाज अपने मूल की ओर लौट आता है। अब प्रश्न उठता है कि समाज में विकृति या अवनति की स्थिति कब बनती है। इसका उत्तर स्वत्व के विलोम शब्द में है। "स्वत्व" का विलोम "दासत्व" है।

समाज प्रतिष्ठित हो करे यालेकिन यदि स्व विलुप्त हो गया तो समाज

में विसंगति, विकृतियाँ घेर लेती हैं। स्वत्व का बोध अदृश्य चेतना से आरंभ होकर शरीर तक आता है। जबकि दासत्व का वोध शरीर से आरंभ होकर चेतना में समाता है। भारत ने एक लंबी अवधि तक दासत्व का अंधेरा देखा है। इस अंधेरे में पीढ़ियाँ बीती। इस कारण असंख्य लोगों की चेतना में दासत्व वोध समा गया है। आज भारत में बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं जो दासता की स्मृतियाँ सहेजने में पूरी शक्ति लगा रहे हैं और भारत राष्ट्र के स्वत्व संदर्भ का परिहास करते हैं। स्वतंत्रता के बाद भी भारत में मानों स्व के बोध का संघर्ष समाप्त नहीं हुआ। स्व चेतना का यह संघर्ष बाहर से नहीं भीतर से है। दासता की प्रतीक कितनी परंपराएं हैं जिन्हे स्वतंत्रता के साथ ही बदलना चाहिए था वे आज भी आज भी समाज जीवन पर हावी हैं। इसका मनोवैज्ञानिक कारण है। मनुष्य के सोचने और काम करने के तरीके का एक चक्र होता है। जो शरीर से आरंभ आत्मा तक जाता है और आत्मा से आरंभ होकर शरीर तक आता है। पहली परिस्थिति में शरीर का सुख या शरीर का कष्ट इन्द्रियों को प्रेरित करता है। इन्द्रियां मन को, मन मस्तिष्क को और मस्तिष्क आत्म ज्ञान पूरी तरह ढक लेता है। मान लीजिये किसी शक्तिशाली ने एक व्यक्ति को पकड़ कर अपना दास बनाया और अपनी शक्ति से इस व्यक्ति का स्वामी बन गया है। स्वामी की पिटाई के भय अथवा प्रलोभन से दास की इन्द्रियां स्वामी के अनुरूप काम करने केलिये हो जाती हैं। यह दासत्व की पहला स्तर है। समय के साथ इन्द्रियां स्वामी के अनुरूप ढलने जाती हैं। और स्वामी के आदेश के पूर्व ही स्वयं काम करने लगती हैं। यह दासत्व की दूसरा स्तर है। आगे चलकर तीसरा स्तर आरंभ होता है। इस स्तर पर दास अपने स्वामी की इच्छा के अनुरूप न केवल काम करने लगता है बल्कि उसमें सराहना पाने की लालसा आने लगती है। दासत्व का एक चौथा स्तर है इसमें दास स्वामी भक्ति का प्रदर्शन करके गौरान्वित अनुभव करता है। वह अपना स्व भूल जाता है। दास की आत्मा दासत्व से ढंक जाती है। इसे हम आम बोल चाल की भाषा में आत्मा का मर जाना कहते हैं और दास का मन मस्तिष्क पूरी तरह दासत्व में ढल जाता है। इस अवस्था के बाद यदि स्वामी कहीं चला जाये तो यह दास उसकी स्मृतियों को सहेजता है और भावुक अंदाज में दूसरों को बताता है कि मालिक यहाँ बैठा करते थे। वे इस तरह खाना खाया करते थे। इस तरह कुत्ता खिलाते थे। यहां तक पीकदान और ऊगालदान भी सहेज कर रखता है। यही नहीं वह अपने स्वामी के अनुरूप ही उठता बैठता है वैसे ही बोलने का प्रयास करता है जैसा उसका स्वामी बोलता था। उन्ही वस्तुओं का इस्तेमाल करता है जिन्हे स्वामी करता था। इसे आत्मा का दासत्व कहा जाता है।

इसके विपरीत स्वत्व आत्मा का स्वभाव है। स्वत्व का बोध आत्मा से आरंभ होकर शरीर तक आता है। यह ठीक है कि समय की विसंगतियों अथवा दासत्व का अंधकार से शरीर को दासत्व के लिये विवश कर देता है। लेकिन यदि स्व चेतना जागृत है और आत्मा पर अज्ञान का पर्दा नहीं है तो विसंतियों से उबरते ही समय आने पर स्वत्व मस्तिष्क, मन और इन्द्रियों को जाग्रत कर देता है। और शरीर को स्वानुरूप कार्य करने को प्रेरित करता है। और यहीं से दासत्व के विरूद्ध संघर्ष का आरंभ होता है और स्वत्व एवं स्वाभिमान के जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त होता है।

स्व चेतना से ही परिवर्तन संभव

भारत में बड़ी संख्या में आज ऐसे लोग देखे जा रहे हैं जिन्हे अपने पूर्वजों की परंपराओं देशज मान्यताओं में हीन भाव दिखाई देता है। वे विदेशी परंपराओं के पालन से गौरान्वित अनुभव करते हैं। यह स्व चेतना के ह्रास के कारण होता है। दासत्व के अंधकार में अपनाये गये भाव, भाषा, भूषा, भोजन और परंपरा में इतने ढल जाते हैं कि दासत्व की स्मृतियों में विकास और प्रतिष्ठा देखते हैं। तब बहुत आवश्यक होता है व्यक्ति और समाज की स्व चेतना का जागरण। स्व चेतना के जागरण से ही समाज परिवर्तित होकर अपने मूल स्वरूप की ओर लौटता है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे रोग प्रतिरोधक क्षमता घटने पर व्यक्ति को रोग घेर लेते हैं। चिकित्सक की औषधियाँ दो प्रकार के काम करती हैं। एक तो रोग के वायरस को नष्ट करना और दूसरा रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि। इससे व्यक्ति पुनः स्वस्थ्य होकर अपनी मूल चैतन्यता पर लौट आता है। इसी प्रकार स्व चेतना का जागरण व्यक्ति और समाज को दासत्व शैली के मानस में परिवर्तन लाकर गौरान्वित कर देती है।

सम्पर्क: भोपाल म.प्र. मो. 9425600339

कला समय पत्रिका इन वेबसाइट पर उपलब्ध

https://www.kalasamaymagazine.com
https://www.notnul.com

नर्मदा जयंती पर्व विशेष:

नर्मदा : साहित्य से लेकर संस्कृति तक, परम्परा का अविरल प्रवाह

नर्मदा: केवल जल की धारा नहीं, संस्कृति और संवेदना का चिरंतन प्रवाह

शुभम चौहान शोधार्थी

नर्मदा केवल जल की धारा नहीं है; वह जीवन, प्रेरणा और सृजन का आधार है। नर्मदा मैया की लहरों में अनगिनत कहानियाँ छिपी हैं, उसकी शांति में कविता बसी है, और प्रवाह में अनंतता का संदेश निहित है। साहित्य और संस्कृति के संवर्धन में नर्मदा मैया का योगदान अनुपम है। नर्मदा समय की साक्षी है, कवियों की प्रेरणा, साधकों की शरणस्थली और लोक की आस्था का आलंबन है। वह मेकलसुता है, जो विन्ध्य और सतपुड़ा की गोद में जन्मी, अमरकंटक के सुमनों से सजी, सहस्रधारा के उन्मुक्त उल्लास में झूमती, संगमरमर की बाहों में बँधी और फिर भड़ौच के सागर-संगम में अपनी यात्रा को विराम देती है।

अमरकंटक से खंभात की खाड़ी तक अपनी 1312 किलोमीटर की यात्रा में वह मध्य भारत की जीवनरेखा बनकर बहती है। उसके किनारों पर सघन वन, औषधीय वनस्पतियाँ, और प्राचीन मंदिर उसकी गोद में खिले फूलों की तरह शोभते हैं। नर्मदा का जल केवल प्यास नहीं बुझाता, वह आत्मा को तृप्त करता है। उसके तटों पर बसे लोग उसे नदी नहीं, माता कहते हैं- एक ऐसी माता, जो अपने बच्चों को जीवन, संस्कृति और आस्था का आशीर्वाद देती है। नर्मदा को देखना केवल एक नदी को देखना नहीं है। यह एक सभ्यता को, एक संस्कृति को, उसकी स्मृतियों और संवेदनाओं को अपने भीतर उतार लेना है।

नर्मदा के किनारे बसे गाँवों की लोक कथाएँ, कवियों की कविताएँ, और संतों के भजन इस बात के प्रमाण हैं कि नदियों ने हमारी सांस्कृतिक चेतना को कितना गहरा प्रभावित किया है। नदियों ने हमारे साहित्य को वह गहराई दी, जो शब्दों को केवल अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि अनुभूति का माध्यम बनाती है। नर्मदा का साहित्यिक और सांस्कृतिक महत्व केवल उसके भौगोलिक विस्तार तक सीमित नहीं है। यह महत्व उसकी उन लहरों में बसा है, जो कवियों की लेखनी को प्रेरित करती हैं, और उन किनारों में, जहाँ सभ्यताएँ जन्म लेती हैं। नर्मदा ने हिंदी साहित्य को एक अनूठी पहचान दी है, और इसका अध्ययन हमें यह समझने का अवसर देता है कि कैसे एक नदी मानव जीवन के हर पहलू – साहित्य, समाज, और पर्यावरण; को प्रभावित कर सकती है।

नर्मदा को कवियों ने हमेशा अपनी सृजनात्मकता का केंद्र बनाया। आदिकवि वाल्मीकि से लेकर भास, कालिदास, सुबन्धु, त्रिविक्रमभट्ट, राजशेखर और मुरारि तक, संस्कृत साहित्य के प्रत्येक युग में नर्मदा किसी न किसी रूप में काव्य का विषय बनी। वाल्मीकीय रामायण में जब रावण अपने मंत्रियों से कहता है, **"अस्यां स्नात्वा महानद्यां पाप्मानं विप्रमोक्ष्यथ,"** तो नर्मदा का पावनत्व प्राचीनतम साहित्य में ही अपनी छाप छोड़ देता है।

महाभारत में युधिष्ठिर नर्मदा तट पर तीर्थयात्रा करते हैं, और अनुशासनपर्व हमें बताता है कि नर्मदा में स्नान और संयम से मनुष्य राजत्व प्राप्त कर लेता है। स्कन्दपुराण का रेवाखण्ड, जो नर्मदापुराण के नाम से जाना जाता है, नर्मदा की महिमा को चरम पर ले जाता है। यहाँ नर्मदा केवल नदी नहीं, एक तीर्थ है, जो सिद्धियों, सुख और समृद्धि की दात्री है। संस्कृत और प्राकृत साहित्य में नर्मदा की गाथाएँ अनगिनत हैं। शिलालेखों, सूक्तियों और ऐतिहासिक महाकाव्यों में भी उसका उल्लेख है। पर नर्मदा का काव्य केवल प्राचीन साहित्य तक सीमित नहीं रहा। हिंदी के कवियों ने भी उसे अपनी लेखनी का आधार बनाया। गोस्वामी तुलसीदास, जिनके लिए रामकथा जीवन का आधार थी, नर्मदा को कैसे भूल सकते थे? रामचरितमानस में जब वह मंदाकिनी की महिमा गाते हैं, तो गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी के साथ नर्मदा का नाम भी आदर से लेते हैं:

"सुरसरि सरसइ दिनकरकन्या।
मेकलसुता गोदावरि धन्या।"

हिंदी साहित्य में नर्मदा की यह काव्यात्मक यात्रा माखनलाल

चतुर्वेदी के पास आकर और गहरी हो जाती है। नर्मदा की गोद में जन्मे इस कवि के लिए नर्मदा केवल नदी नहीं, बल्कि जीवन की शिक्षिका, सौंदर्य की साधिका और विश्व की संवेदना की संवाहिका थी। उनकी हिमकिरीटिनी में नर्मदा का मधुर गीत इस तरह गूँजता है: "लोग कहें, मैं चढ़ न सकूँगी-बोझीली, प्रण करती हूँ सखि। मैं नर्मदा बनी उनके, प्राणों पर नित्य लहरती हूँ सखि। मैं अपने से डरती हूँ सखि।" यह नर्मदा का वह स्वर है, जो अपनी ही गहराई से भयभीत है, पर प्राणों पर लहर बनकर बहती है।

माखनलाल की लेखनी में नर्मदा एक साथ उदात्त और मानवीय है। वह ग्वारीघाट की लहरों में, भेड़ाघाट के संगमरमर में, सहस्रधारा के उल्लास में और ममलेश्वर के शांत तटों पर कवि के साथ-साथ भटकती है। यह भटकन केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक भी है। शिवमंगल सिंह सुमन की नर्मदा और भी रंगीन है। वह अमरकंटक के सुमनों से सजी, ओंकारेश्वर में सकुचाती, धुआँधार में उल्लास लुटाती और मांडव के महलों में अभिसार सजाती है। रामचंद्र बिल्लोरे नर्मदा को ऋषियों की जीवन गीता कहकर पुकारते हैं, तो अपने कविता संग्रह 'विविधा' में शिव मंगल सिंह 'सुमन' लिखते हैं–

"नर्मदा अमरकंटक के सुमनों की सौगात सजाती है,
ओंकारेश्वर के बीच सकुचती सहमी सहमी आती है।
जो धुआँधार में धारा का स्वर्गिक उल्लास लुटाती है।"

नर्मदा का माहात्म्य केवल काव्य तक सीमित नहीं। वह भारतीय संस्कृति का वह स्रोत है, जो वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक अनवरत बहता रहा है। शतपथब्राह्मण में रेवा के रूप में उसका उल्लेख है। महाभारत, रामायण, पुराण और उपपुराण—सभी में नर्मदा की महिमा है। स्कंदपुराण का रेवाखण्ड तो नर्मदा को समर्पित एक संपूर्ण ग्रंथ है। बृहत्संहिता, वशिष्ठसंहिता, शिलालेख और सूक्तियाँ—हर जगह नर्मदा की उपस्थिति है। प्राकृत गाथाओं में भी उसकी कथाएँ गूँजती हैं। नर्मदा का तीर्थत्व प्राचीन है। महाभारत में हमें इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है, जब युधिष्ठिर नर्मदा तट पर तीर्थयात्रा करते हैं। नर्मदा सबकी शरणस्थली रही है।

नर्मदा का साहित्य केवल शब्दों का संग्रह नहीं, वह एक जीवंत परंपरा है, जो समाज, संस्कृति, और पर्यावरण को एक सूत्र में पिरोती है। मैया की कृपा हम सभी पर बनी रहे और हमारा अंतस निरन्तर सृजनशील रहे; यही प्रार्थना है।

नर्मदे हर!

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक / आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email: bhanwarlalshrivas@gmail.com I kalasamaymagazine@gmail.com
मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 300/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

गोदना, सौन्दर्य बोध को दर्शाने वाली सदियों पुरानी कला

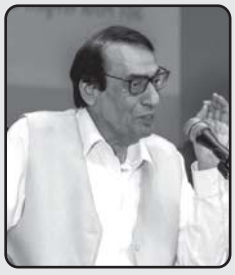

डॉ. कपिल तिवारी

गोदना कला पोलीनीशिया में किसी समय अपने चरम स्वरूप में थी। आस्ट्रेलिया और अफ्रीकी देशों में यह आज भी अपने आदिम स्वरूप में विद्यमान है। जापान में गोदना का बहुत ही कलात्मक उपयोग हुआ है। हालांकि सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ जैसे-जैसे मनुष्य के शरीर का अधिकांश हिस्सा वस्त्रों से ढंकता गया वैसे-वैसे गोदना प्रथा का प्रचलन भी शरीर के खुले अंगों तक सीमित होता गया।

आदिवासी बहुल क्षेत्रों में प्रचलित गोदना की परंपरा उनकी सदियों पुरानी मान्यताओं और सौंदर्य बोध को तो दर्शाने के अलावा एक्यूपंचर जैसी इलाज पद्धति के तौर पर भी अपनाई जाती है। गोदने कीप्रथा सिर्फ आदिवासियों तक ही सीमित नहीं है और देश के ग्रामीण क्षेत्रों में भी इसका प्रचलन है लेकिन आदिवासी समुदाय में इस प्रथा का अपना अलग अंदाज और महत्व है। गोदने की प्रथा काफी पुरातन है।

आदिवासियों के बीच इसका न सिर्फ आलंकारिक उपयोग है बल्कि शरीर के कुछ अंगों पर गोदना कराने के पीछे यह मान्यता भी है कि इससे रोग से मुक्ति मिलेगी। हालांकि इसके चिकित्सकीय पहलू का परीक्षण नहीं हुआ है लेकिन यह बात साफ है कि यह प्रथा काफी हद तक उपचार की चीनी पद्धति (एक्यूपंचर) जैसी है, जिसमें शरीर के कुछ बिंदुओं पर सुई चुभा कर इलाज किया जाता है। प्राचीन समय में आदिवासी समुदाय की महिलाएं सजने संवरने के लिए फूलों का प्रयोग करती थी। लेकिन फूल जल्दी ही मुरझा जाते थे। बाद में इसका स्थान धातुओं से बने गहनों ने लिया। अनश्वरता की भारतीय अवधारणा में यह माना जाता है कि मरने के बाद शरीर के साथ कुछ नहीं जाता है। इसी अवधारणा को केन्द्र में रखते हुए आदिवासी समुदाय में इस परंपरा को और सहर्ष स्वरूप में इसलिए भी स्वीकार किया क्योंकि मरने के बाद भी गोदना, शरीर से जुदा नहीं होता है।

गोदना चिन्हों के सामाजिक महत्व को भी कुछ जातियां स्वीकार करती हैं। इसलिए कुछ स्थानों पर जातीय प्रतीकों के रूप में भी गोदने का इस्तेमाल होता है। गोदने का इतिहास तलाशने पर पता चलता है कि विश्व के

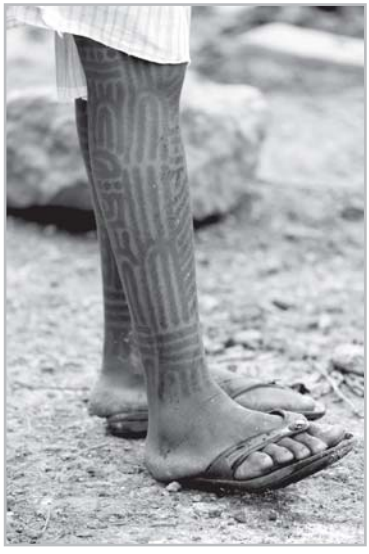

सभी फोटो : गोपीकृष्ण सोनी, पंडरिया (छत्तीसगढ़)

'फाग' : 'गोदौ गुदनन की गुदनारी, सबरी देह हमारी
गालन में गोविन्द गोद देव, गरे धरौ गिरधारी'

अनेक देशों में विविध रूपों में इसका प्रचलन रहा है। आधुनिक समाज में भी युवक-युवतियों में बतौर फैशन इसका प्रचलन है। सुंदर दिखने की चाह भी गोदना प्रथा का एक प्रमुख कारण है। मध्यप्रदेश और राजस्थान की भील स्त्रियां आंखों के दोनों किनारों पर चिरल्या के नाम से दो आड़ी लकीरें गुदाती हैं। इनसे जहां आंखों का सौंदर्य और निखरता है वहीं यह उनके लंबे होने का बोध भी कराती है।

छत्तीसगढ़ के आदिवासी बहुल बस्तर में आदिवासी समाज में विवाह के पूर्व कन्या के शरीर पर गुदना गोदाना आवश्यक होता है। यदि किसी लड़की के शरीर में गुदने नहीं होते हैं तो विवाह के समय उसका होने वाला ससुर उसके पिता से इसकी क्षतिपूर्ति भी लेता है। आदिवासी समाज में उस स्त्री को हेय दृष्टि से देखा जाता है जिसके शरीर पर गोदने नहीं होते हैं।

आम तौर पर बांहों, कंधों पैरों, कपोल, ठोडी, कलाइयों, हाथ, पीठ, छाती और बाहों और जांघों पर गोदना गोदाया जाता है। म.प्र. के शहडोल, मंडला और बालाघाट के गोंड आदिवासी पुरुष पैरों, घुटनों और बांहों पर गोदना कराना पसंद करते हैं। गोदना आकृतियां बिंदियों, चौखानों, वृत्तों, लकीरों और त्रिकोणों से संयोजित की जाती है। साथ ही दैनिक उपयोग और संदर्भ की चीजों में चौक, वृक्ष, मयूर, बिच्छू, नदी, अग्नि, चांद, सूरज, तारे और फूल आदि गोदना के लोकप्रिय विषय हैं। आदिवासी समाज में यह भी धारणा है कि जो स्त्री अपने दाहिने कंधों एवं छाती में किसी देवी देवता का गोदना कराती है, उसे शत्रु कभी हानि नहीं पहुंचा सकता है।

ऐसी मान्यता है कि शरीर पर गुदा देव शत्रु से रक्षा करता है। आदिवासी स्त्रियां अपने शरीर पर टोटम (गोत्र चिन्ह) भी अंकित कराती हैं। इसके पीछे यह मान्यता है कि इससे पूर्वजों की आत्माएं संकट के समय रक्षा करती हैं। पैर में गोदना कराने के पीछे कहा जाता है कि ऐसी स्त्री को स्वर्ग की सीढ़ी चढ़ने में तनिक भी कठिनाई नहीं होगी। आदिवासी महिलाएं अपनी कलाइयों, हाथों और उंगलियों में अपने पति, भाई बहनों एवं सखी सहेलियों के नाम का गोदना कराती हैं। कहा जाता है कि इससे स्वर्ग में उनके प्रियजनों से उनकी मुलाकात संभव हो सकेगी।

आलेख

भारतीय ग्राम्य सौंदर्य का अनोखा छायाकार : मनोहर काजल

- डॉ. नरेश अवस्थी

छायांकन महज स्मृतियां संजोने या शौक के लिये फोटो उतारने का साधन ही नहीं है, वरन् सृजनात्मक अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम और छाया कलाकार की कसौटी भी है। जहां तक अपनी रचनात्मक ऊर्जा को अपने ही ढंग से इस्तेमाल करके एक साधारण सी वस्तु और उससे जुड़ी पृष्ठभूमि में अपनी समझ सोच और कलात्मक चेतना से वह ताकत पैदा कर सकता है। जो कवि शब्दों के माध्यम से अपनी कविता में और चित्रकार अपनी कूची से अपनी पेन्टिंग में पैदा करता है। इसीलिये छायांकन भी अन्य कलाओं के करीब ही पहुंच गयी है और आधुनिक युग में तो यह एक अत्यन्त ही सशक्त और मुखर विद्या बन गयी है, जो अपने ही बलबूते अपनी जमीन पर खड़ी हो गयी है और समाज को अपनी सार्थकता का आभास करा रही है। एक अच्छा छाया चित्र हजार शब्दों के बराबर तो कभी-कभी उससे भी बढ़कर हो सकता है। नि:संदेह कभी-कभी कुछ छायाचित्र ऐसे होते हैं कि शब्द उनके लिये नाकाफी होते हैं। खासतौर से ऐसे छायाचित्र जिनमें मानवजीवन से जुड़ी हुई गहन अनुभूतियां आंक ली गई हों। ऐसे चित्र और ऐसी कलात्मक रचना हमेशा मानवीय संवेदनाओं की प्रेरणा और स्रोत होती है जो हमारे भीतर विचारों और अनुभूतियों का एक अटूट सिलसिला शुरू कर देती है।

वर्ष 2014 में भारत भवन की कला वीथिका में सुप्रसिद्ध कहानीकार, चित्रकार और छाया-कलाकार मनोहर काजल के रंगीन छायाचित्रों की एकल प्रदर्शनी कुछ ऐसे ही सहज और सरल ग्राम्य जीवन से जुड़ी हुई जीवन्त अनुभूतियों का कलात्मक आकलन था जो सहज ही हमें अपने उपेक्षित ग्राम्य परिवेश से जोड़ता है और एक अनजानी सी आत्मीय स्नेहिल अनुभूतियों से सरोबार कर देता है। उस अनुभव, की अनुभूति को महज शब्दों में कहना संभव सा नहीं लगता।

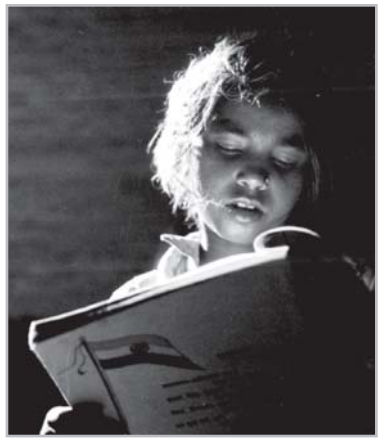

किसी चित्रकार की पेन्टिंग को देखकर जिस अनुभूति या थ्रिल का आभास होता है कुछ वैसा ही अनुभव काजल के नयनाभिराम सुन्दर और कलात्मक छायाचित्रों को देखकर होता है। और किसी सिद्ध छायाकार की शायद यही सबसे बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है.....

काजल के रंगीन छायाचित्रों में रंगों की शोखी या चमक नहीं है जो औसत छायाचित्र को महज सुन्दर ही बनाता है पर गरिमामय और उदात्त नहीं क्योंकि अक्सर ही ऐसा माना जाता है। कि रंगीन छायांकन में गंभीरता का नितान्त अभाव होता है और वह विषय वस्तु से सहज रूप से नहीं जुड़ पाता, शायद यही कारण है कि शास्त्रीय छायांकन में अभी भी रंगीन छायाचित्रों को वह स्थान प्राप्त नहीं है जो श्वेत-श्याम छायाचित्रों को है और अभी भी उच्चकोटि के छायाकार श्वेत-श्याम छायांकन को ज्यादा महत्व देते हैं।

पर काजल के रंगीन छायाचित्रों को देखकर यह भ्रम सहज ही टूट जाता है, बल्कि एक गहरा अहसास जन्मता है कि विषय वस्तु अपनी रंग-संयोजना और परिवेश से इतनी घुल-मिल गयी है। कि संपूर्ण छायाचित्र अपने आप में अपनी पूर्णता के साथ जीवन्त और गरिमामय हो उठा है। रंगों की सहज सौम्यता, विषय वस्तु का चुनाव, धरातल की बुनावट और उसके साथ स्पेस का कौशलपूर्ण संयोजन छायाचित्र को सहज ही किसी मौलिक पेन्टिंग की सी अनुभूति और थ्रिल से जोड़ देता है। काजल का हर चित्र अपने आप एक मौलिक पेन्टिंग की सी संरचना से जुड़ा हुआ है और उसका प्रभाव भी

उतना ही सटीक और कलाकार की क्रियेटिविटी जुड़ा है, शायद यह प्रभाव इसलिये भी काजल के छायाचित्रों में कुछ ज्यादा उभरकर आया है कि कैमरा पकड़ने से पहले वे एक सिद्धहस्त चित्रकार भी थे, इस कारण रंग, विषयवस्तु और कंपोजिशन्स, छायांकन में सबसे महत्वपूर्ण होती है और इसके लिये छायाकार को बहुत ही सजग और जागरूक रहना पड़ता है। चित्रकार जहां सहज कल्पना से कैनवास पर अपनी सोच के अनुरूप कंपोजिशन्स सेट करने में सक्षम और स्वतंत्र है वहां छायाकार महज दर्शक होता है। विषयवस्तु में अपनी मर्जी से कोई बड़ा परिवर्तन नहीं कर सकता, उसे पूरी तरह से सब्जेक्टिव थीम पर डिपेन्ड रहना पड़ता है और इसके लिये इसे भाग-दौड़ करना होती है, विषय ढूंढ़ना होता है और इसीलिये छायाकार की कलायात्रा एक यायावर खोजी अपने आस-पास के प्रति उत्सुक समय और समाज के प्रति सजग संवेदनशील व्यक्ति की यात्रा होती है, अपनी कृतियों में जीवन की विविधता के साथ, एक मौलिक सृजन संभावनाओं को समेटने के लिये उसे बाह्याविमुखी होना बहुत जरूरी होता है इसके अभाव में न तो वह अपने छायांकन में जिन्दगी की धड़कनों को समेट पायेगा न पल-प्रतिपल बदलते रूपाकारों को और न ही उनमें विविधता ला सकेगा और न ही जीवन की गति-शीलता संयोजित कर पायेगा जो एक सशक्त छायाकार होने की पहली शर्त होती है।

अक्सर वही छायाकार अपने छायांकन में बेचैन करने की ताकत या कविता, पेन्टिंग जैसा असर पैदा कर सके हैं जिनकी जिन्दगी यायावर की रही है और जिनमें विषयवस्तु के कथाकारों के संयोजन की क्षमता और गहरी संवेदनशीलता रही है वरना तस्वीरें खींचना और कैमरे का शटर चलाना तो हर किसी को आता है।

मनोहर काजल एक होनहार और सिद्धहस्त छायाकार के साथ-साथ एक उज्ज्वल शब्दशिल्पी और चित्रकार भी हैं। अब तक सौ से ऊपर कथा रचनायें, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, साक्षात्कार, कहानी, मधुमती, कथन, कथादेश, अक्षरा जैसी राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ चर्चित कहानियों का फिल्मांकन भी हुआ है।

म.प्र. की साहित्य अकादमी के सौजन्य से उनका प्रथम कहानी संग्रह "जलपाखी' प्रकाशित हुआ था। उसके बाद उनके दो कहानी संग्रह इंकलाब जिन्दाबाद और मुक्तिपर्व और अन्य कहानियां प्रकाशित हो चुके हैं।

साहित्य के साथ छायांकन के क्षेत्र में भी उनकी उपलब्धि याँ अप्रतिम और अभूतपूर्व है। वर्ष 2000 में कोडक एशिया द्वारा आयोजित मिलेनियम फोटो कान्टेस्ट में उन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। वर्ष 2003 में उन्हें अंतर्राष्ट्रीय फोटोग्राफी प्रतियोगिता का IPA अवार्ड (लास एंजिल्स) मिला है। जो इस क्षेत्र विशेष की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है इसके अलावा उनके कई छायाचित्र यूनेस्को और युनिसेफ द्वारा चयनित और पुरस्कृत हुए हैं। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः उनके ग्रामीण परिवेश से जुड़े कलात्मक छायाचित्र छपते ही रहते हैं। श्री मनोहर काजल की इन्हीं राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर की श्रेष्ठ कलात्मक उपलब्धि यों के कारण उन्हें राज्य और राष्ट्र के लिए एक सम्मानित कलाकार व्यक्तित्व मानकर भोपाल की संगीत और कला के क्षेत्र की प्रतिष्ठित संस्था 'मधुवन' और जबलपुर संस्कार धानी की सांस्कृतिक संस्था "गुंजन कला सदन" ने उन्हें वर्ष 2005 में अपने राष्ट्रीय स्तर के अलंकरण श्रेष्ठ कला आचार्य और लोक कला सम्मान से विभूषित किया है।

मनोहर काजल के बहुआयामी पर अंतर्मुखी व्यक्तित्व और उनके कृतित्व को गहराई से जानने, समझने और उनकी कलात्मकता में विभोर होने के लिये एक बार उनके छायाचित्रों को अपनी आंखों से देखना जरूरी है। उनमें जो है उसे महज शब्दों में बांधना आसान नहीं है।

साहित्यकारों, कलाकारों और कविवरों का तो यहां तक मानना है कि काजल ने कैमरे से भारतीय ग्राम्य सौन्दर्य की उपेक्षित सौंधी मिट्टी पर दमदार कवितायें लिखी हैं जो आधुनिक पश्चिमी संस्कृति के दिन पर दिन नंगे और फूहड़ सौन्दर्य पर अपनी गरिमा और शालीनता की श्रेष्ठता साबित करती है।

■

पुस्तक- समीक्षा

ॐ नारायणाय नमः
गायनाचार्य पंडित नारायणराव व्यास स्मृति ग्रंथ

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक	:	ॐ नारायणाय नमः गायनाचार्य पंडित नारायणराव व्यास स्मृति ग्रंथ
लेखक	:	प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास
समीक्षक	:	मंजरी सिन्हा
प्रकाशन	:	संस्कार प्रकाशन, मुम्बई
पृष्ठ	:	264 + 4 = 268
मूल्य	:	₹1500/-
प्रकाशन	:	2025

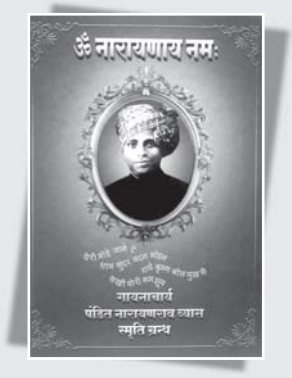

मंजरी सिन्हा

प्रोफ़ेसर डॉ. सुनीरा कासलीवाल व्यास द्वारा अत्यधिक परिश्रम और जतन से सम्पादित और संस्कार प्रकाशन, मुंबई द्वारा सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रकाशित गायनाचार्य पंडित नारायणराव व्यास स्मृति ग्रंथ हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के एक ऐसे महान संगीतज्ञ पर किया गया शोधपूर्ण ग्रंथ है, जिनके बहुआयामी व्यक्तित्व और बहुरंगी कृतित्व के विस्तीर्ण वितान को पुस्तकाकार ग्रंथ में समेटना निश्चय ही दुःसाध्य रहा होगा। प्रोफ़ेसर सुनीरा कासलीवाल ने भारतीय संगीत में पंडित नारायणराव व्यास के अपूर्व योगदान को रेखांकित करने वाले इस स्मृति ग्रंथ में उनके संपूर्ण जीवनवृत्त को सविस्तार समाहित किया है। पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर के समर्पित शिष्य नारायणराव ने अपने ऋषितुल्य गुरु से पाई शिक्षा एवं जीवन मूल्यों को अपने जीवन में किस तरह चरितार्थ किया, उसका विस्तृत विवेचन सुयोग्य संपादिका ने उनके समकालीन संगीतज्ञों/शिष्यों के निजी संस्मरणों, अनेक विद्वानों के लेखों के अतिरिक्त उनके यशस्वी सुपुत्र एवं शिष्य डॉ. विद्याधर व्यास से एक लंबे साक्षात्कार के माध्यम से किया गया है।

लेखिका
प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास

सबसे पहले ध्यान खींचता है पुस्तक का आवरण, जहाँ 'ॐ नारायणाय नमः' मंत्र के श्लेष-अलंकारमय प्रयोग से उनकी स्तुति करते हुए, उनके सुदर्शन चित्र पर उन्हीं के द्वारा गाकर अमर कर दी गई **"येरी मोहे जाने दे', 'श्याम सुंदर मदन मोहन', 'राधे कृष्ण बोल मुख से',** और **'सखी मोरी रूम झूम'** जैसी बंदिशों के मानों पुष्प समर्पित किए गए हैं। इस संगीतमय नैवेद्य का सुरीला प्रसाद पाकर रसिक पाठकों के मन में उनकी आवाज़ में सुनी इन बंदिशों की सुरीली स्मृतियाँ कौंध उठती हैं! और इस सुरीली पृष्ठभूमि में उसे बोध होता है कि उसके हाथ में गायनाचार्य पंडित नारायणराव व्यास स्मृति ग्रंथ है! उसे खोलने पर दृष्टि खीचता है 'अर्पण' शीर्षक वह पीत-पावन पृष्ठ जहाँ नादब्रह्म की उपासना वाले संगीत रत्नाकर के संस्कृत श्लोक को उद्धृत करते हुए, ग्वालियर घराने की पलुस्कर परंपरा के आदिपुरुष, 'रागदारी संगीत को पुनर्प्रतिष्ठा दिलाने वाले दूरदर्शी गुरुश्रेष्ठ संगीत-महर्षि पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर के चरणों में यह ग्रंथ समर्पित' किया गया है, जिनके शिष्य थे पंडित नारायणराव व्यास! उल्लेखनीय है कि नादब्रह्म की इस स्तुति का स्वर-संयोजन जैजैवन्ती के मधुर स्वरों में स्वयं पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने किया था।

पूरा ग्रंथ परिशिष्ट सहित चार अध्यायों में विभक्त है। पहला भाग आधारित है पंडित नारायणराव व्यास के संपूर्ण जीवन-वृत्त व कृतित्व पर केंद्रित पंडित विद्याधर व्यास से ग्रंथ की संपादिका प्रोफेसर सुनीरा कासलीवाल की एक लंबी बातचीत पर; जिसे यहाँ यथावत प्रस्तुत किया गया है।सुनीरा जी ग्रंथ के आमुख में लिखतीं हैं कि विद्याधर जी से यह सुविस्तृत साक्षात्कार कोविड की क़ैद के दौरान २१ बैठकों में संभव हो पाया।दूसरे भाग में पंडित जी के जीवन से जुड़ी कतिपय विद्वानों की यादें हैं, जिनमें से कुछ पूर्व प्रकाशित पत्रिकाओं से ढूँढ कर संपादिका ने संस्मरण के रूप में साभार संकलित की हैं।

तीसरे भाग में सुविख्यात संगीतज्ञों एवं संगीत-पारखी विद्वानों के विशेषरूप से इस ग्रंथ के लिए लिखे गए लेख हैं।और चौथे भाग में पंडित जी के चित्रों की विशिष्ट वीथिका के अलावा पंडित विद्याधर व्यास द्वारा लिखे गए तीन विशिष्ट लेख हैं।

परिशिष्ट के चार भागों में से पहले में पंडित नारायणराव व्यास के ध्वनि-मुद्रण का पूरा व्यौरा है। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के वे एकमात्र ऐसे कलाकार हैं जिनके रागदारी संगीत रिकार्ड इतनी बड़ी संख्या में तैयार किए गए। विवरण-तालिका में उनके ६४ ग्रामोफ़ोन रेकार्ड्स में से ६० ख्याल के हैं, जिनमें ३ विलंबित ख्याल के और ५७ छोटे ख्याल के रिकॉर्ड्स हैं।इसके अतिरिक्त ध्रुवपद, तराने, राग-सागर, ठुमरी, भजन और देशभक्ति गीत की रिकार्डिंग भी उपलब्ध है। उनकी गाई बंदिशों में कुछ पलुस्कर जी की हैं, तथा कुछ उनके ज्येष्ठ भ्राता पंडित शंकरराव व्यास की हैं, जिनके बनाए राग भवानी के भी दो रिकार्ड हैं। उनका गाया भजन **"राधे कृष्ण बोल मुख से"** तो इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसकी तीन बार रिकार्डिंग की गई।

परिशिष्ट के इस पहले भाग में पंडित नारायणराव व्यास की ध्वनि-मुद्रिकाओं की संपूर्ण सूची है, किन रिकार्ड कंपनियों द्वारा जारी किए गए इस जानकारी के अलावा उनमें गाये गए रागों और बंदिशों के मुखड़ों, उनके रिलीज़ के सालों तक के उल्लेख सहित। संपादिका ने इन सी डी, रेकॉर्ड्स और कैसेटों संबंधित अतिरिक्त जानकारी भी दी है, मसलन किस अवसर पर उन रिकार्डिंग का विमोचन हुआ, संगीत नाटक अकादमी अथवा आकाशवाणी के अभिलेखागार में उनकी उपलब्धता, प्रस्तुति-विशेष में किन संगत कलाकारों ने उनका साथ दिया है, वे कितने मिनट के हैं, और यह जानकारी देना भी वे नहीं भूलतीं कि आज वे सब यू ट्यूब पर उपलब्ध है। आश्चर्य नहीं कि विगत सौ वर्षों की रिकार्डिंग तकनीक से जुड़े पंडित जी इतने लोकप्रिय रहे, और आज भी प्रासंगिक है।परिशिष्ट के दूसरे भाग में उनके सम्पूर्ण जीवनवृत्त पर एक विहंगम दृष्टि कालक्रमानुसार डाली गई है।तीसरे में उनकी अपनी हस्तलिपि में लिखे उनके शिष्यों के नाम हैं, और चौथे भाग में है उनके द्वारा स्थापित व्यास संगीत विद्यालय का संक्षिप्त परिचय।

पुस्तक के पहले अध्याय के बारे में सुनीरा जी बताती हैं कि पंडित विद्याधर व्यास जी से किया यह साक्षात्कार लगभग छह महीनों तक २१ बैठकों में संपन्न हुआ और शायद इसी लिए यह पंडित नारायणराव व्यास के जीवन और कृतित्व का ऐसा अंतरंग दस्तावेज़ है जो तक़रीबन 'उनकी कहानी-उनकी ज़ुबानी' सरीखा प्रामाणिक और परिपूर्ण है।इस अध्याय में हमें पता चलता है कि पंडित नारायण राव व्यास के पिता कोल्हापुर महालक्ष्मी मंदिर के प्रमुख पुराणिक और शास्त्रों में निपुण शास्त्री थे, जिनकी संगीत में भी अभिरुचि थी और वे शौक़िया सितार बजाते थे।गोविंदराव टेम्बे जैसे प्रसिद्ध हार्मोनियम वादक उनके घर आया जाया करते थे। उस समय कोल्हापुर रियासत के दरबारी गायक के रूप में जयपुर घराने के अल्लादिया खाँ नियुक्त थे।उन्हें दरबार के अतिरिक्त महालक्ष्मी मंदिर में देवी को गाना सुनाने की भी ड्यूटी निभानी पड़ती। मंदिर के मुख्य पुराणिक पिता अपने दोनों पुत्रों शंकर राव और नारायण राव व्यास को भी संगीत सुनने के लिए प्रोत्साहित करते।दोनों ही भाई पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर के शिष्य बने और व्यास-बंधु नाम से ख्यात हुए। इनमें बड़े भाई शंकर राव संगीत रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हुए और नारायणराव कंसर्ट कलाकार के रूप में।

पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर के गुरुकुल में उन्हें पंडित ओंकार नाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, शंकर राव बोडस, लक्ष्मणराव बोडस, बालकृष्ण देवधर और वामनराव ठाकर जैसे गुरुबंधुओं का साथ मिला।गुरुकुल की शिक्षा पूरी हो जाने के बाद गुरु ने दोनों भाइयों को शास्त्रीय संगीत के प्रचार प्रसार के लिए अहमदाबाद भेजा।उसके बाद वे मुंबई आए और सफल गायक के रूप में अपने को स्थापित किया जबकि शंकरराव ने फ़िल्मों के लिए संगीत संयोजन में विशेषज्ञता हासिल की। इन सब तथ्यों पर सविस्तार चर्चा के बाद उनकी ग्रामोफ़ोन रिकार्डिंग, जिसके ज़रिये उनके गए रागों की बंदिशें और भजन घर घर पहुँचे, उनका मुंबई में अपना मकान और संगीत विद्यालय बनाना, उनके शिक्षण का तरीका, उनके सांगीतिक योगदान, उनके पसंदीदा राग, गुरुभाई विनायकराव पटवर्धन के साथ उनकी जुगलबंदी का लोकप्रिय दौर, उनके यादगार कार्यक्रम, उन्हें आधुनिक तानसेन की उपाधि, उनके संगतकार.....इस गहन साक्षात्कार में कुछ भी ऐसा छूटा नहीं है जिसकी पाठक के मन में जिज्ञासा शेष रह जाए।

दूसरे अध्याय में हमें पंडित शंकरराव बोडस, डॉ. वसंतराव राजोपाध्ये, वसंतराव राजोपाध्ये, श्री रामकृष्ण बाक्रे, श्रीमती विमला कुलकर्णी, एवं श्री विनायक फाटक के निजी संस्मरण पंडित नारायणराव व्यास के बारें में अंतरंग बातें बताते हैं। उनके अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में प्रकाशित लेख में पंडित शंकरराव बोडस लिखते हैं "मुंबई में उस मधुर आवाज़ के धनी गायक को एच एम वी कंपनी ने हाथोहाथ लिया और इनके ख्याल, ठुमरी भजन के रिकार्डों के ज़रिए इनका नाम घर घर पहुँच गया, और उनके गायन की सुगंध पूरे उत्तर भारत में फेल गई।उस समय कोई भी संगीत परिषद (कांफ्रेंस) नारायणराव की उपस्थिति के बिना पूरी नहीं होती थी।" वसंतराव राजोपाध्येजी याद करते हैं इलाहाबाद की उस संगीतसभा की जहाँ पंडित जी ने कार्यक्रम के अंत में भजन **"कहाँ के पथिक कहाँ कीनो रे गवानवां"** गाया जो उनके गुरु पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर गाया करते थे। सभा में वे स्वयं भी उपस्थित थे। कार्यक्रम के बाद अपने शिष्य को गले लगा कर उन्होंने कहा "अरे नारायण तू इतना भावपूर्ण भजन गाता है, मुझे पता ही नहीं था।तुझे आयुष्य और सदा सफलता मिले यह मेरा आशीर्वाद है!" वसंतराव उनकी जिंदादिली की, किस्सागोई की, और नक़ल उतारने की भी याद दिलाते हैं जो लोगों को हँसी से लोटपोट कर देती।

रामकृष्ण बाक्रे ने पंडित जी के जीवन का सिंहावलोकन करते हुए

उसकी उपमा 'बड़े ख्याल' से दी है। उन्हें 81 वर्ष की आयु वाले पंडित जी का कथन याद आता है "मैं पूर्णरूप से संतुष्ट हूँ।मैंने एक कल्पवृक्ष पाया था जिसकी छाया में दस वर्ष की अवस्था से पला। मैंने उससे जो कुछ चाहा, वह सब मुझे मिला!" बाक्रे लिखते हैं "उस कल्पवृक्ष की छाया में अनेक लोग पले लेकिन वे सभी अखिल भारतीय कीर्ति नहीं पा सके। विष्णु दिगंबर जी से शिक्षा 1922 में संपन्न हुई लेकिन आज भी उस कल्पवृक्ष की छाया उनके मानस में अंकित है।प्राप्त वैभव का सारा श्रेय वे उन्हीं को देते है!"

उनकी शिष्या विमल कुलकर्णी लिखतीं हैं "उन्होंने एक बड़ा शिष्य समुदाय बनाया लेकिन शिक्षा प्रदान करते समय कभी फ़ीस की अपेक्षा नहीं की, शिष्य के पास अच्छी आवाज़ और रियाज़ की इच्छा जैसी सामग्री ही पर्याप्त थी।" एक भावुक कर देने वाली घटना भी वे याद करती हैं। एक बार शादी के बाद नारायणराव जी की एक शिष्या अपने पति के साथ अपना तानपुरा बेचने आई।उन्होंने उसके पति से कहा "तानपूरे की जो भी कीमत आप चाहते हैं मैं दूँगा लेकिन तानपुरा अपने घर में ही रहने दें। लड़की की आवाज़ सुंदर है, यदि बाद में कभी उसे सीखने का अवसर मिले तो यह उपयोगी होगा!"

स्मृति-ग्रंथ के तीसरे भाग में संगीत जगत की नामचीन हस्तियों एवं संगीत पारखी लोगों द्वारा इस स्मृतिग्रंथ के लिए विशेष रूप से लिखे लेख संकलित हैं। जो वयोवृद्ध गुणीजन स्वयं लिख कर भेज नहीं सकते थे उनसे सुनीरा जी एवं विद्याधर व्यास जी ने वार्ताएँ की हैं।पंडित ओंकार नाथ ठाकुर के अग्रगण्य शिष्य स्वर्गीय बलवंतराय भट्ट लिखते है "ग्रामोफ़ोन रिकार्ड के आरंभिक युग में कोई भी उस्ताद गाने के लिए राज़ी नहीं होते थे क्योंकि राग का विस्तार, आलाप-तान इत्यादि सब इतने कम समय में कैसे संभव होगा यह प्रश्न रहता।पंडित नारायणराव प्रथम ऐसे कलाकार थे जिन्होंने इस चुनौती को स्वीकार किया और साढ़े तीन मिनट में रागरूप और गायकी के कलापक्ष को समग्र रूप से प्रस्तुत किया।राग अड़ाना में उनका गाया **"एरी मोहे जाने दे"** आज भी मेरी स्मृति में ताज़ा है। साफ़ दमदार आवाज़, तैयार तानें, सरगम और राग का सम्पूर्ण व्यक्तित्व! मेरे लिए उस राग की तालीम उसी रिकार्ड से संभव हुई!"

विदुषी शन्नो खुराना सुनीरा जी से फ़ोन पर वार्तालाप में कहती हैं "उनकी गायकी अथाह सागर थी। 96 वर्ष की उम्र में आज मैं पीछे मुड़ कर देखती हूँ तो याद आती है रेडियो पर सुनी उनकी मधुर आवाज़ में राग पूर्वी की बंदिश 'कगवा बोले हमरी अटरिया', और उद्घोषणा "अभी आपने पंडित नारायणराव व्यास का गाया राग पूर्वी सुना।' उस समय दस वर्ष की आयु में मैंने शास्त्रीय संगीत शब्द तक नहीं सुना था लेकिन उस मधुर गायन को सुनकर ठान लिया कि मुझे भी यही गायन सीखना है!"

पंडित जी के शिष्य पंडित शंकर अभ्यंकर लिखते हैं "ग्वालियर घराने में अनवट राग ज़्यादा नहीं हैं। लेकिन पंडित जी सुबह भैरव-बहार और रात को मालगुंजी जैसे राग गाते थे।हारमोनियम पर चलती उनकी उँगलियाँ देखकर बड़े बड़े वादक आश्चर्यचकित रह जाते।इसी तरह तबले पर पंडित अनोखेलाल जी का एक उँगली से तेज लय में बजने वाला तीनताल का 'ना धिन धिन् ना' वे इतनी सफ़ाई और सुंदरता से बजाते कि लोग दंग रह जाते" सुनीरा जी एवं विद्याधर जी के सम्मिलित साक्षात्कार में 100 से ऊपर की आयु में श्री मधुकर जोशी कहते हैं "नारायणराव जी की गायकी अप्रतिम थी। वे बहुत सुंदर गवैया थे।दिल्ली रेडियो से प्रसारित उनका नेशनल प्रोग्राम सुनने का मुझे दो बार मौक़ा मिला।एक बार मालकंस और एक बार यमन। उनको सुनकर मेरे ये दोनों ही राग पक्के हो गए।" इनके अलावा पंडित लक्ष्मण कृष्णराव पंडित, प्रो कृष्णा बिष्ट जिनसे सुनीरा जी की लंबी वार्ता है, पंडित अरुण द्रविड़, पंडित वेंकटेश कुमार, पंडित मधुप मुद्गल, ध्रुपद-गायिका विदुषी मधुभट्ट तैलंग, विदुषी सुधा पटवर्धन, विदुषी ऋता गांगुली, अमरेन्द्र धनेश्वर, मीना बैनर्जी एवं मेरी भी उनसे जुड़ी कुछ पारिवारिक यादें हैं।

चौथे अध्याय में पंडित नारायणराव व्यास, तथा उनकी पारिवारिक तस्वीरों सहित उनकी अपार उपलब्धियों के विरल चित्रों की चित्र-वीथिका है तथा पंडित विद्याधर व्यास जी के तीन महत्त्वपूर्ण लेख हैं।पहले का शीर्षक है 'पंडित-द्वय की जुगलबंदी', जिसमें पंडित नारायणराव व्यास एवं पंडित विनायकराव पटवर्धन की ऐतिहासिक जुगलबंदी का वैदुष्यपूर्ण विवेचन है।इस जुगलबंदी को विलक्षण बताते हुए वे कहते हैं "यद्यपि दोनों एक ही गुरु के शिष्य थे और दोनों की मूल गायकी एक ही थी किंतु दोनों की कंठ-धर्मिता अलग थी।विनायकराव का कंठ भारी और आवाज़ चौड़ी थी जबकि नारायणराव जी की पतली और नुकीली थी।विनायकराव जी पल्लेदार आवाज़ से तानों की फेंक करते तो नारायणराव जी नक्काशीदार फिरत की तानों से श्रोताओं को लुभाते। उनकी लोकप्रिय जुगलबंदियों का सिलसिला लगभाग 15 वर्षों तक धुंआधार चला।""

इस अध्याय में पंडित विद्याधर व्यास का दूसरा विश्लेषणात्मक लेख है "पंडित नारायणराव व्यास की ध्वनिमुद्रित प्रस्तुतियों में सौंदर्य तत्त्व"।इस लेख में उन्होंने पंडित जी की ध्वनिमुद्रिकाओं में निहित स्वरगत सौंदर्य, साहित्यिक सौष्ठव और तालगत सौंदर्य के अतिरिक्त उनके संगतकारों तक का उल्लेख किया है। उनका तीसरा लेख है 'पंडित नारायणराव व्यास के जीवन के विशिष्ट प्रसंग - पंडित विद्याधर व्यास की क़लम से'! निश्चय ही बीसवीं सदी के एक महान संगीतज्ञ पर एकाग्र यह एक संग्रहणीय, दस्तावेज़ी ग्रंथ है, विशेष रूप से भारतीय संगीत के शोधार्थियों के लिए!

सम्पर्क: संगीतज्ञ/समीक्षक 2263 कैम्पस पॉइंट लेन
रेस्टन वीए 20191. यूएसए

■

पुस्तक : समीक्षा

भारतीय मानसिकता व कैनेडियन वास्तविकता का आईना

पुस्तक विवरण-

पुस्तक शीर्षक	:	इमिग्रेंट (उपन्यास)
लेखक	:	धर्मपाल महेन्द्र जैन
समीक्षक	:	मुकेश दुबे
प्रकाशन	:	आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल म.प्र.
पृष्ठ	:	224 + 4 = 228
मूल्य	:	₹500/-
प्रथम संस्करण	:	2025

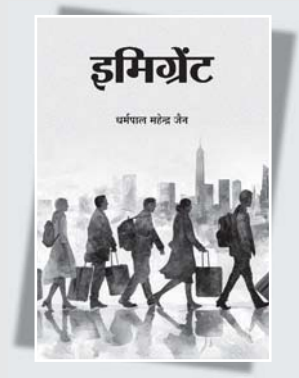

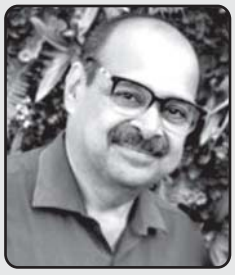

मुकेश दुबे

बेहतर अवसर अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल करने के लिए जब कोई अपने मूल देश को छोड़कर दूसरे देश में स्थाई रूप से बसता है तो उसे 'इमिग्रेंट' (अप्रवासी) कहते हैं। धर्मपाल महेन्द्र जैन जी के सद्य प्रकाशित इमिग्रेंट शीर्षक वाले उपन्यास में एक भौगोलिक इकाई से किसी अन्य भौगोलिक इकाई का निवासी बनने के साथ हो सजीव इकाई अर्थात एक शरीर से दूसरे शरीर में 'आप्रवासन' को बेहद खूबसूरती से परिभाषित किया है वह भी पूरे मनोवैज्ञानिक तर्कों की कसौटी पर परखते हुए।

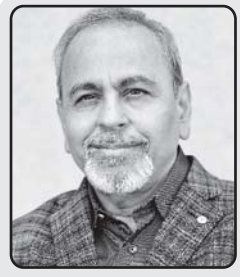

लेखक
धर्मपाल महेन्द्र जैन

प्रेम क्या है? यदि सरल शब्दों में कहा जाए तो दो जिस्मों का ऐसा रूहानी रिश्ता जिसमें मैं मिटकर "हम" में बदल जाता है। दो रूहों का मिलकर एक हो जाना ही तो प्यार है। जब एक देश छोड़कर दूसरे में स्थायित्व तलाशा जाता है तो एक कानूनी प्रक्रिया का पालन आवश्यक है और पासपोर्ट और वीज़ा की जरूरत होती है। दैहिक या वैचारिक आप्रवासन (प्रेम) की भी कुछ शर्ते होती हैं जिन्हें पूरा करके ही किसी के दिल में ठिकाना बनाया जा सकता है। प्यार भले ही भौगोलिक सीमाओं से मुक्त है परन्तु इसमें भी भावना और संवेदना, पासपोर्ट तथा वीज़ा की भूमिका निभाते हैं।

धर्म जी का यह उपन्यास दो देशों के साथ दो दिलों में इमिग्रेशन की जटिलताओं, दुश्वारियो, आवश्यकताओं और सफलता का ऐसा दस्तावेजीकरण है जो हर युवा के लिए उतना ही जरूरी है जितना विद्यालयीन या महाविद्यालयीन पाठ्यक्रम होता है। बल्कि यह कहना उचित होगा कि जीवन के व्यावहारिक पहलू को समझने की पाठशाला है। धर्मपाल जी अभी तक मेरे लिए व्यंग्यकार थे क्योंकि इनके व्यंग्य संग्रह का पाठक रहा हूँ। इस उपन्यास ने मुझे अचंभित कर दिया है। एक महत्वपूर्ण परन्तु नीरस विषय को केन्द्र में रखकर प्रेमकथा को ऐसे आगे बढ़ाया है जैसे रेल की दोनों पटरियाँ, साथ-साथ चलती हैं और पाठक इन पटरियों पर दौड़ती रेलगाड़ी में अग्रसर रहता है मंजिल यानि अंत तक पहुँचने के लिए।

आरम्भ होता है अव्यक्त प्रेम से परन्तु प्रस्फुटिल होता प्रेमांकुर दिखाई देता है। पाठक जब शाब्दिक इज़हार की प्रत्याशा में साँस रोके पन्ने पलट रहा होता है तभी प्रेम कहानी में शहनाई, मंडप, पुरोहित और उल्लास की जगह लेती है पुलिस, कारावास, अवसाद और कैनेडा के कानून, प्रशासनिक व्यवस्था और संगीन आरोप में संदिग्ध नायक की विवशता। एक तरफ जहाँ कैनेडा पुलिस, वहाँ के कानून और जाँच प्रक्रिया से रू-ब-रु कराते हैं धर्म जी, वहीं दूसरी और बड़े सलीके और सहजता से दोस्ती, विश्वास व सहयोग को शब्दों में उतारते चलते हैं जिसमें मुख्य कथानक की बुनावट में पूरक विषय चुभते नहीं अपितु मखमल पर रेशमी नक्काशी से आँखों में समाते जाते हैं।

विदेश में पढ़ाई, व्यवसाय या सेवा में आने वाली चुनौतियों के साथ अभिभावकों की आकांक्षाओं व आर्थिक सरोकारों का उन्होंने सजीव शब्दांकन किया है। बच्चे के कोमल मन पर माता-पिता के अलगाव का दुष्प्रभाव और उसकी परिणिति को प्रभावशाली शैली में व्यक्त किया है। विदेशों में विश्वविद्यालयों के छल और कमाई के गोरखधंधे व छले गये विद्यार्थियों की मनःस्थिति व प्रभाव के साथ उनके दृढ़ निश्चय, सद्प्रयास तथा

जीत को भी समेट लिया है। पुलिस की कार्यप्रणाली, अपराधी और कारावास में समानता देखकर आभास होता है कि देश अलग हो सकते हैं परन्तु तंत्र में काफी हद तक समानता है। कैदियों के साथ होने वाला अमानवीय व्यवहार, कारावास की परेशानियाँ अमूमन एक जैसी है।

जिस तरह अर्जुन की दृष्टि लक्ष्य पर केन्द्रित रहती थी, हर युवा यदि अपने जीवन में लक्ष्य निर्धारित कर उस पर अडिग रहे तो सफलता सुनिश्चित है यह संदेश भी समाहित है इस उपन्यास में। परदेस में कानूनी शिकंजे में कैद अकेले व्यक्ति की मजबूरी तथा मनोदशा और उस असहनीय परिस्थिति में दोस्तों का सहयोग विश्वास दिलाता है कि मानवीय मूल्य अभी जीवित हैं। विदेश में जन्म व लालन-पालन के बावजूद पश्चिमी सभ्यता, देशी संस्कृति को बदल नहीं सकती इस धारणा को पोषित किया है धर्म जी ने कहानी की नायिका के किरदार से उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है कथ्य की पठनीयता और पाठक की नब्ज पर हाथ रखकर उसे अपने प्रवाह में बहाकर ले जाना। निरपराध नायक जिस षडयंत्र का शिकार होकर कारावास तक पहुँचा, उससे उसे मुक्ति मिलेगी या नहीं इसी ऊहापोह में पाठक प्रत्येक पक्ति में गहराते रहस्य की धुंध में भटकता है और जिज्ञासा उसे आगे का पृष्ठ पलटने पर मजबूर करती जाती है। अंत भी चौकानेवाला किया है धर्म जी ने।

अंत में यही कहना चाहूँगा कि "इमिग्रेंट" भारतीय मानसिकता व कैनेडियन वास्तविकता का आईना है जिसमें हर युवा अपना प्रतिबिंब देख सकता है। इस अनुपम प्रयास के लिए आदरणीय धर्मपाल जी के लिए बधाई सप्रेषित करते हुए सभी साहित्य प्रेमियों से अनुरोध करना चाहूँगा कि अपेक्षाकृत, उपेक्षित से विषय पर रचित इस उपन्यास को पढ़ें ताकि विदेश में बसने की दिशा में मार्गदर्शन मिल सके और प्रेम के रुहानी अहसास को महसूस कर सकें।

संपर्क : 107, डी. डी. इस्टेट कॉलोनी, सीहोर (म. प्र.) 466001
मो 94608 77251

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क में वृद्धि की सूचना

प्रिय पाठकों,

द्वैमासिक 'कला समय' एक अव्यावसायिक कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक सांस्कृतिक पत्रिका है, जो विगत 29 वर्षों से अविरल रूप से कला/साहित्य जगत की सेवा कर रही है। आप इस तथ्य से परिचित हैं कि एक अव्यावसायिक कला-सांस्कृतिक पत्रिका निकालना बड़ा ही दुष्कर और श्रमसाध्य कार्य है। विगत कुछ वर्षों में मुद्रण, टंकण, कागज आदि की लागत में असामान्य बढ़ोत्तरी हुई है। ऐसे में पत्रिका के नियमित प्रकाशन को आप तक पहुँचाने के लिए ग्राहक सदस्यता शुल्क में (फरवरी-मार्च 2025) अंक से वृद्धि करना अपरिहार्य हो गया है। सदस्यों से अनुरोध है कि अब वे अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन सदस्यों की सदस्यता अवधि के 10 वर्ष पूरे हो चूके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

फरवरी-मार्च 2025 से कला समय पत्रिका की बढ़ी हुई दरें हमने पूर्व में प्रकाशित की है। पुन: अनुरोध है कि माननीय सदस्यगण इन बढ़ी हुई दरों के अनुसार शेष सदस्यता अंतर राशि का भुगतान कर रजिस्टर डाक सहित पत्रिका प्राप्ति सुनिश्चत करें।

संशोधित सदस्यता शुल्क

प्रति अंक	–	100/-	(साधारण डाक)
वार्षिक	–	600 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
	–	700 (संस्थागत)	(साधारण डाक)
द्वैवार्षिक	–	1200 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
	–	1400 (संस्थागत)	(साधारण डाक)
चार वर्ष	–	2300 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
	–	2700 (संस्थागत)	(साधारण डाक)
आजीवन	–	10,000 (व्यक्तिगत)	(साधारण डाक)
(15 वर्ष के लिए)	–	12,000 (संस्थागत)	(साधारण डाक)

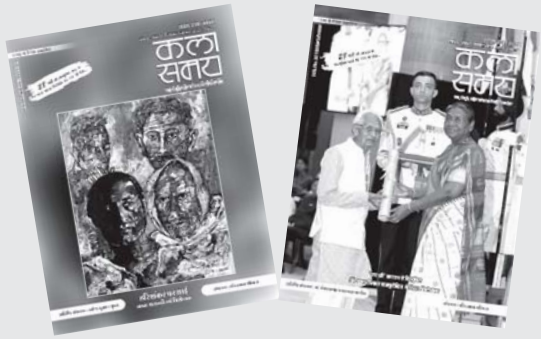

(कृपया सदस्यता शुल्क-ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

नमूना प्रति ₹100/- , एवं रजिस्टर्ड डाक शुल्क ₹50/- – संपादक

कलावर्त न्यास का 27 वां अंतरराष्ट्रीय कलापर्व संपन्न

शिवानी सोनी

कलावर्त न्यास, उज्जैन की एक प्रतिष्ठित प्रतिनिधि कला संस्था, श्री डॉ. चंद्रशेखर काळे एवं उनकी पत्नी डॉ. भारती काळे के कुशल मार्गदर्शन और समर्पित नेतृत्व में निरंतर कला-जगत को समृद्ध करती आ रही है। वर्षों से यह संस्था भारतीय कला परंपरा, समकालीन सृजन और युवा प्रतिभाओं के संवर्धन के लिए एक सशक्त मंच के रूप में कार्यरत है। संस्था द्वारा प्रतिवर्ष विद्यार्थियों के लिए कला प्रतियोगिताएँ एवं कला पर्व (आर्ट कैंप) का आयोजन किया जाता है। इन आयोजनों में देश-विदेश के प्रख्यात एवं वरिष्ठ चित्रकारों को आमंत्रित कर उनका सम्मान किया जाता है। साथ ही, कला छात्रों के लिए ऑन-द-स्पॉट चित्रकला प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जाता है, जिससे उन्हें अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है। इस आर्ट कैंप की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ विद्यार्थियों और नवोदित कलाकारों को अनुभवी एवं वरिष्ठ कलाकारों से प्रत्यक्ष संवाद का अवसर प्राप्त होता है। वे उनके सृजन को सामने बैठकर देखते हैं, उनकी कार्यप्रक्रिया को समझते हैं और कला के सूक्ष्म आयामों पर चर्चा करते हैं। इस प्रकार का जीवंत और आत्मीय कला-संवाद भारत में विरल ही देखने को मिलता है। नवकलाकारों के लिए यह अनुभव केवल प्रेरणादायी ही नहीं, बल्कि उनके कलात्मक विकास में मील का पत्थर सिद्ध होता है। संस्था विगत अनेक वर्षों से कलाकारों को न केवल सम्मान प्रदान कर रही है, बल्कि आर्थिक सहयोग देकर भी उनके मनोबल को सुदृढ़ कर रही है। कला के प्रति यह समर्पण और संवेदनशीलता ही कलावर्त न्यास को विशिष्ट बनाती है।

27वां चार दिवसीय अंतरराष्ट्रीय कलापर्व (25–28 दिसंबर 2025)

इस वर्ष 25 से 28 दिसंबर 2025 तक आनंद मंगल परिसर, उदयन मार्ग, उज्जैन में भव्य रूप से आयोजित किया गया। इस महोत्सव में नेपाल, बांग्लादेश, मॉरिशस, ब्रिटेन सहित देशभर से 200 से अधिक वरिष्ठ एवं युवा कलाकारों ने सहभागिता की। 25 दिसंबर की संध्या पर शुभारंभ समारोह के अवसर पर विभिन्न कलाकारों को राष्ट्रीय अलंकरण प्रदान किए गए। नई दिल्ली के वरिष्ठ चित्रकार विजेंद्र शर्मा को "आजीवन उपलब्धि सम्मान" से अलंकृत किया गया। "गुरु संदीपनि राष्ट्रीय कला आचार्य सम्मान" डॉ. हिम चाटर्जी एवं डॉ. रविंद्र सिंह गोसाई को प्रदान किया गया।

राष्ट्रीय "अभ्युदय सम्मान" नवलकिशोर, चित्रसेन, पी. राजकुमारी एवं शिन शिवान को दिया गया। "राष्ट्रीय कलाकौस्तुभ सम्मान" मनीष पुष्कले और विजय ढोरे को प्रदान किया गया, जबकि "राष्ट्रीय स्वस्ति सम्मान" अमृत पटेल, भारत भूषण एवं सुभाष बाभुलकर को अर्पित किया गया। यह वर्ष का कला उत्सव पद्म भूषण स्वर्गीय राम वी. सुथार, स्वर्गीय रमेश आनंद एवं स्वर्गीय राजेश जोशी की स्मृति को समर्पित रहा। आयोजन के अंतर्गत सभी कलाकारों ने चार दिनों तक कला शिविर में सृजन किया और अपनी रचनात्मक ऊर्जा को साझा किया। स्वर्गीय रमेश आनंद को न्यास की स्थापना से अब तक निःस्वार्थ सहयोग और समर्पण हेतु मरणोपरांत "अनंत कला समर्पण सम्मान" से सम्मानित किया गया। न्यास द्वारा उनके परिवार को रजत सम्मान पत्र तथा 51,000/- की सम्मान निधि अर्पित की गई।

कला शिविर नहीं, एक कला-परिवार

चार दिनों तक चलने वाले इस कला शिविर में सभी कलाकार एक साथ रहते, भोजन करते और अपने अनुभव साझा करते हैं। अनेक कलाकार जो अकेले आते हैं, वे यहाँ से मित्रों और सहयोगियों के एक विस्तृत कला-परिवार के साथ लौटते हैं। यहाँ एक सच्चे कला-परिवार की अनुभूति प्रत्येक सहभागी को होती है। डॉ. चंद्रशेखर काळे एवं डॉ. भारती काळे के अथक परिश्रम, दूरदृष्टि और समर्पण से यह शिविर सफलतापूर्वक संचालित होता है।

महोत्सव के कलाकार

कलावर्त न्यास का सम्मान समारोह

वर्षभर इसकी तैयारियाँ करना और स्वयं सक्रिय चित्रकार होते हुए भी इतने व्यापक आयोजन को पूर्णता देना वास्तव में प्रेरणास्पद है। यहाँ आना केवल एक कार्यक्रम में सम्मिलित होना नहीं, बल्कि एक अविस्मरणीय अनुभव को जीना है। संस्था का उद्देश्य है कि अधिक से अधिक कलाकार इस मंच से जुड़ें और इस सामूहिक कला-सृजन के उत्सव का हिस्सा बनें। निस्संदेह, यह केवल एक कला शिविर नहीं, बल्कि एक जीवंत कला-उत्सव है। जब भी उज्जैन का नाम कला-जगत में लिया जाएगा, कलावर्त न्यास का उल्लेख सम्मानपूर्वक अवश्य किया जाएगा। सभी कलाकारों को जीवन में कम से कम एक बार यहाँ अवश्य आकर इस सामूहिक सृजन-यात्रा और कला-उत्सव का अनुभव करना चाहिए।

- शिवानी सोनी, चित्रकार व संस्थापक
लुक एट आर्ट एंड क्राफ्ट कम्पनी, मुंबई

लोकरंग के दौरान प्रदर्शनी स्थल पर ईटीवी की वरिष्ठ पत्रकार शिफाली पांडे ने लोकरंग भोपाल में राहुल श्रीवास से बातचीत के अंश

ऊंगली जितना तानपुरा, हथेली में समाते दुर्लभ तबला और हारमोनियम देख वाह उस्ताद कह उठेंगे!

शिफाली पांडे

भोपाल के राहुल श्रीवास ने टेबल पर सजा दिया भारतीय शास्त्रीय संगीत के इंस्ट्रूमेंट, इन्हें बनाने की प्रक्रिया को जानने के उत्सुक दिखे लोग।

भोपाल: एक उंगली के आकार का तानपुरा। हारमोनियम ऐसा कि आप चाहें तो उसे हथेली पर साधे ले जाएं। तबले आपके हाथ की 4 उंगली पर रखे जा सकते हैं। गिटार, सरोद, रबाब, दिलरुबा से लेकर बाउल संगीत में इस्तेमाल होने वाला गोपीचंद, चाहें तो आप इन्हें केवल एक उंगली और अंगूठे से थाम सकते हैं। हिंदुस्तानी भारतीय संगीत में इस्तेमाल होने वाले हर वाद्य यंत्र एक मेज पर समा जाएं। ऐसी साजों की महफिल देखी है आपने। भोपाल के रहने वाले तबला वादक राहुल श्रीवास ने तबले पर ताल साधते साधते जाने कब भारतीय शास्त्रीय संगीत के वो साज भी संभाल लिए, जिन्हें देख पाना भी अब दुर्लभ है।

साजों की पंगत से मिलिए, सारंगी सारंदा ताउस सब हैं यहां

एक मेज पर भारतीय शास्त्रीय संगीत का दुर्लभतम वाद्य विचित्र वीणा और उसके साथ सरस्वती वीणा रुद्र वीणा। जिन्हें आपने कभी उसके असल रूप में न देखा हो, तो इस रूप में देख लीजिए। सितार, तानपुरा और सारंदा, रबाब दिलरुबा जैसे ऐसे वाद्य भी जिनके नाम भी लोगों ने कम ही सुने होंगे। बाकी हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के बुनियादी साज हारमोनियम तबला पखावज और सितार तो एक संगत में बैठे दिखाई देते हैं। भोपाल के रहने वाले तबला वादक राहुल श्रीवास की कलाकारी है ये। कारीगरी ऐसी कि उन्होंने भारतीय संगीत के हर वाद्य को अपने हुनर से मिनिएचर फार्म में उतार दिया है। राहुल का मकसद बस ये है कि एआई पर धुनों को तैयार कर रही पीढ़ी ये जान सके कि भारत में लोक वाद्यों की परंपरा कितनी विस्तृत है और कितने रंग और ढंग के साज हैं यहां।

'मुझे सारे साज चाहिए थे शुरुआत तबले से हुई'

राहुल ने किसी भी साज के ये मिनिएचर फार्म आजीविका के लिए नहीं बनाए थे। इसकी शुरुआत की कहानी बेहद दिलचस्प है। वे बताते हैं कि "जब मैं संगीत की महफिलों में जाता था, तो हमेशा ये सोचता था कि ये सारे वाद्य मेरे पास क्यों नहीं हो सकते और असल में ये नामुमकिन था। किसी के भी पास सारे वाद्य नहीं हो सकते, चाहे वो कितना बड़ा संगीतकार हो। लेकिन फिर मुझे ख्याल आया। इतने बड़े वाद्यों को रखने की जो दिक्कत है तो हम कम से कम उनके छोटे फार्म में तैयार कर सकते हैं कि साज हमें इंस्पायर करते रहें। तो इनके इन इंच भर के साजों के बनने की कहानी के पीछे की शुरुआत ऐसे ही हुई। चूंकि मैंने खुद प्रयागराज यूनिवर्सिटी से संगीत की शिक्षा ली है। मैं खुद संगीत स्तानक हूं और तबला बजाता हूं तो मैंने पहला आर्ट फार्म तबले का ही बनाया। दोस्त को दिखाया उसे अच्छा लगा। उसने कहा कि मुझे भी ऐसा बनाकर चाहिए। बस ऐसे मेरे आर्ट फार्म लोगों तक पहुंचते गए।"

काम के बारीकी की हुई तारीफ

राहुल के इन मिनिएचर इंस्ट्रूमेंट को देखकर रोमांचित फैशन टेक्नोलॉजी की छात्राएं ज्यादातर वाद्यों को जानती भी नहीं। आशी कहती हैं, "बहुत ही सुंदर काम है। बहुत बारीकी से ये काम किया गया है। बहुत डिफरेंट मैटेरियल यूज किए हैं। मैंने इस तरह का काम पहली बार देखा है।"

इन्हें बनाने की प्रक्रिया को जानने के उत्सुक दिखे लोग

उनके साथ आई श्रेया कहती हैं, "हम इसके बारे में और भी बहुत कुछ

जानना चाहते हैं। इन साजों के बारे में भी और इनको बनने की प्रक्रिया को लेकर भी।" आप इनमें से कितने इंस्ट्रूमेंट को पहले भी देख चुकी हैं इस सवाल के जवाब में श्रेया कहती हैं "बहुत कम, गिटार, सितार, हारमोनियम, तबला, ढोलक बस।"

'जेन जेड जान सके विचित्र वीणा क्या है, टिमकी किसे कहते हैं'

राहुल का इन्हें बनाने के पीछे का एक मकसद ये भी था कि जो जेन जेड है, वो भारतीय शास्त्रीय वाद्य यंत्रों को जान और पहचान सके, जो अब लगभग विलुप्त होते जा रहे हैं। राहुल कहते हैं, "मैं यही चाहता भी हूं कि खासतौर पर जो नई पीढ़ी है, वो इन साजों को पहचान सके। अब इतने बड़े साज तो कैरी नहीं किए जा सकते। उनको नहीं दिखाए जा सकते, लेकिन उनका ये रूप देखकर वो इसके बारे में जान सकते हैं। आज की पीढ़ी तो सरोद के बारे में भी नहीं जानती, जबकि मध्य प्रदेश के ही ग्वालियर में सरोद घर है।"

सागौन की लकड़ी के टुकड़े, कुछ रंग, कीलें और धागे

ये साज बोलते से जान पड़ते हैं। लगता है कि जैसे तार छेड़ेंगे और तान छिड़ जाएगी, लेकिन इनके इस रूप में आने की प्रक्रिया बहुत लंबी होती है। राहुल बताते हैं, "मैं फर्चीनर की शॉप से लकड़ी के टुकड़े जुटाता हूं। खास तौर पर सागौन के टुकड़े। फिर उन्हें सबसे पहले आकार दिया जाता है। जिस शक्ल का साज है, वो आकार देना सबसे मुश्किल काम होता है। फिर उसकी बाकी की सजावट होती है। तो उसमें मैं अपने हिसाब से चीजें जुटाता हूं। जैसे छोटी कीलें, मोती से लेकर स्टिंग के काम करने वाले ये धागे, रंग, नक्काशी, कागज भी कई जगह लकड़ी के साथ इस्तेमाल हुआ है।"

अब फोक में इस्तेमाल होने वाले साजों पर होगा काम

राहुल हर साज की पहले डिटेल जुटाते हैं। उसका भूगोल इतिहास और फिर उसे लकड़ी पर मिनिएचर आर्ट फॉर्म में ढालते हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत के साज के बाद अब उनकी तैयारी भारतीय लोक परंपराओं में बजने वाले साजों की पूरी सीरीज तैयार करने की है। वे कहते हैं "उसमें खासियत ये है कि हर साज के साथ उसकी परंपरा और पूरी कहानी है, ये साज हमारे लोक अंचल के जीवन से जुड़े साज होते हैं। जिसमें से कुछ तो मैं अभी बना चुका हूं, जैसे टिमकी है, पंजाबी तबला है और गोपीचंद।"

साभार : ETV

सप्तवर्णी कला साहित्य सृजन शोध पीठ ने आयोजित किया 'वंदेमातरम्' कला शिविर

कला संस्था सप्तवर्णी कला साहित्य सृजन शोध पीठ द्वारा गत् 21 एवं 22 फरवरी को 'वंदेमातरम्' पर केंद्रित दो दिवसीय शिविर का आयोजन किया गया। कोलार स्थित संस्था परिसर के सुरम्य वातावरण में कार्यक्रम संपन्न हुआ। पीठ के संस्थापक एवं कलागुरु स्व.प्रो. राजाराम के जन्मदिवस के निमित्त आयोजित शिविर का शुभारंभ शनिवार, 21 फरवरी को हुआ था। शिविर में देश भर से आये करीब 46 कलाकारों ने 'वंदेमातरम्' पर केंद्रित चित्र बनाये। इनमें हर आयु वर्ग के कलाकार थे। कलाकारों ने राष्ट्रप्रेम, स्वतंत्रता आंदोलन के नायक आदि पर केंद्रित चित्र बनाये थे। शुभारंभ दिवस पर शाम के सत्र में सांस्कृतिक प्रस्तुतियां हुई। इस सत्र में पूर्व न्यायाधीश एवं व्यंग्यकार श्री उमेश कुमार गुप्ता बतौर मुख्य अतिथि उपस्थित रहे। अध्यक्षता उर्दू अकादमी की निदेशक डॉ.नुसरत मेहदी ने की। शुरुआत में डॉ. अनुपमा,डॉ. आभा,डॉ. स्मृति तथा डॉ. अनुराधा ने सामूहिक वंदेमातरम की प्रस्तुति दी। भरतनाट्यम की प्रस्तुति कु. कृतिका सिंह की रही तथा प्रो. स्निग्ध दत्ता ने सुगम संगीत प्रस्तुत किया। इसी क्रम में किशन तिवारी, बलराज चौधरी तथा अनुपमा चौहान का काव्य पाठ हुआ। अंत में आभार प्रदर्शन डॉ. आभा मिश्रा ने किया। दूसरे दिन 22 फरवरी की शाम शिविर का समापन हुआ। समापन संध्या के मुख्य अतिथि माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विवि के कुलगुरु विजय मनोहर तिवारी रहे, अध्यक्षता हाल ही में 'पद्मश्री' सम्मान के लिए चयनित पुराविद् डॉ. नारायण व्यास ने की। इस अवसर पर चित्रकला शिविर में बनाये गये चित्रों में से चयनित तीन श्रेष्ठ कृतियों के कलाकारों को पुरस्कृत भी किया गया। इसके अलावा सभी 46 प्रतिभागियों को प्रमाण-पत्र प्रदान किये गये। इस सत्र में पीठ द्वारा इसी वर्ष से स्थापित 'सप्तवर्णी कला-संस्कृति पत्रकारिता सम्मान' से कला पत्रकार दीपक पगारे को प्रदान किया गया। सम्मान के तहत शॉल-श्रीफल, प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिन्ह तथा मान राशि प्रदान की गई। पीठ की निदेशक डॉ. बिनय राजाराम ने स्वागत् वक्तव्य देते हुए आयोजन के उद्देश्य पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर पीठ के संस्थापक एवं सुप्रसिद्ध चित्रकार प्रो.राजाराम की शिष्य नीता विश्वकर्मा तथा 'कला समय' के संपादक भँवरलाल श्रीवास ने प्रो.राजाराम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विचार रखे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अनुपमा चौहान ने किया।

रपट-डॉ. अनुराधा सिंह

कोटा के चित्रकार शिव सेन एवं कार्तिक सेन सम्मानित

भारत सरकार के सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय के अधीन, जयपुर स्थित एमएसएमई विकास कार्यालय द्वारा कोटा जिला प्रशासन और जिला उद्योग एवं वाणिज्य केंद्र, कोटा के सहयोग से आयोजित पीएम विश्वकर्मा प्रदर्शनी-सह-व्यापार मेला, ग्रामीण हाट परिसर, नयापुरा, कोटा में 16 जनवरी, 2026 से शुरू होकर 18 जनवरी, 2026 को संपन्न हुआ। समापन समारोह के मुख्य अतिथि फेदरलाइट ग्रुप के पूर्व मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री राजू गुप्ता थे। समारोह की अध्यक्षता कोटा के संभागीय पुस्तकालयाध्यक्ष और नोडल अधिकारी श्री दीपक कुमार श्रीवास्तव ने की, जिसमें वरिष्ठ होम्योपैथी चिकित्सक डॉ. आर.के. स्वामी विशेष अतिथि थे। कोटा स्थित जिला उद्योग एवं वाणिज्य केंद्र के महाप्रबंधक श्री हरिमोहन शर्मा ने प्रधानमंत्री विश्वकर्मा योजना के सभी लाभार्थियों के प्रति आभार व्यक्त किया और भविष्य की प्रदर्शनियों में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया। प्रदर्शनी के दौरान मेहंदी, चित्रकला, गायन, नृत्य आदि जैसी विभिन्न प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया गया। सभी अधिकारियों और अतिथियों ने चित्रकला में शिव सेन (कृष्णा) एवं कार्तिक सेन (राम) सहित कई विजेताओं को सम्मानित किया। इस प्रदर्शनी-सह-व्यापार मेले के तीन दिनों के दौरान सभी प्रदर्शकों की कुल बिक्री लगभग 15 लाख रुपये रही, जो प्रदर्शनी की अपार सफलता को दर्शाती है। जयपुर स्थित एमएसएमई-विकास कार्यालय के उप निदेशक श्री अजय शर्मा ने पीएम विश्वकर्मा योजना के तहत भविष्य के अवसरों के बारे में जानकारी प्रदान की और प्रदर्शनी की सफलता के लिए सभी को धन्यवाद दिया।

- रपट: सुनील सेन, कोटा राजस्थान

वरिष्ठ साहित्यकार श्रीराम माहेश्वरी श्री परमेश्वरीबाई खत्री साहित्य कला रत्न सम्मान से अलंकृत

भोपाल। वरिष्ठ साहित्यकार श्रीराम माहेश्वरी को स्वर्गीय श्री परमेश्वरी बाई खत्री स्मृति साहित्य कला रत्न गद्य सम्मान से अलंकृत किया गया है। भोपाल स्थित मानस भवन के सभागार में अखिल भारतीय कला मंदिर संस्था द्वारा विगत दिवस संपन्न संस्था के 75 वें सम्मेलन में माहेश्वरी को उनकी कृति ' भक्ति सिद्धि और राम' के लिए उन्हें इस सम्मान से अलंकृत किया गया है। अर्चना प्रकाशन न्यास भोपाल द्वारा प्रकाशित इस कृति में श्रीमद्भगवत गीता में भक्ति, मानस में भक्ति, श्रीमद्भागवत में भक्ति , पुराणों और ग्रंथों में वर्णित सिद्धियां तथा भगवान श्रीराम की लीलाओं की सरल शब्दों में व्याख्या की गई है। उल्लेखनीय है कि लेखक की यह चौथी पुस्तक है। इसके पूर्व उनकी पर्यावरण और जैव विविधता दो संस्करण तथा मानव जीवन और ध्यान पुस्तक प्रकाशित हो चुकी हैं। सामाजिक, आध्यात्मिक कार्यों तथा साहित्य लेखन के लिए लेखक को पूर्व में भी कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया जा चुका है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायक, गायकी और घराने विशेषांक पर विद्वानों की प्रतिक्रियाएं

कला समय का श्लाघनीय प्रयास

घराना शब्द प्रायः स्थापित घर वालों के पर्याय के रूप में प्रचलित रहा है। देशज शब्द है और बहुधा बेटी दामाद संबंध और गुरु शिष्य संबंध के संदर्भ में काम आता है। संगीत के नृत्य, गायन और वादन तीनों ही रूपों के घराने रहे हैं। द्वैमासिक 'कला समय' (भोपाल) ने दिसंबर जनवरी 2026 के अंक को हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायक, गायकी और घरानों पर केंद्रित बहुआयामी विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया है। यह अंक संगीत ही नहीं, कला के अध्येताओं के लिए बड़े महत्व का है जिसमें बड़े नामों ने बड़े नामधारी कला गुरुओं के घरानों पर विशेष आलेख लिखे हैं। संयोग से जनवरी में ही " स्वर सरिता' ने भी घराना अंक भी निकाला था।

कला समय का विशेषांक पंडित श्री सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट' रसरंग' ने संपादित किया है। कला समय के संपादक श्री भंवरलाल श्रीवास की यह उदारता और सम्मान का भाव ही है कि वे विशेषज्ञ और सहयोगी को संपादन का दायित्व देकर उनके अभिनंदन की आधारशिला रखते हैं। अतिथि संपादक का सम्मान किसी पुरस्कार से कम नहीं होता। पिछले कई अंक उनके उदारचेता होने के साक्ष्य हैं। इस अंक में नियमित कॉलम के साथ ही डॉ. कपिल तिवारी, उल्हास तैलंग, किरण देशपांडे, डॉ. मधुभट्ट तैलंग, प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास, आचार्य जागृति, डॉ. पूरन सहगल, डॉ. सुप्रीत सिंह, दुष्यंत त्रिपाठी, सत्य नारायण शर्मा, डॉ. रमा दास, मधुर कुलश्रेष्ठ... आदि के आलेख पढ़ने योग्य है...। मेरे लिए तो यह अंक संग्रहणीय है।

इस सुंदर प्रस्तुति के लिए हम मित्रों की ओर से भँवरलाल श्रीवास जी को बधाई...।

डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू'
वरिष्ठ साहित्यकार: उदयपुर (राज.)

भारत भवन और इसकी उपलब्धियों पर अब पूरा ग्रंथ लिखा जा सकता है।श्रीवास जी,मैं, आपकी भारत भवन को दी गई सेवाओं और आपकी कर्म और कला साहित्य यात्रा का कुछ दशकों तक साक्षी रहा हूँ।मैं पूरे दावे के साथ कह सकता हूँ कि जितना सकारात्मक, अनुकरणीय और प्रेरणादायक परिवर्तन मैंने आपके जीवन में देखा है वैसा उदाहरण कोई नहीं।कला की अनथक सेवा कोई मामूली कार्य नहीं। आप अब भी प्रतिष्ठित कला पत्रिका "कला समय" को जिस समर्पण, निष्ठा और त्याग के साथ पोषित कर रहे हैं वो अद्भुत है।ईश्वर आपके सदा साथ रहें। शुभकामनाओं के साथ।

मुकेश कुँदन थॉमस
वरिष्ठ उद्घोषक तथा उ.आ.खाँ संगीत अकादेमी के पूर्व अधिकारी
वर्तमान में विदेश में निवास

कला समय का हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायक, गायकी और घराने नामक विशेषांक मैंने पढ़ा। सम्पूर्ण अंक अच्छा संगीत साहित्य लिए हुए है। इस अंक में दिए हुए फोटो दुर्लभ और दर्शनीय है। इस अंक को देखकर संपादक की मेहनत, ज्ञान परिलक्षित होता है। अतिथि संपादक गुरुवर्य प्रो, सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट जी का आलेख घराना एक परिचय बहुत अच्छा लगा। एक लेख का विशेष उल्लेख करना चाहता हूं। वह लिखा हुआ है, कला समय के संपादक आदरणीय श्री भँवरलाल श्रीवासजी का लेख का शीर्षक है। संगीत विद्या अध्यात्म विद्या है, गुरु कृपा और गुरु सान्निध्य के बिना संभव नहीं। यह लेख ज्ञान वर्धक तो है ही साथ में वह रुचि पूर्ण ढंग से लिखा होने के कारण इसे बार बार पढ़ने का जी करता है। यह लेख मैंने अनेक बार पढ़ा। हर बार नई-नई परते खुलती गई। संपादक महोदय श्री भंवरलाल श्रीवास जी को बहुत बहुत धन्यवाद।

पं. बलवंत पुराणिक
वरिष्ठ शास्त्रीय गायक एवं गुरु
भोपाल म.प्र.

किसान कल्याण- वीर भारत न्यास

किसान कल्याण स्वाभिमान पर्व क्विज का प्रथम चरण 15 मार्च तक विजेताओं को मिलेंगे ट्रैक्टर, बुलेट मोटरसाइकिल, ई स्कूटर एवं अन्य पुरस्कार

28 जनवरी 2026, भोपाल। माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी एवं माननीय मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव जी द्वारा किसानों के कल्याण, स्वाभिमान और समृद्धि के लिए संचालित योजनाओं को व्यापक जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग अंतर्गत वीर भारत न्यास एवं किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग द्वारा एक अभिनव और ऐतिहासिक पहल की है। वर्ष 2026 को किसान कल्याण स्वाभिमान पर्व के रूप में मनाते हुए प्रदेश में लोक और जनजातीय कलाओं के बहुरंगी उत्सव के साथ एक विशाल राज्य स्तरीय इनामी क्विज प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। प्रतियोगिता का प्रथम चरण 15 मार्च 2025 तक चलेगा। इस प्रतियोगिता के विजेताओं को लगभग 6.50 करोड़ राशि के ट्रैक्टर, बुलेट मोटरसाइकिल, ई स्कूटर एवं अन्य आकर्षक पुरस्कार प्रदान किये जायेंगे। यह जानकारी माननीय मुख्यमंत्रीजी के संस्कृति सलाहकार एवं वीर भारत न्यास के न्यासी सचिव श्रीराम तिवारी ने प्रेस को संबोधित करते हुए दी।

श्रीराम तिवारी ने बताया कि यह पहल मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के नेतृत्व में किसानों को योजनाओं से जोडने, उनमें जागरूकता बढ़ाने और सम्मान का भाव सुदृढ़ करने की दिशा में एक मील का पत्थर सिद्ध होगी। किसान कल्याण स्वाभिमान पर्व के अंतर्गत बुंदेलखंड, बघेलखंड, मालवा, निमाड़ और महाकौशल अंचलों में वर्ष भर लोक एवं जनजातीय कलाओं के माध्यम से कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे। इन आयोजनों के माध्यम से खेती, किसान जीवन, परंपरा और आधुनिक सरकारी योजनाओं का रचनात्मक संगम प्रस्तुत किया जायेगा, जिससे किसान अपनी संस्कृति से जुड़ते हुए समकालीन योजनाओं की जानकारी भी प्राप्त कर सकें।

न्यासी सचिव ने कहा कि इस पर्व की एक प्रमुख विशेषता है प्रदेश स्तरीय 6.50 करोड़ रुपये के इनामी ऑनलाइन क्विज़ का आयोजन, जो विशेष रूप से मध्यप्रदेश के किसानों की समृद्धि एवं स्वाभिमान के लिए ही है। इस क्विज का प्रथम चरण 15 मार्च 2026 तक चलेगा और इसे www.veerbharatnyas.com पर ऑनलाइन माध्यम से आयोजित किया जा रहा है। प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए किसानों को पंचायत स्तर के किसान विकास केंद्रों, कृषि मंडियों एवं संबंधित शासकीय तंत्र से आवश्यक सहयोग और मार्गदर्शन उपलब्ध कराया जायेगा, ताकि तकनीकी या सूचना के अभाव में कोई भी किसान पीछे न रह जाये।

क्विज़ के अंतर्गत प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी तथा मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव जी द्वारा किसानों के लिए संचालित योजनाओं पर आधारित रोचक और ज्ञानवर्धक प्रश्न पूछे जायेंगे। इनमें प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, प्रधानमंत्री सिंचाई योजना, किसान क्रेडिट कार्ड, मुख्यमंत्री किसान कल्याण योजना, भावांतर भुगतान योजना, गोपालन योजना सहित अन्य महत्वपूर्ण योजनाएँ शामिल हैं।

मुख्यमंत्रीजी के संस्कृति सलाहकार ने बताया कि पुरस्कारों की दृष्टि से यह प्रतियोगिता देश में अपने प्रकार की पहली और सबसे बड़ी पहल है। प्रथम पुरस्कार के रूप में 55 ट्रैक्टर, द्वितीय पुरस्कार के रूप में 55 बुलेट मोटरसाइकिल, तृतीय पुरस्कार के रूप में 55 ई स्कूटर इसके साथ ही 55 किसान विकास केन्द्र, 55 कृषि उपज मंडी को नगद राशि रूपये 11,000/-(प्रत्येक जिले में एक-एक) प्रदान किए जायेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य आकर्षक पुरस्कार भी किसानों को दिए जायेंगे। विजेताओं का चयन जिलावार लॉटरी सिस्टम के माध्यम से किया जायेगा, जिससे प्रदेश के विभिन्न अंचलों के किसानों को समान अवसर मिल सके। यह प्रतियोगिता संस्कृति विभाग अंतर्गत वीर भारत न्यास, संस्कृति संचालनालय, जनसंपर्क विभाग द्वारा किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग, संचालनालय कृषि अभियांत्रिकी तथा कृषि उद्योग विकास परिषद, नई दिल्ली के सहयोग से आयोजित की जा रही है।

श्रीराम तिवारी ने कहा कि इस क्विज़ और सांस्कृतिक आयोजनों का मूल उद्देश्य किसान कल्याण स्वाभिमान पर्व की भावना को सीधे किसान के खेत तक पहुँचाना है। यह केवल एक प्रतियोगिता नहीं, बल्कि किसानों के प्रति सम्मान, विश्वास और साझेदारी का उत्सव है। मध्यप्रदेश सरकार की यह पहल यह संदेश देती है कि किसान केवल अन्नदाता ही नहीं, बल्कि प्रदेश और राष्ट्र की आत्मा है। किसान कल्याण स्वाभिमान पर्व के अंतर्गत लोकरंग के माध्यम से मध्यप्रदेश देश के सामने किसान केन्द्रित विकास और सांस्कृतिक नवाचार का एक प्रेरक मॉडल प्रस्तुत कर रहा है।

(श्रीराम तिवारी)
न्यासी सचिव, वीर भारत न्यास
मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग

देश में पहले पहल
मध्यप्रदेश के किसानों के लिए पुरस्कार ही पुरस्कार

किसान कल्याण स्वाभिमान वर्ष में प्रदेश के विविध अंचलों - बुंदेलखंड, बघेलखंड, निमाड़, मालवा व महाकौशल में आयोजित होने वाले लोकरंग आयोजनों के अवसर पर संबंधित जिलों के किसानों को लॉटरी प्रकिया के माध्यम से पुरस्कार वितरित किये जायेंगे

1. मुख्यमंत्री किसान कल्याण योजना का मुख्य उद्देश्य क्या है?
A. मुफ्त बीज देना B. किसानों को नकद सहायता देना
C. ट्रैक्टर देना D. फसल बीमा करना

2. मुख्यमंत्री किसान कल्याण योजना के तहत किसानों को साल में कितनी राशि मिलती है?
A. ₹2000 B. ₹4000
C. ₹6000 D. ₹8000

3. मुख्यमंत्री किसान कल्याण योजना की राशि कितनी किस्तों में दी जाती है?
A. 1 B. 2
C. 3 D. 4

4. प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना में सालाना कितनी राशि मिलती है?
A. ₹4000 B. ₹5000
C. ₹6000 D. ₹8000

5. पीएम किसान योजना की राशि कितनी किस्तों में मिलती है?
A. 1 B. 2
C. 3 D. 4

6. भावांतर भुगतान योजना किस लिए शुरू की गई थी?
A. बीज वितरण B. फसल बीमा
C. फसल का उचित दाम दिलाने के लिए D. सिंचाई के लिए

7. भावांतर योजना में किसका भुगतान किया जाता है?
A. बीज का पैसा B. खाद का पैसा
C. बाजार और समर्थन मूल्य का अंतर D. बीमा राशि

8. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का उद्देश्य क्या है?
A. मुफ्त खाद देना B. फसल नुकसान की भरपाई
C. सिंचाई सुविधा D. ट्रैक्टर देना

9. फसल बीमा योजना में नुकसान होने पर क्या मिलता है?
A. बीज B. खाद
C. मुआवजा राशि D. लोन

10. मध्य प्रदेश में गेहूं की खरीदी कहां की जाती है?
A. बैंक में B. मंडी में
C. सहकारी समिति में D. अस्पताल में

11. न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) किसके लिए होता है?
A. व्यापारियों के लिए B. सरकार के लिए
C. किसानों के लिए D. मजदूरों के लिए

12. किसान क्रेडिट कार्ड का उपयोग किस लिए होता है?
A. यात्रा के लिए B. खेती के खर्च के लिए लोन
C. मोबाइल रिचार्ज D. बीमा के लिए

13. किसान क्रेडिट कार्ड से ऋण पर किस दर से ब्याज लगता है?
A. बहुत ज्यादा - 10% B. सामान्य - 8.5%
C. कम -7% D. नहीं लगती -0%

14. मुख्यमंत्री सोलर पंप योजना किस लिए है?
A. बिजली बिल बढ़ाने के लिए B. सौर ऊर्जा से सिंचाई के लिए
C. ट्रैक्टर चलाने के लिए D. पानी पीने के लिए

15. राष्ट्रीय कृषि विकास योजना का उद्देश्य क्या है?
A. खेती को बढ़ावा देना B. किसानों को ऋण उपलब्ध कराना
C. स्कूल बनाना D. अस्पताल बनाना

16. मृदा स्वास्थ्य कार्ड किस बारे में जानकारी देता है?
A. पानी की B. फसल की
C. मिट्टी की गुणवत्ता D. मौसम की

17. मृदा स्वास्थ्य कार्ड से क्या लाभ होता है?
A. सही खाद की जानकारी B. बीज मुफ्त मिलता है
C. ट्रैक्टर मिलता है D. बीमा मिलता है

18. किसान पंजीयन क्यों जरूरी है?
A. नौकरी के लिए B. योजना का लाभ लेने के लिए
C. मोबाइल लेने के लिए D. बीमा बंद करने के लिए

19. फसल खरीदी के लिए पंजीयन कहां होता है?
A. थाना B. पंचायत
C. सहकारी समिति D. अस्पताल

20. जैविक खेती को बढ़ावा देने की योजना किस लिए है?
A. रसायन बढ़ाने के लिए B. प्राकृतिक खेती के लिए
C. मशीन खरीदने के लिए D. सड़क बनाने के लिए

21. ड्रिप सिंचाई योजना किस लिए है?
A. बारिश बढ़ाने के लिए B. पानी बचाने के लिए
C. बीज बोने के लिए D. फसल काटने के लिए

22. स्प्रिंकलर योजना का लाभ क्या है?
A. ज्यादा पानी खर्च B. कम पानी में सिंचाई
C. बीज मुफ्त D. खाद मुफ्त

23. किसान कल्याण एवं कृषि विकास विभाग किससे जुड़ा है?
A. शिक्षा B. स्वास्थ्य
C. खेती D. पुलिस

24. मंडी में फसल बेचने से क्या फायदा होता है?
A. कम दाम B. सही तौल और दाम
C. नुकसान D. देर से भुगतान

25. ई-नाम योजना का उद्देश्य क्या है?
A. ऑनलाइन खरीद-बिक्री B. बीज वितरण
C. लोन माफी D. बीमा बंद करना

26. प्राकृतिक आपदा में किसान को क्या मिलता है?
A. सजा B. टैक्स
C. मुआवजा D. जुर्माना

27. लोन माफी योजना किसके लिए होती है?
A. व्यापारी B. मजदूर
C. किसान D. डॉक्टर

28. कृषि यंत्र अनुदान योजना किस लिए है?
A. घर बनाने के लिए B. मशीन खरीदने के लिए सहायता
C. मोबाइल खरीदने के लिए D. दवा खरीदने के लिए

29. बीज वितरण योजना का लाभ क्या है?
A. महंगे बीज B. सस्ते और अच्छे बीज
C. बीज नहीं मिलता D. नुकसान

30. किसान मोबाइल ऐप किस लिए है?
A. गेम खेलने के लिए B. खेती की जानकारी के लिए
C. फिल्म देखने के लिए D. चैट के लिए

31. मौसम आधारित सलाह किसके लिए होती है?
A. डॉक्टर B. छात्र
C. किसान D. व्यापारी

32. कृषि विस्तार अधिकारी का काम क्या है?
A. पुलिस काम B. खेती की सलाह देना
C. टैक्स लेना D. टिकट काटना

33. किसान प्रशिक्षण केंद्र का उद्देश्य क्या है?
A. खेल सिखाना B. खेती की नई तकनीक सिखाना
C. गाड़ी चलाना D. सिलाई

34. सहकारी समिति का मुख्य काम क्या है?
A. पढ़ाई B. खेती सहायता
C. इलाज D. यात्रा

35. बीज ग्राम योजना किस लिए है?
A. घर बनाने के लिए B. गांव में बीज उत्पादन के लिए
C. सड़क बनाने के लिए D. स्कूल खोलने के लिए

36. प्रधानमंत्री सिंचाई योजना का उद्देश्य क्या है?
A. हर खेत को पानी B. हर घर को बिजली
C. हर गांव को सड़क D. हर शहर को गैस

37. फसल प्रदर्शन योजना किस लिए है?
A. खेल B. नई किस्म दिखाने के लिए
C. नाच D. गाना

38. कृषि मेले का उद्देश्य क्या है?
A. मनोरंजन B. खेती की जानकारी देना
C. खरीदारी D. पढ़ाई

39. गोपालन योजना किससे जुड़ी है?
A. मुर्गी B. मछली
C. गाय-भैंस D. बकरी

40. पशुपालन विभाग किसके लिए है?
A. फसल B. जानवर
C. सड़क D. पानी

क्विज में भाग लेने की अंतिम तिथि : 15 मार्च 2026

क्विज की विस्तृत जानकारी के लिए **मध्यप्रदेश** के सभी जिला पंचायत, सभी कृषि उपज मंडी तथा सभी किसान विकास केंद्रों में संपर्क करें।

क्विज प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए **QR कोड स्कैन करें**

वीर भारत न्यास

मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति संचालनालय, जनसम्पर्क विभाग द्वारा आयोजित

किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग, संचालनालय कृषि अभियांत्रिकी, मध्यप्रदेश शासन

सहभागिता एवं क्रियान्वयन

कृषि उद्योग विकास परिषद्

AGRI INDUSTRIES VIKAS CHAMBER

कला समय

के महत्वपूर्ण विशेषांक...

सांस्कृतिक धड़कनों का जीवंत दस्तावेज

सभी विशेषांक कला समय की वेबसाईट www.kalasamaymagazine.com पर देखे व पढ़े जा सकते है।

सांस्कृतिक यात्रा का 29वाँ वर्ष...

सिर्फ एक पत्रिका ही नहीं, कला और विचार की दुनिया में एक सार्थक हस्तक्षेप – प्रधान संपादक: भँवरलाल श्रीवास।

वस्त्र मंत्रालय MINISTRY OF TEXTILES | MPIDC MP INDUSTRIAL DEVELOPMENT CORPORATION LTD. | उद्योग एवं रोज़गार इन्वेस्ट मध्यप्रदेश वर्ष 2025

मध्यप्रदेश के कपास उत्पादक किसानों की समृद्धि का द्वार

देश का सबसे बड़ा

'पीएम मित्र' पार्क

धार, मध्यप्रदेश

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

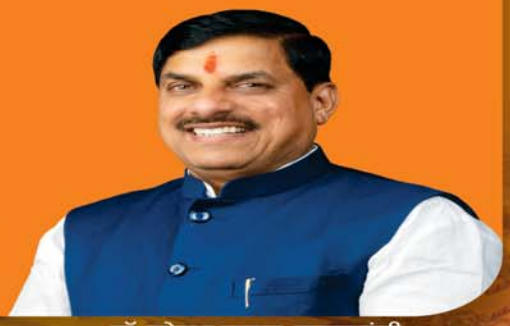

डॉ. मोहन यादव, मुख्यमंत्री

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का 5F विज़न

फार्म टू फाइबर । फाइबर टू फैक्ट्री । फैक्ट्री टू फैशन । फैशन टू फॉरेन

कम्पलीट वैल्यू चेन @ वन डेस्टिनेशन

कताई से लेकर सिलाई तक पूरी प्रक्रिया के लिये एकीकृत मेगा टेक्सटाइल पार्क

पार्क क्षेत्र - 2,158 एकड़

₹ 20 हजार करोड़ का निवेश सुनिश्चित

3 लाख लोगों को रोज़गार

टेक्सटाइल के क्षेत्र में लब्ध-प्रतिष्ठित 91 कंपनियों को निवेश प्रस्ताव के अनुरूप भूमि आवंटित

फार्म से फॉरेन तक मध्यप्रदेश का वस्त्र उद्योग

D19347/25

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2025

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक: भँवरलाल श्रीवास